गुरु नानक तथा सिख धर्म का उद्भव

हरबंस सिंह

अनुवादक

श्रुतिकान्त शर्मा

द्वितिय संस्करण :1996

पब्लिकेशन ब्यूरो

पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला



पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

GURU NANK

TATHA

SIKH DHARAM KA UDHBHAV *(Hindi)*

by

Harbans Singh

ISBN 81-7380-292-0

१९९६
द्वितिय संस्करण : ११००
मूल : १२०.००

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

सरदार रणबीर सिंह, रजिस्ट्रार, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ने प्रकाशित की
तथा राम प्रिंटोग्राफ, नई दिल्ली में मुद्रित हुई।

विषय-सूची

SIKHBOOKCLUB.COM

प्राक्कथन

पंजाबी विश्वविद्यालय ने गुरु गोविन्दसिंह फाउन्डेशन के साथ मिलकर श्री गुरु गोविन्दसिंह की तृतीय जन्म शताब्दी के अवसर पर ग्रन्थ-प्रकाशन का एक महत् कार्य हाथ में लिया। उस समय जो गौरव-ग्रन्थ प्रकाशित किए गए उनमें सरदार हरबंससिंह लिखित 'श्री गुरु गोविन्दसिंह का जीवन-चरित्र' भी था। यह मूल रूप में अंग्रेजी भाषा में लिखा गया था, और भारत की समस्त प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। इसका छन्दोबद्ध संस्कृतानुवाद डाक्टर सत्यव्रत ने किया, जो साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुआ।

जब पंजाबी विश्वविद्यालय ने श्री गुरु नानक की पंचशततम जयन्ती की स्मृति में विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना पर विचार किया तब गुरु जी की जीवनी प्रकाशित करने का निश्चय किया। जीवनी प्रस्तुत करने का भार सरदार हरबंससिंह के कन्धों पर रखा गया। इसका अभिप्राय था कि वे विश्वविद्यालय के प्रस्तोता पद का त्याग कर दें। उन्होंने अशेष शालीनता से उक्त पद का त्याग करके नवीन कार्य-भार अंगीकृत कर लिया। मुझे समीचीनतया विदित है कि वे दो वर्ष से अधिक अनन्य आस्था के साथ इस कार्य में संलग्न रहे। मुझे हर्ष है कि सतगुरु के अनुग्रह से ग्रन्थ-लेखक का कार्य प्रकाशन के लिए सम्प्रधारित तिथि से पूर्व परिसमाप्त हो गया।

इस ग्रन्थ के लेखन में सरदार हरबंससिंह ने श्री गुरु नानक की जीवनी से सम्बद्ध प्रथम एवं द्वितीय कोटि के समस्त समासादनीय स्रोतों से सामग्री का संचय किया है। उन्होंने परस्पर विभिन्न विवरणों से पूर्ण नाना जनम साखियाँ महिमा-प्रकाश, सूरज प्रकाश प्रभृति के अतिरिक्त पंजाबी एवं फारसी में उपलभ्यमान विषयोपयोगी अन्य ग्रन्थों का उपयोग किया है। निस्सन्देह उनका कार्य दुष्कर था, विशेषत: साधन सामग्री की अपर्याप्तता के कारण। सिख धर्म के परम्परीण धार्मिक वाङ्मय का अनुशीलन ऐतिहासिक समीक्षा की दृष्टि से अभी तक नहीं हो सका है। अत: प्रामाणिक और अप्रामाणिक का विवेक सुकर नहीं है। श्री गुरु नानक की जीवनी पर विचार करने के समय इस समस्या का समाधान परम कठिन हो जाता है। सरदार हरबंससिंह को यह

तथ्य ज्ञात है, तथापि उन्होंने इस कार्य को नाना साधनों की सहायता से सम्पादित किया है, और वे एक प्रसाद-गुण-पूर्ण, पठनीय, गुरु नानक चरित प्रस्तुत करने में सफल हो गए हैं। इस ग्रन्थ में गुरु जी के अवतरण के समय विद्यमान ऐतिहासिक परिस्थिति का, तथा जनता के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन पर गुरु जी के प्रभाव का, विश्लेषण इतना विशद है कि उसमें अतीत प्रत्यक्ष वर्तमान हो उठा है।

मैं इस प्रसंग में इस तथ्य का उल्लेख करना चाहता हूँ कि १९६८ ई० में हार्वर्ड सैन्टर आफ वर्ल्ड रिलिजन्ज़ ने पंजाबी विश्वविद्यालय को पत्र लिख कर सरदार हरबंससिंह को एक वर्ष के लिए उक्त विद्यापीठ में रहने का निमन्त्रण दिया। उक्त विद्यापीठ के निदेशक विलफ्रेड कैंटवैल स्मिथ ने तथा उक्त केन्द्र ने इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में जो सहायता तथा सुविधा दी तदर्थ उन दोनों का धन्यवाद है।

पंजाबी विश्वविद्यालय इस जीवनी के पंजाबी तथा उर्दू भाषान्तर भी प्रकाशित कर रहा है। ये प्रस्तुति की अवस्था में हैं, और शीघ्र प्रकाशित हो जाएँगे।

पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला

किरपालसिंह नारंग
उपकुलपति

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

सौजन्य-स्वीकार

प्रचलित वर्ष में श्री गुरु नानक की पंचशततम जयन्ती आ रही है। उसी अवसर के लिए पंजाबी विश्वविद्यालय ने श्री गुरु नानक का जीवन चरित लिखने का कार्य मुझे दिया। उक्त विश्वविद्यालय के उपकुलपति सरदार किरपालसिंह नारंग का मुझ में जो निजी विश्वास है, इस योजना में उनकी जो सतत-अभिरुचि रही है, और वे जो सहायता देते रहे हैं उस सब के लिए मैं उनका आभार स्वीकार करता हूँ। यह भी मेरा सौभाग्य है कि इस कार्य के निर्वहण-काल में मुझे हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अंतर्गत विश्व के धर्मों के अनुशीलन के केन्द्र में एक वर्ष व्यतीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यह एक उत्साहवर्धक अनुभव था, और अनेक प्रकार से मेरे अध्ययन के प्रसंग के अनुकूल भी। उस केन्द्र के निदेशक तथा विश्व-धर्मों के प्राध्यापक, प्राध्यापक विलफ्रेड कैंटवैल स्मिथ ने, वहाँ के मेरे समग्र प्रवास-काल में मेरे साथ अत्यन्त मृदु-मधुर व्यवहार किया तथा मेरा उत्साह बढ़ाया। इसके लिए उनका ऋण मैं विशेष रूप से अंगीकार करता हूँ। उक्त महोदय का हृदय तो परम-कारुणिक एवं सहिष्णु है ही, उसने धर्म के अध्ययन की पद्धति को स्पष्टतया व्यवस्थित तथा विनीत भाव से किन्तु प्रभविष्णुतया निरूपित करके इस युग की बौद्धिक संस्कार-क्रिया में नूतन तत्त्वों का समावेश भी किया है। उसके समीप व्यतीत किया हुआ स्वल्प काल मेरे ज्ञान एवं उत्साह दोनों का संवर्धक सिद्ध हुआ। उक्त केन्द्र के उपनिदेशक डा० जॉन बी० कारमन ने मेरे ग्रन्थ के हस्तकोष को मनोयोग-पूर्वक पढ़ा और उस पर अपना मूल्यवान् मत प्रकट किया। तदर्थ उक्त महोदय का कृतज्ञ हूँ। यूनियन थियोलोजिकल सैमीनरी रिचमोंड (वरजिनिया) के प्राध्यापक डानल्ड जी० डा के विद्वत्तापूर्ण परामर्श का मैं बहुत ऋणी हूँ, और उसके प्रति अपनी अधमर्णता प्रकट करता हूँ। स्ट्रेटस यूनिवर्सिटी डी लैन्ड् (फलोरिडा) के डा० रॉलिन् स० आरमर ने इस ग्रन्थ के कतिपय अध्याय पढ़े, और उपयोगी सुझाव दिए। अतः उक्त महाशय का धन्यवाद है। डाक्टर गंडासिंह ने अपने संग्रहालय में से मुद्रित तथा अमुद्रित ग्रन्थ देकर, और इन कठिन समस्याओं को जो मैंने परामर्श एवं स्पष्टीकरण के लिए उनके सम्मुख

रखी सुलभाकर अनेक प्रकार से सहायता की। इस रीति से उक्त महोदय ने इस ग्रन्थ के निर्माण में जो योग दिया है उसका आभार शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार, मैंने पंजाबी-साहित्य के प्रमुख दार्शनिक तथा सामन्त डाक्टर बलबीरसिंह के ग्रन्थालय से भी लाभ प्राप्त किया है। उक्त डाक्टर महोदय के प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ। हार्वर्ड विश्वविद्यालय में तुर्की भाषा के लैक्चरर डाक्टर फ़िनासी टैकिम् तथा बोस्टन विश्वविद्यालय में विश्व-धर्मों के प्राध्यापक डाक्टर दाऊद रहबर ने बग़दाद वाले तुर्की भाषा के अभिलेख को पढ़ा तथा अंग्रेज़ी में उसका अनुवाद किया। इससे इन दोनों महाशयों से मुझे जो साहाय्य सम्प्राप्त हुआ उसके आभार का स्वीकार आवश्यक है। एक महाविद्यालय में लैक्चरर के पद पर जाने से पूर्व तक श्री प्रभदयाल ने मूल्यवत् सचिवोचित साहाय्य दिया। तत्पश्चात् उसका स्थान श्री जसवन्तसिंह ने लिया। ये दोनों सज्जन मेरी हार्दिक श्लाघा के अधिकारी हैं। तस्नीमा खातून् ग़ाज़ी एवं पैट्रिशिया सैनफ़र्ड ने टाइपिंग का कार्य करके सहायता की। उनके इस धैर्यपूर्ण तथा उदार सहयोग के लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। और अन्त में मैं ईनफोर्थ संस्थान का ऋण स्वीकार करता हूँ, जिसने अनुदान देकर मुझे विश्व-धर्मों के विद्यापीठ में प्रायः एक वर्ष रह कर अध्ययन करने के योग्य बनाया।

(अंग्रेज़ी संस्करण में) गुरु ग्रन्थ साहिब के 'शबदों' के अंग्रेज़ी अनुवाद लेखक ने किए हैं और वे 'शबद' 'शबदारथ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' नामक ग्रन्थ से लिए गए हैं।

सेन्टर फार दि स्टडि आफ वर्ल्ड् रिलिजन्ज़्
हार्वर्ड यूनिवर्सिटि केम्ब्रिज

हरबंस सिंह

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

१

उपोद्घात

श्री गुरु नानक के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य प्रयास की प्रारम्भिक दशा में प्रचुर एवं सुलभ प्रतीत होता है। उनके जीवन की विशिष्ट प्रवृत्तियां अविचाल्यतया सुप्रसिद्ध हैं। आविर्भाव-काल की दृष्टि से महीमण्डल का कोई अन्य महान् धर्म-गुरु उतना हमारे समीप नहीं है जितने श्री गुरु नानक हैं। उन के आविर्भाव को पाँच सौ से अधिक वर्ष व्यतीत नहीं हुए हैं : वस्तुतः वर्तमान वर्ष उनके जन्म का पाँचसौवाँ वर्ष है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उनके आविर्भाव एवं धर्म प्रचार का समय पूर्णतया आधुनिक इतिहासविदों के दृष्टि-वृत्त के अन्तर्गत है। उन्होंने जिस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की उनके नौ शिष्यों ने उसको पुष्ट किया। इस प्रकार उनका नाम एवं धर्मानुशासन ईसवीय अष्टादश शतक के प्रारम्भ तक, अर्थात् १७०८ तक, अविच्छिन्नतया चलता रहा। १७०८ में दशम तथा अन्तिम गुरु, गोविन्दसिंह ने पार्थिव शरीर का परित्याग किया। इससे शरीरी धर्म-गुरुओं की परम्परा परिसमाप्त हो गई, और साम्प्रदायिक गुरु का स्थान गुरु ग्रन्थ साहिब को अर्पित किया गया। श्री गुरु नानक के अनुयायी, जो सिक्ख[1] कहलाते हैं, अनन्य श्रद्धा और एक-परायण भक्ति के साथ गुरु की शाश्वतता और व्यापकता में एक मधुर विश्वास रखते हैं। जो गुरु समस्त धर्म-गुरुओं में परम कारुणिक और निरतिशय शान्तिशाली था उसकी मोहनी मूर्ति सामूहिकतया उत्तर भारत की समग्र जनता के अन्तरात्मा को अहर्निश आलोकित एवं हृदय को गद्‌गद् करती रहती है। गीतों एवं कहानियों में उसका यश अभिगीत होता रहता है। उसके सम्बन्ध में उपाख्यानों में अभिवृद्धि होती रहती है। उस महान् गुरु ने जिस रीति से अपने काव्य का पाठ किया था, अपने आत्मा के गम्भीरतम भाग में उसके लिए जिन असामान्य प्रतीकों तथा

१. 'सिक्ख' शब्द संस्कृत के 'शिष्य' शब्द का अपभ्रंश है।

रूप-विधानों का निर्माण किया था, जिन छन्दों में उसे निबद्ध किया था और जिन लय-लहरियों में उसे अपने होठों पर तरंगित किया था उन सब विशिष्टताओं के साथ उसका काव्य पुरुष से पुरुषान्तर की परम्परा के बल से हम तक पहुँचा हुआ है। गुरु-ग्रन्थ साहिब में श्री गुरु नानक के ९०० से अधिक 'शबद' हैं।

जिस तलवंडी नामक ग्राम में श्री गुरु नानक ने जन्म ग्रहण किया था, और जो वर्तमान काल में ननकाना साहिब के नाम से विख्यात है, उसके दर्शन अब भी किए जा सकते हैं; जो वंश अपना पूर्व-सम्बन्ध श्री गुरु नानक के आविर्भाव काल तक पहुँचा हुआ प्रमाणित करते हैं उनसे आज तक मिला जा सकता है। वे स्थान अब तक विद्यमान हैं जहाँ गुरु जी को प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ पढ़ाए गए, अथवा जहाँ उन्होंने कुपित पिता से भीत होकर उस समय शरण ग्रहण की जब उनके पिता ने उनकी एक प्रवृत्ति को धन-विनाश-कारिणी प्रवृत्ति समझा। उन्होंने समस्त भारत की अपनी दीर्घ यात्राओं के काल में जिन ग्रामों एवं नगरों को अपने पदार्पण से पवित्र किया उनमें उनकी यात्राओं के वृत्तों की स्मारिका जनश्रुतियाँ अभी तक प्रचलित हैं। उनके वंशधर हमारे मध्य वर्तमान हैं। उनमें से कतिपय भारतीय समाज के विविध क्षेत्रों में उन्नत-स्थितिशाली होने के कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। गुरु जी के जीवन के सम्बन्ध में लेख-बद्ध सामग्री भी प्रभूत परिमाण में नहीं तो साधारण परिमाण में तो सुलभ है ही। गुरु जी के 'जोती जोत समाने' के शीघ्र पश्चात् उनके जीवन की कथाओं के संग्रह का कार्य प्रारम्भ हो गया था, और तब से अब तक उन कथाओं का कलेवर निरन्तर पुष्ट होता चला आ रहा है। इतना होते हुए भी गुरु जी की जीवनी के तात्त्विक एवं मार्मिक अध्ययन के लिए यह समग्र उपकरण अपर्याप्त है।

गुरु जी की छन्दोमयी धार्मिक रचनाएँ ब्रह्म के स्वरूप तथा मनुष्य के कर्तव्य की द्योतिका हैं। उनसे उनके जीवन-विषयक ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। उनकी रचनाओं में न तो उनके समय की किन्हीं घटनाओं की चर्चा है, और न उनके उन निजी अनुभवों का उल्लेख है जिनसे उनके विश्वासों का जन्म हुआ। वस्तुतः ऐसा होना उन्हें प्राप्त हुए भगवदादेश के स्वरूप के सर्वथा अनुरूप है। उन्होंने कहा है—'भगवान् का आदेश मुझे जिस रूप में प्राप्त होता है, मैं उसे उसी रूप में प्रसारित कर देता हूँ।' वे एक गुरु, एक शिक्षक थे, जिनके माध्यम से प्रकाश एवं सत्य मनुष्य तक पहुँचाया गया था। उनकी छन्दोमयी वाणी का उद्देश्य यही था। सिख सम्प्रदाय के धर्म-ग्रन्थ केवल श्री गुरु नानक की रचनाओं तक ही सीमित नहीं हैं। उनमें मुसलमान-शासन-युग के भारत के कतिपय हिन्दू और मुसलमान सन्तों की वाणियाँ भी

समाविष्ट हैं। परन्तु सिखों के समस्त धर्म ग्रन्थ, अथ से इति पर्यन्त, भगवान्—चरम सत्ता—से ही सम्बद्ध हैं, और 'भगवान् की अनुभूति ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है,' यही उन सब का प्रतिपाद्य विषय है। पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन ने (गुरुपीठासन, १५८१-१६०६ ई०) आधुनिक सम्पादकीय दृष्टि के समान सामीक्षिक दृष्टि से सिखों के धर्म ग्रन्थ का संकलन किया। उन्होंने एक कठोर मानदण्ड अपने सम्मुख रखा, और सन्तों की पवित्र वाणियों में से केवल उनका ग्रहण किया जो आध्यात्मिक व्यंजना एवं अर्थ के विचार से सिख गुरुओं की वाणियों के अनुगुण थीं। भाई गुरदास, जिसने गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रथम प्रति की प्रतिलिपि प्रस्तुत की, श्री गुरु अर्जुन के समकालभव धुरन्धर विद्वानों एवं परम प्रतिष्ठित महानुभावों में अन्यतम था। उसकी कविता का धार्मिक प्रयोजक विशुद्ध था। इसी हेतु गुरु जी ने उसकी कविता को सिख धर्म ग्रन्थ की कुन्जी के नाम से अभिहित किया; परन्तु, क्योंकि इसके कतिपय स्थलों में गुरुओं, एवं उनके जीवन-वृत्तों के विशिष्ट अंशों का उल्लेख है, अतः उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहिब में इसका समावेश समुचित नहीं समझा, और इसे धर्म ग्रन्थ का अंग होकर मिलने वाला धर्म-ग्रन्थता का गौरव नहीं प्रदान किया।

श्री गुरु नानक की जीवनी को लेकर लिखी गई आद्य कथाएँ 'जनम-साखियाँ' (जन्म कथाएँ) कहलाती हैं। इनमें से बीजीभूत वह जनमसाखी, जिसका प्रचार ईसवीय सोलहवें शतक के अंत में, अथवा सत्रहवें के प्रारम्भ में, हुआ, कतिपय असाधारण विशिष्टताओं से युक्त है। ये 'जनमसाखियाँ' पंजाबी भाषा में लिखी हुई हैं, और इस भाषा के गद्य के उपलभ्यमानतया प्राचीनतम रूपों का निदर्शन करती हैं। इनकी लिपि 'गुरमुखी' है। यह वह लिपि है जिसे श्री गुरु नानक ने परिष्कृत किया और अपनी रचनाओं को लिखित रूप देने में जिसका प्रयोग किया। इन 'जनमसाखियों' की रूप-रचना औपाख्यानिक है, और इनके वर्णन विशृंखल लघु कथाओं के संग्रहों के रूप में हैं। इनके रचयिताओं अथवा संकलयिताओं के नाम ज्ञात नहीं हैं। ये 'जनमसाखियाँ' स्पष्टतया जिन चार चक्रिकाओं में विभक्त की जा सकती हैं उनमें से केवल एक चक्रिका के निर्माता का नाम असन्दिग्धतया विदित है। यद्यपि श्री गुरु नानक के उत्तरवर्ती गुरु भी, जिनको उनके आध्यात्मिक दाय का अधिकार प्राप्त हुआ, श्री गुरु नानक के समान ही श्रद्धा के भाजन थे, और वस्तुतः जनता की उनमें वैसी ही श्रद्धा रही थी, तथापि इन 'जनमसाखियों' में केवल श्री गुरु नानक का ही जीवनवृत्त है, किसी अन्य गुरु का नहीं। इन जनम-साखियों' की कथाओं में पौराणिकता की शैली का अनुसरण किया गया है ; ऐतिहासिकता पर दृष्टि क्षणमात्र के लिए भी नहीं रखी गई है। स्थानों के

नाम तक अस्पष्ट रहने दिए गए हैं, और अनेक स्थलों में तो उनके उल्लेख का सर्वथा अभाव है। कतिपय घटनाओं के वर्णन नितान्त अनलंकृत, सरल हैं, और ऐसा प्रतीत होता है कि कथाएँ श्री गुरु नानक के किन्हीं प्रवचनों की व्याख्या करने तथा उनके उदाहरण उपस्थित करने के लिए कल्पित कर ली गई हैं। समय की गति के साथ पूत अलंकरण की भावना प्रबलतर होती गई है, अतः पौराणिकता एवं अद्भुतता का अंश उत्तरोत्तर प्रधान होता गया है। यही हेतु है कि उत्तरोत्तरकालिक 'जनमसाखियों' की शैली अधिकाधिक श्रम-साध्या होती जाती है, और कथाएँ असम्बद्ध विवरणों के भार के नीचे दबती चली जाती हैं। उत्तरकालभव 'जनमसाखियाँ' जिन प्राचीनतर 'जनमसाखियों' का परिवर्तित रूप प्रतीत होती हैं उन प्राचीनतर 'जनमसाखियों' में कतिपय कथाएं, तुलना की दृष्टि से, अधिक स्पष्ट और नाटकीय हैं, तथा उनकी शैली की निराडम्बरता ध्यानाकर्षक है। इन 'जनमसाखियों' में प्रक्षेप हैं, प्रतिलिपि कर्ताओं के मानव-सुलभ प्रमाद के स्खलन हैं, उनकी अपनी कल्पित नवीनताएं हैं, तथा साम्प्रदायिक वर्गों एवं साम्प्रदायिक-रूढ़ि-विरोधी मतों द्वारा जान कर किए गए तोड़-मरोड़ हैं। ये 'जनमसाखियाँ' विभिन्न रूपों में लोक-प्रचलित हैं—हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में अधिक, मुद्रित-ग्रन्थों के रूप में न्यून।

अब तक किए गए अनुसन्धानों के अनुसार, श्री गुरु नानक की जीवनी के संबंध में प्राचीनतम लिखित साक्ष्य उपलभ्यमान प्राचीनतम 'जनमसाखी' है। ऐसे साक्ष्य अथवा साक्ष्यों की गुप्त विद्यमानता भी सन्दिग्ध ही है। ऐतिहासिकों एवं अनुसन्धानकर्ताओं की गवेषणाओं तथा वर्तमान लेखक द्वारा इस संबंध में किए गए मार्गणात्मक प्रयासों को ध्यान में रखकर यह कथन सर्वथा अयुक्त नहीं होगा कि इस संबंध में किसी महत् साक्ष्य की उपलब्धि की आशा अतिन्यून है। प्रथम कारण तो यह है कि श्री गुरु नानक के आविर्भाव का काल अशान्ति का काल था, अतः वह किसी सतत साहित्यिक प्रयास के अनुरूप नहीं था। यह स्थिति पंजाब में तो विशेष रूप में वर्तमान थी; क्योंकि यह सीमान्तीय आक्रमणों तथा सांग्रामिक मुठभेड़ों के हेतु क्षुब्ध रहता था। द्वितीय यह कि इतिहास को ग्रन्थारूढ़ करने की विद्या तब तक भारतवर्ष में लोकमान्यता प्राप्त नहीं कर पाई थी। हाँ, उस युग के मुसलमान शासकों में इसका आदर अवश्य किया जाता था, और उनके आश्रय में इतिहास के कतिपय विशिष्ट तथा चिरस्थायी ग्रन्थ लिखे गए। परन्तु ये ग्रन्थ साधारणतः शासकों एवं उनकी राजसभाओं की कथाओं के रूप में हैं; कतिपय ग्रन्थों में पर्यटकों की यात्राओं के वर्णन, तथा सूफ़ी सन्तों की जीवनियाँ भी हैं। श्री गुरु नानक के जीवन-काल में सम्राट् बाबर ने अपने संस्मरण लिखे। इन्हीं को 'तुज़ुकेबाबरी' कहते हैं। यह कृति उसके लेखक की उच्चकोटि की साहित्यिक प्रतिभा की द्योतिका

है । सिखों में यह लोकवाद प्रबलता से प्रचलित है कि श्री गुरु नानक ने मुग़ल सम्राट् बाबर से साक्षात्कार किया था । परन्तु बाबर के संस्मरण-ग्रन्थ में इसका उल्लेख कहीं नहीं है, यद्यपि उसमें बाबर के जीवन की अनेक घटनाओं और अभियानों का सविस्तार वर्णन है, भारतीय जीवन का, रीति प्रथाओं का वर्णन है, और 'भारतीय लोग आम किस प्रकार खाते हैं, कुओं से पानी किस प्रकार निकालते हैं', इन जैसी छोटी-छोटी बातों पर भी सूक्ष्म दृष्टि के साथ लिखा गया है । किन्तु बाबर के संस्मरण ग्रन्थ में श्री गुरु नानक के साथ उसके समागम का अनुल्लेख ऐसे समागम की सम्भाव्यता का प्रबल विरोधी तर्क नहीं माना जा सकता है । इतना अवश्य है कि यह अनुल्लेख इस तथ्य को विशेष ध्यानाकर्षक बनाता है कि श्री गुरु नानक के संबंध में दृढ़ता से लोक-प्रचलित एक जनश्रुति गुरु जी के काल के एक ऐसे ऐतिहासिक स्रोत से समर्थन प्राप्त नहीं करती है जिससे इसके समर्थित होने की संभावना थी ।

सिख जगत् से वाहर श्री गुरु नानक की जीवनी के संबंध में प्राचीनतम वृत्तान्त उनके आविर्भाव-काल के सौ वर्ष पश्चात् लिखे गए एक ग्रन्थ में उपलब्ध होता है । इस ग्रन्थ का नाम है 'दबिस्तान-ए-मज़ाहिब'[१] । विभिन्न जातियों के धर्मों एवं रहन-सहन पर फ़ारसी में लिखा हुआ यह एक उत्कृष्ट तथा दुष्प्राप्य ग्रन्थ है । इसका प्रणेता पारसी विद्वान् और पर्यटक मोबिद जुल्फिकार अर्दस्तानी था । इस ग्रन्थ में सिखों के विषय में उसने 'नानक पन्थियाँ' नामक अध्याय में लिखा है । सिखों के सम्प्रदाय का उसका वर्णन है संक्षिप्त किन्तु गम्भीर

SIKHBOOKCLUB.COM

१. 'मुहसिन फ़ानी वाला हस्तकोश' के नाम से प्रसिद्ध इस ग्रन्थ का हस्तकोश एशियाटिक सोसायटि, कलकत्ता के संस्थापक Sir William Jones (१७४६-१७९८ ई०) द्वारा प्रकाश में लाया गया था । उस महानुभाव की प्रेरणा से उक्त संस्था के सदस्य Franchis Gladwin ने इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया । इस अध्याय का शीर्षक है School of Manners. David Shea और Anthony Trayer ने समस्त पुस्तक का अंग्रेजी-अनुवाद किया जो सन् १८४३ ईस्वी में लन्दन में मुद्रित हुआ । भारत-ईरानी भाषाओं के, कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, William Jackson द्वारा लिखित विशेष भूमिका के साथ इसका पुनर्मुद्रण सन् १९०१ ईस्वी में अमरीका में हुआ । इसमें सिखों के संबंध में जो अध्याय है उसका अंग्रेजी-भाषान्तर उमरावसिंह मजीठिया ने किया, और यह लाहौर से प्रकाशित होने वाले Khalsa Review के जून, १९३० के अंक में प्रकाशित हुआ । इसी अध्याय का अंग्रेजी-भाषान्तर, कतिपय टिप्पणों के साथ, गन्डा सिंह ने किया । यह Journal of Indian History के अगस्त १९४० के अंक में प्रकाशित हुआ, और इसी का पुनः प्रकाशन Punjab Past and Present (पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला) के अप्रैल, १९६७ के अंक में हुआ ।

अवगाहनी दृष्टि की प्रसूति है। इस ग्रन्थ के लेखक ने सिख सम्प्रदाय में विकसित वैयक्तिक विशेषताओं में से कतिपय को, तथा श्री गुरु नानक की स्मृति के प्रभाव को, ध्यान से देखा था। सिखों का विश्वास है कि श्री गुरु नानक का आत्मा उत्तरोत्तर भावी गुरुओं में प्रवेश करता गया है, और अन्य गुरु आद्य गुरु से भिन्न नहीं। अर्दस्तानी इस विश्वास का प्रशंसक था। दबिस्तान-ए-मजाहिब में श्री गुरु नानक के अनन्तरभावी गुरुओं का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक ऐतिहासिक है, परन्तु आद्य गुरु के वर्णन में 'जनमसाखी' की सरणि का अनुसरण अधिक है। इससे सूचित होता है कि श्री गुरु नानक की जीवनी अंकित करने में यह विषय विशेषत: प्रभावजनक तथा व्यापक बन चुका था[1]। इसी प्रकार, सुजानराय भण्डारी-प्रणीत 'खुलासत्तुत्वारीख'[2], गुलामहुसैनखाँ-रचित सियार्-उल्-मुतखेरीन्[3], खुश्वक्तराय-लिखित 'त्वारीख-ए-सिक्खां'[4], अहमद शाह बटालियाकृत 'ज़िक्र-ए-गुरुआँ' व 'इब्तिदा-ए-सिन्घाँ' व 'मज़हब-ए-ईशाँ'[5] तथा

---

१. अर्दस्तानी-लिखित श्री गुरु नानक का जीवन-वृत्तान्त संक्षिप्त है तथा उसके खण्ड परस्पर सम्बद्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्दस्तानी के सम्मुख श्री गुरु नानक की कोई लिखित जीवनी नहीं थी। गुरु जी के भक्तों में उनकी जीवनी की जो मौखिक कथाएँ प्रचलित थीं अर्दस्तानी ने उन्हीं को अपने लेख का उपजीव्य बनाया। उसके ग्रन्थ में वर्णित अथवा संकेतित श्री गुरु नानक की जीवनकथाओं में दो ऐसी हैं जो उपलभ्यमान 'जनमसाखियों' में प्राप्य नहीं हैं। इनमें से एक में कथित है कि गुरु जी कृत-युग और त्रेता-युग में भी पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। द्वितीय कथा में निर्दोष नारी का वृत्तान्त है। इससे सूचित होता है कि अर्दस्तानी के समय में गुरु जी का उपाख्यान पवित्रता का निधान माना जाकर विशाल होता जा रहा था।

२. इस ग्रन्थ का प्रणयन सन् १६९८ ईसवी में हुआ। गन्डासिंह ने इसके सिख-विषयक अंश का पंजाबी-भाषान्तर किया जो लाहौर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'फुलवाड़ी' के १९३१ के अक्तूबर के अंक में प्रकाशित हुआ।

३. इस ग्रन्थ की रचना ईसवीय सन् १७८० में हुई। M. Raymand नामक एक फ्रान्सीसी ने, जिसने अपना अन्य नाम हाजी मुस्तफ़ा प्रसिद्ध कर रखा था, इस समस्त अप्रकाशित ग्रन्थ का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया। इसका प्रकाशन १७८९ में हुआ। इसके एक अंश का अनुवाद John Briggs ने किया, जो १८३२ ई० में लन्दन में मुद्रित हुआ।

४. इसकी रचना ईस्ट इन्डिया कम्पनि के 'समाचार लेखक' ने उक्त कम्पनि की सेना के कर्नल David Ochterlony के लिए सन् १८११ ईसवी में की थी।

५. वस्तुत: यह एक बृहत्तर अप्रकाशित ग्रन्थ 'त्वारीखे हिन्द' का अन्यतम-अंश है। 'त्वारीख़ ए-हिन्द' सन् १८१८ ईसवी में प्रणीत हुआ था।

बूटेशाह-विरचित 'त्वारीख़-ए-पंजाब'[1] इत्यादि ग्रन्थों में श्री गुरु नानक की जीवनी के संबंध में कोई ऐसा वृत्तान्त बहुत कम मिलता है जो 'जनमसाखियों' में वर्णित न हो। ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ एक बात का विशेषतः उल्लेख करता है। वह यह कि तलवंडी में श्री गुरु नानक के बाल्य काल में उनका शिक्षक सय्यद हसन नामक एक विद्वान् मुसलमान दर्वेश था। इस ग्रन्थ में यह एक नवीन तथ्य सम्मुख आता है। इसका उल्लेख इससे पूर्व के किसी स्रोत में उपलब्ध नहीं होता है। गुरु जी के जीवन का एक विलक्षण वृत्तान्त, जिसका अधिकांश अभ्युपगमनीय नहीं हो सकता है, मराठी भाषा में, सन् १७७४ ईसवी में महीपति-द्वारा लिखित, 'भक्तलीलामृत'[2] में मिलता है। केवल दो तथ्यांशों के अतिरिक्त, इस वृत्तान्त और गुरु जी के साधनान्तर-विदित जीवन-वृत्तान्त में तिलमात्र भी साम्य नहीं है। जिन तथ्यांशों में साम्य है उनमें से एक यह है कि इस वृत्तान्त में गुरु जी की मक्का यात्रा का उल्लेख है, द्वितीय यह कि इसमें गुरु जी की यात्राओं में प्रायः उनके साथ रहने वाले मर्दाने का नाम निर्दिष्ट है। श्री गुरु नानक के सम्बन्ध में जो साहित्यिक तथा ऐतिहासिक धारणा सामान्यतः सर्वसम्मत है, यह वृत्तान्त उसके वृत्त से सर्वथा बाहर है, तथापि 'गुरु जी ने हिन्दुओं के लिए देवालयों एवं मुसलमानों के लिए मसजिदों का निर्माण करवाया।' इस लक्षणोक्ति के आश्रय से यह वृत्तान्त गुरु जी के सार्वभौम सन्देश का सूचक है।

काल की गति में एक के पश्चात् एक करके कतिपय ऐसी घटनाएँ घटित होती रहीं जिनसे सिख-विद्वज्जगत् के उत्साह की धारा क्षीण हो गई। जब सन् १७०५ ईसवी में मुगल सैन्य ने आनन्दपुर के दुर्ग को चिरकाल तक घेरे रखा, और श्री गुरु गोविन्दसिंह को अंततोगत्वा उसका त्याग करना पड़ा था तब सिरसा नदी को पार करते समय गुरु जी की अन्य वस्तुओं के साथ विपुल संख्यक हस्तलिखित ग्रन्थ भी उस नदी में बह गए थे। इनमें बहुसंख्यक ग्रन्थ प्राचीन श्रेष्ठ ग्रन्थों के आधुनिक भाषा में रूपान्तर थे जिनके कर्ता दशम गुरु जी के आश्रय में रहने वाले बावन कवि थे। असम्भव नहीं कि अनेक वर्षों से संगृहीत होते आने वाले कतिपय प्राचीन लेख भी उक्त वाङ्मय के साथ नदी ने निगल लिए हों। इस प्रकार, ईसवी अठारहवें शतक का अधिकांश, जो सिखों के लिए धर्म संकट और निष्पीडन का काल तो था ही, उनके साहित्य में एक विशाल शून्य स्थल का भी लक्षक हो गया। इस काल में हुए हस्तकोशों के एवं लेखों के ध्वंस तथा उनकी हानि का अनुमान दुष्कर है। इस विपत्ति में से जो

१. इसकी रचना का काल है ईसवीय सन् १८४८। इसमें प्राचीनतम युग से लेकर सिख साम्राज्य के खण्ड-खण्ड हो जाने तक का पंजाब का इतिहास है।

२. Justin E. Abbot एवं N. R. Godbole कृत इसका अंग्रेजी रूपान्तर Nectar From Indian Saints (पृष्ट १८०-१९५) में उपलभ्यमान है।

ग्रन्थ सुरक्षित निकला वह गुरु ग्रन्थ साहिब है। सिखों ने इसे अन्य सब वस्तुओं से अधिक मूल्यवान् समझा। निर्गृह किए होकर फिरने की अवस्था में वे इसकी प्रतियाँ अपने साथ अपने जंगल के वास स्थानों में ले गए तथा उन्होंने घोर आपदा और कष्ट के विकट काल में भी, प्राणों की परवाह न करके, उनको सुरक्षित रखा।

अन्ततोगत्वा इसका कारण कदाचित् मनुष्य के चिन्तन में न आ सकेगा; परन्तु श्री गुरु नानक के जीवन-वृत्तान्त के ज्ञान का स्रोत एकमात्र, 'जनमसाखियाँ' रह जाती हैं। श्री गुरु नानक के अपने प्रवचनों एवं उपदेशों के शब्दों के रूप में धार्मिक स्रोतों का उपयोग इस परिप्रेक्ष्य को प्रमाणपुष्ट करने के प्रयोजन से किया तो जा सकता है, परन्तु उनसे आनुभविक तथ्यों की उपलब्धि असम्भव है। 'जनमसाखियों' के पश्चात् लिखे गए लेख 'किसी विशिष्ट काल में श्री गुरु नानक के अनुयायी उनको तथा उनके उपदिष्ट मार्ग को किस रूप में ग्रहण करते थे।' इस जिज्ञासा को शान्त करने वाला प्रकाश तो दे सकते हैं, परन्तु वे इतिहास के उस स्थूल आलेख्य से ऊपर नहीं उठते हैं जो 'जनमसाखियों' द्वारा अंकित किया जा चुका था। जो स्थान किसी-न-किसी रूप में श्री गुरु नानक के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण पवित्र है उनमें प्रचलित जनश्रुतियाँ धार्मिक जीवन के उन रूपों एवं पार्श्वों की सत्यता की साधिकाएँ तो हैं जिनका जन्म गुरु जी के क्रिया-कलापों से हुआ था, परन्तु वे इतिहास-घटक सुनिश्चित तथ्य नहीं प्रदान करती हैं। अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वशाली गुरुद्वारों में गुरुद्वारे के लोग यात्रियों को जो मुद्रित लघु पुस्तिकाएँ देते हैं उनमें श्री गुरु नानक के जीवन की घटनाएँ 'जनमसाखियों' में अथवा 'जनमसाखियों' को उपजीव्य बना कर तत्पश्चात् प्रणीत, महाकाव्य, 'नानक-प्रकाश' में प्रयुक्त कवि-कल्पनाओं से रञ्जित होती हैं। श्री गुरु नानक के रूप को मानसिक नेत्रों से ग्रहण करने, तथा उसे आगामी पीढ़ियों के लिए ग्राह्य बनाने, में 'जनमसाखियों' की अर्थवत्ता स्पष्ट है। उसके साथ ही यह वास्तविकता भी सुव्यक्त है कि श्री गुरु नानक की जीवनी के ऐतिहासिक पुनर्निर्माण के प्रकरण में आश्रयणीय, 'जनमसाखियों' के अतिरिक्त, कोई अन्य वस्तु नहीं है।

अब प्रश्न है—'जनमसाखियों' की सामग्री आधुनिक इतिहास-लेखन-विद्या के समीक्षकीय शिल्पों की आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करेगी? 'जनम-साखियों' के वृत्तान्तों के लेखक तो श्रद्धालु भक्तजन थे। जीवन के भक्तिमय अनेक वर्षों में जो विषय वास्तविक, स्फुट सत्य के रूप में उनके रक्त में घुल-मिल गया था उसे उन्होंने धर्म-धनों के हितार्थ लेख-बद्ध कर दिया था। शुद्ध सरल इतिहास उनकी चिन्ता का विषय नहीं था, और न ही उनके वर्णन विषय-प्रधान एवं निर्विकल्पज्ञानपरक हैं। उनकी विचारधारा वैयक्तिक अधिक थी

तथा उन्होंने अपने भावों को चित्रांकणीय एवं वस्तु-प्रतिनिधानीय शब्दों द्वारा, नाटक तथा कहानी की विधाओं के रूप में अभिव्यक्त किया। गुरु जी की जिस जीवनी के दर्शनों से उनका हृदय आश्चर्य और विश्वास से आप्लावित हो गया, वह जीवनी उनके लिए पवित्रता तथा अर्थ-संसूचकता में अनुपम थी, और वह अनिवार्यतया पौराणिक उपाख्यानों मिथ्या कथाओं एवं अद्भुत घटनाओं के लिए उपयुक्त भाषा की शैली में संकलित थी। असाधारण आध्यात्मिक विभूतियों का स्वरूप सनातन काल से इसी शैली के अवलम्ब से बोध तथा अनुभूति का विषय बनता चला आया है। जिन परिस्थितियों में 'जनमसाखियाँ' निर्मित हुईं उनमें यह शैली दूर-दूर तक लोक-प्रचलित थी तथा अत्यन्त सुबोध समझी जाती थी। पौराणिक उपाख्यानों तथा मिथ्या कथाओं ने प्रारम्भ से ही भारतीय कवियों एवं सहृदयों को प्रभावित कर रखा था। मुसलमानों के आगमन के अनन्तर सूफ़ी दर्वेशों एवं उनके अनुयायियों के माध्यम से मुहम्मद साहिब और रहस्यमार्गी सन्तों के जीवन से सम्बद्ध अद्भुत घटनाओं की कथाएँ लोक-प्रिय हो गई थीं। सूफ़ी-सम्प्रदाय-विषयक प्रथम ग्रन्थ की रचना, पंजाब में, ईसवी ग्यारहवें शतक में, विख्यात मुस्लिम सन्त अल-हुज्वीरी ने फ़ारसी में की थी। इसका नाम है 'कश्फ़ अल्-मह्जूब'। इसमें, फ़रीदुद्दीन अत्तार (जन्म ११९९ ई०) द्वारा लिखित 'तज़्किरात्-उल-औलिया' में तथा इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों में सूफ़ी सन्तों की जीवनियाँ वर्णित हैं, और उन अद्भुत कार्यों के वर्णन हैं जिनके विषय में यह विश्वास है कि उन सन्तों ने वे कार्य करके दिखलाए थे। ऐसी अनेक कथाएँ अनेक पीढ़ियों तक केवल दन्त कथाओं के रूप में लोक-प्रचलित रहीं। इनके साथ-साथ योग-पन्थी साधकों की असाधारण सिद्धियों की कथाएँ भी जनता में सत्य कथाएँ मानी जाती रहीं। श्री गुरु नानक के शिष्यों की पीढ़ियों ने गुरु जी के जीवन की जिन घटनाओं का अनुस्मरण और चिन्तन किया दिव्य शक्ति से सम्मोहित आत्माओं तथा भक्तजनों की कल्पना शक्ति ने उनको उस परिस्थिति में लोक-प्रचलित रूप-विधानों एवं प्रतीकों का विशिष्ट परिधान प्रदान कर दिया। मिथ्याकथांशों, लोकप्रचलित कथांशों तथा इतिहास कथांशों को परस्पर गुम्फित कर दिया गया। ऐसा करने का उद्देश्य था अतीत के उन तथ्यों के अर्थ को पुन: उच्छ्वसित करना जो उनके पार्थिव सन्दर्भ से खींचकर बाहर निकाले गए थे। 'जनमसाखियों' में देश और काल-गत अवस्था महत्त्व-हीन समझी गई, अत: उपेक्षित रही। इस प्रकार 'जनमसाखियों' में दिए गुरु जी के जीवन की घटनाओं के वर्णन बहुश: उनके अलंकारशास्त्रीय व्याख्यान के रूप में हैं, उनके वास्तविक एवं क्रमिक चित्रण के रूप में न्यून। इस निष्कर्ष की निर्दशिकाएँ 'जनमसाखियों' की वे आदर्शभूत पुरातन कथाएँ हैं जो उत्तरकालीन उन परिवर्धनों से स्पष्ट ही भिन्न हैं जिनमें स्रष्टा की पटुता का अभाव है तथा

जिनमें बहुत स्थलों में, नितान्त अयथार्थ एवं अतिरञ्जित वस्तु-वर्णन है।

'जनमसाखियों' की सामग्री समीक्षकीय दृष्टि से देखने वाले इतिहासविद् के सम्मुख सदा कठोर समस्याएँ उपस्थित करेगी। विश्लेषण की आधुनिक रीतियों का प्रयोग करने पर 'जनमसाखी'-सामग्री से रचित इतिहास के भवन की केवल नग्न रूप-रेखा अवशिष्ट रह जाएगी। इसका यह तात्पर्य नहीं कि इतिहास-लेखन-विद्या के प्रचलित मानदण्डों की उपयोगिता का ही अवमूल्यन कर दिया जाए; इन मानदण्डों से तो अतीत के हमारे ज्ञान में निर्मलता तथा क्रम-बद्धता आई है। इतना अवश्य कहा जाएगा कि कभी-कभी आधुनिक इतिहास-लेखन-विद्या ने यथार्थता की गवेषणा के मार्ग को आवश्यकता से अधिक संकीर्ण बना दिया है। कुछ काल पूर्व तक इतिहास वस्तुतत्त्व एवं अर्थ के सम्मिश्रण के रूप में लिखा जाता था। किसी घटना को अन्य घटनाओं से इस प्रकार पृथक् करके नहीं देखा जाता था जिस प्रकार अणु-विद्या का पण्डित अणुओं को विश्लिष्ट करके देखता है। प्रत्येक घटना व्यक्ति-विशेष में जो समष्टित्व है उसका एक अवयव समझी जाती थी। इतिहास व्यक्ति-विशेष के किसी विशिष्ट देश-काल में किए गए क्रिया-कलापों का सरल अध्ययन मात्र नहीं था; किन्तु उस अध्ययन में 'वह व्यक्ति क्या बन गया?' इस प्रश्न का समाधान भी सम्मिलित था। 'जनमसाखियों' में जो यह कथा मिलती है कि श्री गुरु नानक जब शाला के विद्यार्थी थे तभी उन्होंने धार्मिक दृष्टि से विदग्धतापूर्ण एक अद्भुत प्रहेलिका रच डाली थी, वह किसी ऐसी घटना की सूचना नहीं है जो अविश्वसनीय है तथा कभी घटित नहीं हुई थी। यह दिव्य-गुणशाली उस बालक के जीवन की एक घटना की सूचना है जिसे आगे चलकर मानवता के हित के लिए गम्भीरतम धार्मिक प्रश्न उठाने में अपनी प्रतिभा को प्रयोग में लाना था। इस कथा का केवल यह भाव नहीं कि नानक एक प्रतिभा-गुण-सम्पन्न बालक था। इसका अर्थ यह भी है कि उसे एक विशेष रीति से अपने दुर्लभ गुणों का उपयोग करना था—उसे मानव-जाति का एक महान् आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक बनना था। यह उत्तरोक्त अर्थ पूर्वोक्त अर्थ से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। और, कोई इतिहासविद् इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। साथ ही साथ इस औपाख्यानिक कथा में इतिहास भी विद्यमान है; परन्तु यह इतिहास की सामान्य पद्धति में काल क्रम में उपनिबद्ध नहीं है।

'जनमसाखियों' में पिता और पुत्र के मध्य मत-भेद अनेक बार दिखलाया गया है, तथा उसका वर्णन भी प्रबल-विवरणपूर्वक किया गया है। यदि हम अपने काल के मनोविज्ञानिक व्याख्याताओं की पद्धति का अनुसरण करें तो 'जिस प्रकार से उस मतभेद ने बालक नानक के लिए हमारी जैसी ही कठिनता तीक्ष्ण कर दी होगी, जो उसके आध्यात्मिक व्यवसाय के प्रसंग में प्रथम चिन्त-

नीय थी' उसके सम्बन्ध में स्वयं ऊहापोह किया जा सकता है । इसी प्रकार, जब गुरु जी बाल्यकाल में तलवंडी में रुग्ण हुए उसके सम्बन्ध में अनुमान किया जा सकता है और कहा जा सकता है कि इस 'रुग्णता' से उनके किशोर वय के मानसिक दबाव की व्यंजना होती है । फिर, कलियुग ने उनको मोहमाया में निमग्न करने का जो प्रयत्न किया उसके विषय में सोचा जा सकता है । कलियुग का प्रसंग गुरु जी के हृदय में मची हलचल का व्यंजक है परन्तु 'जनमसाखियों' की कथाओं में आधुनिक इतिहास-लेखन-विद्या के नियमों का पालन नहीं किया गया है ; अतः वे मनोविज्ञानिक विश्लेषण के लिए अनुरूप विषय नहीं हैं ।

'जनमसाखियों' में प्रकृति से सम्बद्ध अद्‌भुत घटनाएँ भी वर्णित हैं । इन घटनाओं में या तो जो वस्तुएँ साधारणतः ध्वंसकारी है वे गुरु जी की रक्षक हो जाती हैं, जैसे एक महाविषधर उनके ऊपर फण से छाया करता है, या गुरु जी प्रकृति की शक्तियों को नियन्त्रित कर लेते हैं । ऐसी कथाएँ सभी जातियों के धार्मिक महापुरुषों के जीवन-वृत्तान्तों में बहुधा उपलब्ध होती हैं । परन्तु यह युक्ति देकर कि 'ये कथाएँ किसी शुद्ध किन्तु अतिचंचल ऐसे मन की उपज हैं जो सत्य का स्थान कल्पित वस्तु को देता है ।' सुगमता से इनकी उपेक्षा की जा सकती है । परन्तु ऐतिहासिक मूल्य से शून्य मानकर इनको एक किनारे कर देने का तात्पर्य होगा इनके वास्तविक अर्थ तक न पहुँच सकना । 'जनमसाखियों' में वर्णित अद्‌भुत वृत्तान्त,— उदाहरणार्थ, ध्वस्त शस्य क्षेत्रों को पुनः पूर्वरूप प्रदान करना— तभी ऐतिहासिक अर्थ से पूर्ण दिखाई देंगे जब वे श्री गुरु नानक द्वारा व्याख्यात धर्म के स्वरूप को समझने के पश्चात् देखे जाएँगे । वे वृत्तान्त गुरु जी के एक विश्वास को रूपकों के आश्रय से अभिव्यक्त करते हैं । वह विश्वास यह कि प्रकृति आत्मा के नियन्त्रण में है, तथा यह कि पुनः सर्जन भागवती दया का एक धर्म है, और वह भागवती दया केवल गुरु जी की परलोक में रूपान्तर-प्राप्ति की आशा के सम्बन्ध में नहीं, वह उनके ऐहिक जीवन की वस्तुओं के सम्बन्ध में क्रियावती थी । श्री गुरु नानक के विचार से धर्म का रहस्य यह है कि मनुष्य लोक में प्रकृति से अनभिभूत होकर जीवन व्यतीत करे । 'जब गुरु जी के ऊपर ऊपर से शिला लुढ़काई गई तब उन्होंने उसे अपने हाथ के पंजे से रोक दिया ।' यह कथा रूपक द्वारा यह संसूचित करती है कि मनुष्य के मन में निश्चय हो और वह निर्भयता से आसुरिकता का प्रतिरोध करे । 'मनुष्य अपना तथा मानवता के कल्याण के हेतु समस्त जगत् का स्वामी हो ।' इसका नाम धर्म है, लोक से पलायन का नाम धर्म नहीं है । श्री गुरु नानक के जीवन के प्रकृति से सम्बद्ध अद्‌भुत कार्य, प्रतीकों की सहायता से, इसी विश्वास के व्यंजक हैं । भगवान् की कृपा इस जगत् की वस्तुओं में पुनर्निर्माण करती है, तथा अमरत्व की प्राप्ति की आशा उत्पन्न करती है ।

'जनमसाखियों' में वर्णित कतिपय अद्भुत-कार्य-कथाएँ औपदेशिक कथाओं के लक्षण से युक्त प्रतीत होती हैं। जिस कथा में यह वर्णित है कि 'जब गुरु जी ने धनवान् पुरुष के स्वादु भोजन को मुट्ठी में लेकर दबाया तब उसमें से रक्त और जब एक निर्धन पुरुष की रोटी को दबाया तब उसमें से दूध निकला।' वह गुरु जी के इस उपदेश की व्यंजना करती है कि निश्छल परिश्रम की कमाई तथा अन्य का शोषण करके प्राप्त लाभ के मध्य सदाचारिक सन्तुलन अपेक्षित है। जब गुरु जी एक निर्धन पुरुष के घर से मंगाई रोटी के टुकड़ों से एक महा-कुल के बालक को नीरोग कर देते हैं, तब वे प्रतीक के द्वारा यह दिखलाते हैं कि किसी अधिकारशाली पुरुष का सन्त-समाज एकत्र करके भगवान् को विवश करने का प्रयत्न निरर्थक है। वस्तुत: यह भगवान् की दयालुता पर एक औपदेशिक कथा है। आजकल विद्वान् इन अद्भुत कार्य-वृत्तान्तों का उपयोग प्राय: श्री गुरु नानक के सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए करते हैं, उनके जीवन के अध्ययन के लिए नहीं। जब इन कथाओं को प्रतीक के रूप में ग्रहण करके इनके अर्थ को समझने का यत्न किया जाता है तब ये कथाएँ इस तथ्य को साक्ष्य-पुष्ट करने के लिए गुरु जी के जीवन के वृत्तान्तो में समन्वित सिद्ध होती हैं कि गुरु जी द्वारा उद्घोषित धर्म में जीवन और सिद्धान्त में अनिवार्य एकता रहती है। जीवनसत्ता और ज्ञान अन्ततोगत्वा एक दूसरे से पृथक् नहीं किए जा सकते हैं। श्री गुरु नानक जिस अनुपम प्रकार से अपने उपदिश्यमान सत्यों की स्वयं मूर्ति थे, उसी अनुपम प्रकार से उनका ऐतिहासिक प्रभाव पड़ा। जब पानीपत में मुसलमान शेख ने गुरु जी के प्रवचन को सुनने के पश्चात् विस्मय-विमुग्ध हो कर कहा कि 'जिसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है उसके विषय में हमें और किन प्रमाणपत्रों की आवश्यकता है............ऐसे पुरुष के केवल दर्शन ही पर्याप्त हैं।' तब वह उक्त सत्य को ही व्यक्त कर रहा था। जब तक यह तथ्य अवगत न कर लिया जाए कि गुरु जी के जीवन एवं उनके उपदेशों में मूल तत्व के रूप में अनन्यमनस्कता तथा अखण्डता का गुण है तब तक उनका सन्देश समझ में नहीं आ सकता है।

अतीत के एक धार्मिक गुरु के जीवन को पुन: प्रत्यक्ष योग्य करने के लिए मिथ्या कथाएँ तथा औपाख्यानिक कथाएँ, इस अर्थ में, प्रकृतानुकूल सामग्री बन जाती हैं। निस्सन्देह तिथियाँ, घटनाएँ एवं अन्य बाह्य वस्तुएँ महत्त्वपूर्ण हैं; परन्तु ये सब गुरु जी की महत्ता के स्वरूप तथा उनके प्रभाव की यथार्थ अव-गति के लिए आधार उपस्थित नहीं करती हैं। समीक्षक के साथ मिलकर यह मान लिया जा सकता है कि 'जनमसाखियों' में अतिशयोक्तियाँ हैं; परन्तु यह सत्य भी स्मरणीय है कि श्री गुरु नानक में आध्यात्मिक दिव्य समुच्छ्वास' प्रतिभा, दिव्य सहज-ज्ञान, हृदय की आर्द्रता और मनीषिता के जो विशिष्ट गुण

थे वे इन कथाओं के लिखने में प्रेरणा बनकर लेखकों के मनों में घर किए हुए थे। सम्भव है इन कथाओं में से अनेक के विवरण अक्षरशः सत्य न हों ; परन्तु प्रत्येक कथा अपने अन्तराल में श्री गुरु नानक के जीवन की उस गम्भीरता एवं उदारता को प्रमाणित करती है जिसने गुरु जी में विराजमान भगवान् के सांनिध्य को उनके अनुयायियों के लिए निरावरण किया। यही शाश्वत सत्य 'जनमसाखियों' की कथाओं में नेपथ्य में से बोल रहा है। ऐतिहासिक तथ्यों के गवेषक द्वारा अंकित श्री गुरु नानक का चित्र प्रत्येक अवस्था में अपूर्ण रहेगा, तथा उसमें गुरु जी के वास्तविक स्वरूप के अनेक अंगों का अभाव होगा।

श्री गुरु नानक का जीवन इतना गुणाढ्य और विशाल है कि किसी एक जीवनी में उसका पूर्ण वर्णन नहीं हो सकता है। इस हेतु उनकी जीवनी, इस शब्द के किसी भी पूर्ण अर्थ के विचार से, कभी नहीं लिखी जा सकेगी। हस्त-धृत ग्रन्थ गुरु जी के रूप को समझने का एक विनम्र प्रयास है, और इसके लेखक का निश्चयात्मकता का दावा कम से कम है। गुरु जी के पाँचसौवें जन्म-दिन के वर्ष में, जब उनके जीवन एवं सिद्धान्त के अध्ययन की ओर असामान्य ध्यान दिया जाएगा, यह ग्रन्थ कदाचित् कोई अपेक्षित सेवा कर सके। बस यही तथ्य कदाचित् इसके लिखने के औचित्य का समर्थक है। इस ग्रन्थ को लिखने के लिए अपेक्षित सामग्री प्रायः 'जनमसाखियों' से, और कभी कभी तत्पश्चात् लिखे गए ग्रन्थों से, प्राप्त की गई है : न तो पदार्थ विज्ञान तथा मनोविज्ञान के आधुनिक ज्ञान का आश्रय लेकर कथाओं को पुनः शब्दों का परि-धान प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, और न इन क्षेत्रों से गृहीत भाषा में उनकी व्याख्या की गई है। तथा, न ही अद्भुत-घटना-वृत्तान्तों को तर्कानुकूल सिद्ध किया गया है। श्रद्धालुजन धार्मिक महापुरुषों के जीवन को इन आश्चर्य-जनक-वृत्तान्तों के आश्रय से ही समझते आए हैं, और ये वृत्तान्त धार्मिक महा-पुरुषों की असाधारण शक्तियों के सूचक हैं। 'जनमसाखियों' की कथाओं का अनुशीलन अर्थ के विभिन्न प्रकारों को दृष्टि में रखकर किया जा सकता है, और उन कथाओं में अन्तर्लीन प्रतीकत्व का निरूपण नाना प्रकार से हो सकता है। परन्तु इस प्रकार का विश्लेषण इस पुस्तक के प्रणयन का प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है 'जनमसाखियों' के विभिन्न वृत्तान्तों एवं तदुत्तरकालीन स्रोतों में प्राप्य विवरणों को लेकर गुरु जी के कार्यों तथा उपदेशों के ऐसे चित्र का निर्माण जो संदिग्धता के दोष से अस्पृष्ट हो। इस प्रयास में परिप्रेक्ष्य में सन्तुलन रखा गया है। उस सन्तुलन के हेतु अनेक स्थलों में कतिपय विवरणों का त्याग, तथा अन्योन्य विरोधी कतिपय विवरणों के पारस्परिक विरोध का परिहार करना पड़ा है। फिर, इस सन्तुलन के लिए दो वस्तुओं को मानदण्ड बनाया गया है :

प्रथम, गुरु जी की रचनाएँ। द्वितीय, जो समाज उनके उपदेश की प्रसूति है उसके जीवन में उनके उपदेश का प्रत्यक्ष होना। इस प्रयोजन के लिए गुरु जी के अपने शब्दों का महत्त्व निर्बाधतया स्पष्ट है। किन्तु किसी धार्मिक नेता और उसके कार्य की अवगति के लिए उस नेता का एवं उसके उपदेश से उद्भूत जन-विश्वास का,—वह जो कुछ है उसका एवं वह अपने अनुयायियों के लिए जो कुछ बन जाता है उसका,—अन्योन्य प्रभाव भी महत्त्व की वस्तु है। गुरु जी जिस जाति के पूर्व-पुरुष थे उसमें उनकी स्मृति जिस रूप में गतिशील है एवं जिस रूप में वह प्रामाणिकता-पूर्वक अभिव्यक्त की जाती है, उसके मूल्य पर ध्यान देना गुरु जी के जीवन पर लगे ताले को खोलने के लिए एक अमूल्य कुंजी है।

'जनमसाखियों' की चारों चक्रिकाओं में वह 'जनमसाखी' प्राचीनतम है जो 'पुरातन' के नाम से अभिहित होती है, यद्यपि इसके आधारभूत हस्तकोश की उपलब्धि ईसवीय सन् १८७२ में ही हुई थी। Henry Thomas Colebrooke (१७६५-१८३७ ई०) एक संस्कृत विद्वान् और कलकत्ते में ईस्ट इन्डिया कम्पनि की परिषद् के सदस्य थे। उनके ग्रन्थ संग्रह में प्रविष्ट यह हस्तकोश १८१५ ई० में लन्दन पहुँचा, और अज्ञात एवं गवेषक-दृष्टि से अनिरीक्षित दशा में इन्डिया आफिस के पुस्तकालय में पड़ा रहा। १८७२ ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनि ने गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रतियाँ तथा कतिपय गुरमुखी हस्तकोश प्राच्य-भाषाओं के प्रख्यात जर्मन पण्डित Dr. Ernest Trumpp को भेज दिए। ये महानुभाव सिखों के धर्म ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए नियुक्त हुए थे। Dr. Trumpp को उन हस्तकोशों में एक पुस्तक मिली, जिसका नाम देवनागरी लिपि में लिखा 'नानक का ग्रन्थ जनमसाखी का' था। इसके कुछ भाग को दीमक ने खा डाला था। प्रचलित वृत्तान्तों के साथ इस हस्तकोश की तुलना करके Trumpp ने घोषित किया कि यह प्राचीनतम 'जनमसाखी' है, तथा समस्त 'जनमसाखी' परम्परा का मूलस्रोत है।[१] Trumpp के ग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने पर जब यह तथ्य सिखों को विदित हुआ तब उन्होंने पंजाब के लैफ़्टिनैन्ट गवर्नर, Sir Charles Aitchison को एक आवेदन पत्र भेजा। इसमें प्रार्थना की गई थी कि जो 'जनमसाखी' अचिरपूर्व प्रकाश में आई है उसे हमारे देखने के लिए भारत में मँगवा देखने की कृपा की जाए। वह १८८३ ई० में इन्डिया आफिस के पुस्तकालय से भारत आ गई। फोटोजिन्को-ग्राफ़ि के बल से शासन ने अपने व्यय से इसकी प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करवाईं, और लैफ्टिनैन्ट गवर्नर ने, निजी तौर पर, भेंट के रूप में, उनको प्रचारित

१. Ernest Trumpp, The Adi Granth, p. ii

किया। लाहौर की 'सिन्घ सभा' ने, जो सुधारवादी सिखों की एक सभा थी, साधारण वितरण के लिए १८८४ ई० में इसे लीथो प्रैस में मुद्रित करवाया। लोगों ने इस संस्करण का नाम विलायत वाली जनमसाखी रख लिया। इसी का अन्य नाम कोलब्रुक जनमसाखी भी प्रसिद्ध हो गया। यह नाम इस तथ्य का सूचक है कि इन्डिया आफिस पुस्तकालय को इस ग्रन्थ की मूल प्रति मिस्टर कोलब्रुक से प्राप्त हुई थी।

१८८४ ई० में ओरिअन्टल कालेज, लाहौर के भाई गुरमुखसिंह को पंजाब के हाफ़िज़ाबाद नामक नगर में एक प्राचीन हस्तकोश प्राप्त हुआ। उसने यह Mr. Max Arthur Macauliffe को दे दिया। मैकालिफ़ के हाथ में उस समय सिखों के धर्म ग्रन्थ का अंग्रेज़ी-भाषान्तर करने तथा सिख गुरुओं के जीवन के इतिहास के लिखने का कार्य था। गुरमुखी के हस्तलिखित ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न पदों को भी एक दूसरे के साथ मिलाकर लिखने की रीति प्रचलित थी। मैकालिफ़ ने उक्त हस्तकोश की एक प्रतिकृति प्रस्तुत की। उसमें पदों को पृथक् करके लिखा गया, तथा विराम-चिह्नों का प्रयोग किया गया। इससे ग्रन्थ का पढ़ना सुगम हो गया। उसने इसे अपने ही व्यय से मुद्रित भी करवाया। यह संस्करण हाफ़िज़ाबाद वाली जनमसाखी, और मैकालिफ़ वाली जनमसाखी के नामों से प्रसिद्ध हुआ।

SIKHBOOKCLUB.COM

कोलब्रुक और मैकालिफ़ वाली जनमसाखियों के पाठ सर्वथा एक थे। यदि उनमें परस्पर कुछ भेद था तो अत्यन्त स्वल्प—कहीं-कहीं केवल शाब्दिक भिन्नता। वे दोनों किसी एक ही मूल की प्रतिलिपियाँ प्रतीत होती थीं। ख्यात-नामा पंजाबी कवि एवं विद्वान् भाई वीरसिंह (१८७२-१९५७ ई०) ने उक्त दोनों जनमसाखियों को एक दूसरे के साथ मिलाकर पढ़ा, कोलब्रुक वाली जनमसाखी के कीट-भक्षित स्थलों में मैकालिफ़वाली जनमसाखी से लुप्त पाठों को भरा, और इस प्रकार एक मिश्रित संस्कार प्रस्तुत किया। यह संस्करण ईसवीय सन् १९२६ में 'पुरातन जनमसाखी' के नाम से प्रकाशित हुआ। अब इसका यह नाम लोक-सम्मत हो चुका है, तथा इसका ग्रन्थ-पाठ प्रामाणिक माना जाता है। इस जनमसाखी का तृतीय संस्करण खालसा समाचार, अमृतसर ने, ईसवीय सन् १९४८ में, प्रकाशित किया। वर्तमान पुस्तक के प्रणयन में इसी तृतीय संस्कण का उपयोग किया गया है।

बाह्य एवं आन्तरिक साक्ष्य को, विशेषतः भाषा-गत विशेषता को, उपलब्ध प्राचीनतम हस्तकोश की लिपि को तथा इसकी कथा के अन्य जनमसाखियों के लिए आदर्शीभूत स्वरूप को देखने से यह विश्वास होता है कि यह जनमसाखी जिसके तीन संस्करणों का उल्लेख ऊपर किया गया है, ज्ञात जनमसाखियों में प्राचीनतम है। किन्तु इसके पाठ की कतिपय विशेषताओं से अनुमान होता है

कि इसकी रचना श्री गुरु नानक के 'जोती जोत समाने' के प्रायः अस्सी वर्ष पश्चात् हुई होगी, उससे पूर्व नहीं। यदि यह विश्वास प्रकट किया जाए कि प्राचीनतमतया गृहीत जनमसाखी से प्राचीनतर ऐसी जनमसाखी का सद्भाव भी सम्भव है, उपलभ्यमान हस्तकोश जिसकी प्रतिलिपियाँ, अथवा कतिपय प्रकार से पाठान्तर हैं, तो कहा जाएगा कि ऐसी जनमसाखी का सद्भाव अभी अविदित होता है।

एक जनमसाखी सोढी मेहरबान (१५८१-१६४० ई०) की कृति है। इसका सद्भाव तो चिरकाल से सर्व-मान्य चला आ रहा है; परन्तु इसका सम्पूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ केवल अचिरपूर्व प्रकाश में आया है। यही एक जनमसाखी है जो निर्विवादतया किसी एक कर्ता की कृति घोषित की जा सकती है। मेहरबान चतुर्थ गुरु श्री रामदास (गुरुपीठ १५७४-८१ ई०) का पौत्र था; परन्तु इसका पिता प्रिथीचन्द सिख-गुरु-गृह की परम्परा के मार्ग से दूर हो गया था। इससे मेहरबान की कृति लांछित हो गई। पुरातनता के पक्षपाती गुरु-भक्त-वर्ग ने इसको शाखान्तर से सम्बद्ध व्यक्ति की रचना मान कर इसका परित्याग कर दिया। परन्तु जब १९४० ई० में डाक्टर गन्डासिंह को इसके एक प्रामाणिक हस्तकोश की प्राप्ति हुई, विशेषतः जब १९६२ ई० में इसका प्रकाशन हुआ, तब से विद्वज्जगत् में इसके लिए व्यापक अभिरुचि उत्पन्न हो गई है। इसकी रूपरेखा सामान्यतः वही है जो 'पुरातन' जनमसाखी की है; परन्तु इसमें श्री गुरु नानक के 'शबदों' का विकास और उनके अर्थ का बोध कराने के हेतु 'गोष्टों' (गोष्ठियों) का बाहुल्य है। इससे इसमें जीवनी-परक भाग की बहुत न्यूनता हो गई है, जो ग्रन्थ की विशालकायता को देखते हुए अतिलघु प्रतीत होता है।

जनमसाखियों की परम्परा में योग प्रदान करने वाले व्यक्तियों में मेहरबान निस्सन्देह सबसे महान् विद्वान् था। उसका गद्य बहुत ही कलाकलित है, कहीं-कहीं तो इसमें से स्फुलिंग उड़ते हैं। उसने स्वतन्त्रतया अरबी, फ़ारसी एवं संस्कृत के तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है, तथा वह वर्ण्यमान वस्तु-स्थिति के अनुरूप उनके अनुपात को परिवर्तित करता गया है। उसकी भाषा उस 'हिन्दी' की एक विधा है, जो हिन्दू-मुसलमान-सम्पर्क के कारण पंजाब में विकसित हुई, तथा जिसने अन्ततोगत्वा उर्दू का रूप धारण किया। मेहरबान की दृष्टि नाटकोचित कुतूहल एवं ऐतिहासिक तत्त्वों के ऊपर भी रही है, और तलवंडी में व्यतीत हुए श्री गुरु नानक के बाल्य-जीवन के उसके कतिपय वर्णन विवरणों की विस्मय-जनक विशदता से चमक उठे हैं। परन्तु दुःख है ये गुण शीघ्र ही व्याख्यानिक सम्वादों में विलीन हो जाते हैं। मेहरबान ने गुरुओं के कुल में जन्म ग्रहण किया था, और यद्यपि उसके पिता, प्रिथीचन्द, ने श्री गुरु अर्जुन से सम्बन्धविच्छेद

कर लिया था, तथापि वह (मेहरबान) गुरु जी का विश्वास-भाजन था। उसके साहित्यिक गुणों को एवं सिख-धर्म के स्रोतों के साथ उसके निकट सम्बन्ध को देख कर इस आशा का होना स्वाभाविक है कि मेहरबान ने श्री गुरु नानक के जीवन की जैसी रूपरेखा अंकित की है वह उससे अधिक सारवती रूपरेखा प्रस्तुत कर सकता था। आधुनिक विद्वान् एक विशेष बात के लिए—श्री गुरु नानक के जन्म की तिथि के लिए—मेहरबान के साक्ष्य को महामूल्यवान् समझते हैं। मेहरबान की रचना का काल भी प्रायः वही है जो 'पुरातन' जनमसाखी की रचना का है। जिस हस्तकोश में मेहरबान का ग्रन्थ प्रथम खण्ड के रूप में संगृहीत मिला है उसमें छै 'पोथियाँ' थीं, जिनमें से १९४० ई० में केवल तीन प्राप्त हुई थीं। उस हस्तकोश में मेहरबान के ग्रन्थ का नाम 'पोथी सचखण्ड' दिया गया है। किरपालसिंह ने इसका सम्पादन किया और इसे 'जनमसाखी गुरु नानक देव जी' के नाम से, ख़ालसा कालेज, अमृतसर ने, १९६४ ई० में, प्रकाशित किया।[1] हस्तधृत ग्रन्थ में इसका उल्लेख मेहरबान जनमसाखी के नाम से किया गया है।

'पुरातन' जनमसाखी के हस्तकोशों की प्राप्ति से पूर्व जो जनमसाखी सर्व-साधारण को विदित थी तथा जिसे सब स्वीकार करते थे वह 'भाई बाला वाली जनमसाखी' थी। यद्यपि वर्तमान शतक में कठोर समीक्षकीय दृष्टि से इसकी परीक्षा की गई है, तथापि साधारण जनता के मनों पर से इसकी छाप नहीं मिटी है। इसका कारण यह है कि इसके विषय में यह दीर्घ-कालीन प्रसिद्धि है, और इसका यह दावा है कि यह श्री गुरु नानक के उत्तराधिकारी, श्री गुरु अंगद (गुरुपीठ १५३९-५२ ई०) के सम्मुख, भाई बाला के मुख से निकले शब्दों को सुन-सुन कर लिखी गई थी, और भाई बाला को आद्य गुरु के अन्य-तम सहचारी होने का यश प्राप्त है। किन्तु यह दावा सुगमता से अस्वीकृत किया जा सकता है। कारण, प्रथम तो इस जनमसाखी की भाषा स्पष्टतया किसी उत्तरकाल की है; द्वितीय, इसके ग्रन्थ-पाठ में कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे अनुमान होता है कि इसकी रचना अपेक्षाकृत आसन्न अतीत में हुई होगी। स्वयं

---

१. इसके अनन्तर ख़ालसा कालेज अमृतसर ने मेहरबान जनमसाखी के हस्तकोश का द्वितीय भाग भी प्रकाशित कर लिया है। यह भाग प्रारम्भ से 'पोथी हरजी' के नाम से प्रसिद्ध रहा है। कहा जाता है इसका रचयिता मेहर-बान का पुत्र हरजी था। प्रथम भाग में श्री गुरु नानक के जीवन की कथा जहाँ अपूर्ण छूट जाती है इसमें उसे वहीं से आगे बढ़ाया गया है। किन्तु कथा व्याख्या एवं सम्वादों में प्रायः पूर्णतया दबी पड़ी रहती है। वर्तमान ग्रन्थ में इसका उल्लेख 'मेहरबान जनमसाखी, भाग २' के नाम से किया गया है।

भाई बाला की ऐतिहासिकता में सन्देह प्रकट किया गया है। इस जनमसाखी के प्रकाश-प्राप्त हस्तकोशों में प्रक्षेप भी प्रचुरता से हैं। इन प्रक्षेपों का कर्ता हिन्दालियों का धर्मभ्रष्ट वर्ग है। स्वयं हिन्दाल तो एक पूतात्मा सिख था; किन्तु उसके अनुयायियों ने उसे श्री गुरु नानक के समीप उच्च आसन पर आसीन करने के लिए इसमें अनेक कथाएँ मिला दी हैं। ईसवीय विगत शताब्दी के सत्तरवें से अस्सीवें वर्ष तक जब इस जनमसाखी का मुद्रण प्रारब्ध हुआ तब अत्यन्त स्फुट प्रक्षेप निकाल दिए गए थे। परन्तु इसका ग्रन्थ-पाठ अब भी प्रक्षेपों एवं अतिरञ्जित वृत्तान्तों से मुक्त नहीं है। उसके अनुशीलन के लिए सावधानता अपेक्षित है। वर्तमान लेखक ने इस जनमसाखी के जिस संस्करण का उपयोग किया है उसका प्रकाशन राय साहिब मुन्शी गुलाबसिंह ऐन्ड सन्ज़, लाहौर ने, नानक शाही सम्वत् ४५४ (१६२३ ई०) में, किया था।

चतुर्थ जनमसाखी, जो सर्व सम्मति से उत्तरकालीन ग्रन्थ है, भाई मनीसिंह की कृति कही जाती है। भाई मनीसिंह श्री गुरुगोविन्दसिंह का समकालभव था, और १७३४ ई० तक जीवित रहा था। इसके प्राक्कथन में कथित है कि कतिपय सिखों ने भाई मनीसिंह से आवेदन किया कि श्री गुरु नानक देव की जनमसाखी को मतभेदियों द्वारा उत्पादित विरूपता से मुक्त किया जाए। भाई मनीसिंह ने कहा कि गुरु जी की जनम साखी को इस प्रकार के दोषों से अस्पृश्ट रखने का उपाय श्री गुरु अर्जुन ही कर गए थे। उन्होंने भाई गुरदास से जो 'वार' लिखवाई उसका उद्देश्य यही था। वह 'वार' गुरु जी की प्रामाणिक जनम साखी है। सिखों ने कहा कि भाई गुरदास की 'वार' में केवल संकेत हैं, जिनका विस्तार अपेक्षित है। भाई मनीसिंह ने कहा मुझ में ऐसी योग्यता कहाँ कि मैं भाई गुरदास सदृश प्रतिभाशाली पुरुष के ग्रन्थ के ऊपर टीका रच सकूं; परन्तु अन्त में उसने उनके आग्रह पर 'अंगीकृत' कह दिया। प्राक्कथन में ही यह उत्थानिका रोचक है। कारण, इसमें इस तथ्य की स्वीकृति है कि जनम साखियों की परम्परा विकृत होती रही है, और यह उत्थानिका भाई गुरदास की 'वार' के स्वरूप का, एवं सिख सम्प्रदाय के सदाचारसम्पन्न तथा विद्यानिधान लोगों में भाई गुरदास की स्थिति का, यथावत् मूल्य अंकित करती है। परन्तु प्रतीत होता है कि भाई मनीसिंह एक प्रमाण-भूत पुरुष था; अतः ग्रन्थ को प्रामाणिक तया प्रसिद्ध करने के लिए उसका नाम प्राक्कथन में प्रविष्ट कर दिया गया है। पुस्तक के अन्त में कहा गया है कि जब यह जनमसाखी सम्पूर्ण हो गई तब श्री गुरु गोविन्द सिंह का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उनके सम्मुख उपस्थित की गई। सिख समाज में भाई मनी सिंह की स्थित चाहे

जो हो, श्री गुरु गोविन्द सिंह के जीवनकाल में वह समस्या, जिसके विष में यह समझा जाता है कि वह गुरु जी के सम्मुख आई होगी, निश्चय ही उनके किसी अनुयायी की अपेक्षा उनके सम्मुख अधिक स्पष्टता से आई होगी। 'इस जनम साखी का कर्ता भाई मनीसिंह नहीं था' इस विचार की पुष्टि इस ग्रन्थ की भाषा करती है ; क्योंकि वह भाई मनीसिंह श्री गुरु गोविन्द सिंह का एक महा निकट सहचर एवं अनुयायी था, उसका जीवन एक अशान्ति तथा वीरता के काल में व्यतीत हुआ था, और उस काल के अन्य गुरु-भक्त सिखों के तुल्य, उसने उस काल की प्रकृति एवं शब्दावली का कुछ अंश अपना लिया था। तथापि, समस्त जनम साखी में देघ[1] ही एक ऐसा शब्द है जो उस काल की वीर-भावना से सिक्त बोलचाल का स्मारक है।

इस ग्रन्थ के कर्ता के प्रश्न को कुछ क्षण के लिए विस्मृत करके देखा जाए तो यह ग्रन्थ जनम साखियों की परम्परा में एक स्थिति विशेष का सूचक कहा जाएगा, चाहे वह स्थिति कितनी ही अस्पष्ट हो। स्वयं ग्रन्थ में उसका नाम 'गिआन रतनावली' दिया गया है, परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में इसका उल्लेख भाई मनीसिंह जनमसाखी के नाम से किया गया है।

भाई गुरदास (१५५१-१६३९ ई०) ने 'वारों' तथा 'कबित्तों' की रचना सिखों के आचार-विचार के विशद वर्णन के लिए की थी। उनमें श्री गुरु नानक का उल्लेख केवल कहीं-कहीं है, और वह भी बहुधा स्तुति के रूप में। परन्तु प्रथम 'वार' की २३ से ४५ तक की 'पौड़ियों' (सोपानों) में गुरु जी का जो वृत्तान्त वर्णित है, यद्यपि वह संक्षिप्त है तथापि प्रकाश-प्रसारक है। पुनः, यद्यपि यह वृत्तान्त छन्दोबद्ध है और इसका क्षेत्र पर्याप्त सीमित है तथापि मूलतः यह जनमसाखियों के परिप्रेक्ष्य के सदृश है। भाई गुरुदास की 'वारों' की रचना का काल प्रायः वही है जो 'पुरातन' जनमसाखी की रचना का है। 'श्री गुरु नानक के उत्तराधिकारियों तथा अपने काल के कतिपय दीर्घजीवी प्रमुख सिखों के साथ भाई गुरदास का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा।' इस विचार से भाई गुरदास के साक्ष्य से पाठकों में जो विश्वास उत्पन्न होता है उसे एक ओर रख दिया जाए, फिर भी गुरु जी के कार्योद्देश्य के धार्मिक एवं सामाजिक महत्त्व के विषय में तथा उस (कार्योद्देश्य) से उद्भूत विश्वास के निर्माण के विषय में भाई गुरदास का निर्णय पाठकों को विशेषतः हृदयस्पर्शी प्रतीत होगा। इसके अतिरिक्त, एक अन्य छन्दो-बद्ध पुस्तक है। इसका नाम है 'सूचक

१. पृष्ठ १६६। 'देघ' शब्द 'देग' का विकार है।

परसंग गुरु का'।[1] इसमें श्री गुरु नानक के जीवन की समस्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संक्षिप्त उल्लेख हैं। इसका लेखक भाई गुरदास का समकालभव भाई बहिलो था। इस में केवल अड़तीस दोहे-सदृश छन्दों में समस्त जीवन दे दिया गया है। इसमें प्रधानतया उसी आदर्श (Pattern) का अनुसरण किया गया है जिसे उत्तर काल में बाला जनमसाखी ने लोकप्रिय बनाया।

उत्तरकालीन ग्रन्थों में उन ग्रन्थों की गणना की जाती है जो 'महिमा प्रकाश' तथा 'नानक प्रकाश' को उपजीव्य बनाकर गद्य तथा पद्य में लिखे गए हैं। 'महिमा प्रकाश वार्तक' (गद्य) की रचना १७४१ ई० में, किरपाल सिंह भल्ला ने की, और 'महिमा प्रकाश कविता' (पद्य) १७७६ ई० में सरूपदास भल्ला द्वारा प्रणीत हुआ। इन दोनों ग्रन्थों में सब गुरुओं के जीवन वर्णित हैं। तथा, इन दोनों में वर्णित श्री गुरु नानक का जीवन वृत्तान्त विवरण एवं क्रम में एक समान है ; भेद इतना ही है कि गद्य-निबद्ध जीवन पद्य-निबद्ध से बहुत छोटा है। पद्यमय ग्रन्थ में छियासठ साखियाँ (घटनाएँ) हैं और गद्यमय में उससे बीस अधिक। अभी तक दोनों ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुए हैं ; हाँ, महिमा प्रकाश-वार्तक में से श्री गुरु नानक का जीवन पृथक् करके देहरादून से, १९५९ ई० में, प्रकाशित किया गया था। परन्तु इसकी बहुत थोड़ी प्रतियाँ छापी गई थीं।

स्थूलतया महिमा प्रकाश के उपजीवी ग्रन्थ 'पुरातन जनमसाखी' की परम्परा में आते हैं, और नानक प्रकाश, जिसे भाई सन्तोख सिंह ने १८२३ ई० में पूर्ण किया, 'बाला जनमसाखी' की श्रेणी से सम्बद्ध है। परन्तु इन दोनों ग्रन्थों में से नानक प्रकाश ने पाठकों को अपेक्षाकृत बहुत प्रभावित किया है। कारण यह है कि भाई सन्तोख सिंह एक परम-प्रतिभाशाली कवि है, तथा उसके स्मारकोपम ग्रन्थ ने जिसमें दस के दस गुरुओं की जीवनियां उपनिबद्ध हैं, उसको यशस्वी बना दिया है। सार-भूत अंश को ध्यान में रखकर देखने से ज्ञात होता है कि उसका 'नानक प्रकाश' बालाजनमसाखी का प्रविस्तर है। भाई सन्तोख सिंह की सर्जन शक्ति के सम्बन्ध में सन्देह असम्भव है, तथापि न तो वह श्री गुरु नानक के काल को पकड़ सका है, और न अपने अंकित उनके चित्र को शरीरधारी बना सका है। इस सम्बन्ध में उसकी कवित्व-शक्ति का प्रयोग श्री गुरु नानक के उत्तरवर्ती गुरुओं की जीवनियों में अधिक सुचारु रूप से हुआ है ; और उस क्षेत्र में उसने जो सफलता प्राप्त की उससे उसे आद्य गुरु की जीवनी के विषय में भी कीर्ति उपलब्ध हो गई, यद्यपि वह उस

---

१ अब तक इस ग्रन्थ के एक ही हस्तकोश का पता चला है, और वह हस्तकोश डाक्टर गन्डासिंह के निजी ग्रन्थ-संग्रह में है।

कीर्ति का उतना अधिकारी नहीं था। कुछ भी हो, नानक प्रकाश अभी तक श्री गुरु नानक पर परम प्रतिष्ठा का ग्रन्थ है। इसका सतत पाठ किया जाता है, तथा गुरद्वारों में धर्म के जिज्ञासुओं के सम्मुख इसकी व्याख्या की जाती है। इसमें कवि की महती कृति के चौदह भागों में से तीन भाग आ जाते हैं। भाई वीर सिंह ने इस महती कृति का उत्तम सम्पादन और खालसा समाचार अमृतसर ने इसका प्रकाशन किया है।

१९२८ ई० में स्वयं भाई वीरसिंह द्वारा संकलित, 'श्री गुरु नानक चमत्कार' आधुनिक ग्रन्थों में पर्याप्त लोकप्रिय है। इस ग्रन्थ के सर्जन का उद्देश्य है श्री गुरु नानक की जीवनी की कल्पना-बल से ऐसी पुनः सृष्टि जिसमें मूलभूत ऐतिहासिक देश-कालाऽवस्था अक्षत रहे। वास्तव में संकलनकर्ता पाद टिप्पणों में तथा अन्यत्र कतिपय ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाता है जिनके लिए अनुसन्धान अपेक्षित है और उनसे स्पष्टतया भासित होता है कि भाई सन्तोखसिंह के ग्रन्थ के सम्पादन के समय इस विषय के साथ उसकी जो गहरी एवं लम्बी मुठभेड़ हुई यह उसी का परिणाम है। 'गिआनी ग्यान सिंह' की पुस्तक, 'त्वारीख गुरु खालसा' में जिसके प्रथम भाग को लेखक ने 'गुरु नानक की जनमसाखी' का नाम दिया है, जनमसाखियों की कतिपय कथाओं के लिए घटनाओं की तिथियाँ एवं स्थानों के नाम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। पंजाबी पत्रिका 'आलोचना' में, कुछ समय पूर्व, साहिब सिंह की लिखी जो श्री गुरु नानक की जीवनी क्रमशः प्रकाशित होती रही है, आपातिक दृष्टि से उसका उद्देश्य भी यही प्रतीत होता है। गिआनी ग्यानसिंह एक महान् यात्री था और उसने गुरु जी के जीवन से सम्बद्ध अनेक स्थानों की यात्रा की थी। साहिबसिंह ने स्व-लिखित गुरु जी की जीवनी में कतिपय निश्चित तिथियों का उल्लेख किया है। श्री गुरु नानक के यात्रा-चक्र के वर्षों में हुए जो मुख्य-मुख्य धार्मिक उत्सव भारतीय पञ्चांग में देखे जा सकते हैं प्रधानतया उन्हीं में से कतिपय को लेकर की हुई गणना के बल से उसने इन तिथियों का निर्णय किया है। परन्तु अन्य आधार के अभाव की अवस्था में उन तिथियों की यथार्थता की परीक्षा असम्भव है। श्री गुरु नानक की जीवनी लिखने के प्रयत्न में उनकी यात्राओं की तिथियों तथा स्थानों का निर्णय करने की समस्या जितनी कठिन है कोई अन्य उतनी नहीं। इस सम्बन्ध में सम्प्राप्य वह ज्ञान-सामग्री, जो किसी सीमा तक प्रकृतोपयोगी है, बहुत स्वल्प तो है ही व्याघात दोष से युक्त भी है। प्रकृतोपयोगी ज्ञान के वे आधार बहुत कम हैं जिनकी सत्यता की पुष्टि दृढ़ता से की जा सकती है, और जिनके विषय में असंशयित भाव से कहा जा सके कि 'देखिए अमुक आधार।' परिणामतः इस प्रकरण में प्रत्येक वस्तु और घटना-वर्णन विवाद का, तथा कामचारिक निर्णय के लांछन का, विषय बना रहेगा।

परन्तु घटनाओं की ज्ञान-सामग्री के स्रोतों के दृढ़-पद परस्पर-विरोध से श्री गुरु नानक के जीवन-चित्र की सहज सत्यशीलता की प्रभा मन्द नहीं होनी चाहिए;—जीवन-चित्र, जिसका पुनर्निर्माण उपलभ्यमान सामग्री से सामान्यतः अनाक्षेप्य असन्दिग्धता के साथ किया जा सकता है।

फ़ारसी भाषा में लिखे, 'रिसाल-ए-नानकशाह' नामक एक अप्रकाशित ग्रन्थ का अंग्रेज़ी अनुवाद उस भाषा में प्रकाशित इस विषय का प्रथम ग्रन्थ है। यह फ़ारसी ग्रन्थ Major James Brown के लिए किसी अविदित देवनागरी हस्तकोश से प्रस्तुत किया गया था। मेजर ब्राउन ईस्ट इन्डिया कम्पनि का राजदूत था और मुग़ल राजसभा में, दिल्ली में, रहता था। वह सिखों के सम्बन्ध में समाचारों के संग्रह का रसिक था, जो उस समय पंजाब को अपने अधिकार में रखे हुए अपनी नींव जमाने में लगे हुए थे। ब्राउन ने स्वयं फ़ारसी ग्रन्थ का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया, तथा अपनी भूमिका के साथ, १७८८ ई० में, History of the Origin and Progress of the Sikhs के नाम से इसे प्रकाशित किया। इससे पूर्व सिखों के विषय में किसी भाषा में कोई ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुआ था। इसका प्रकाशन श्री गुरु गोबिन्द सिंह के 'जोति जोत समाने' के अस्सी वर्ष पश्चात् तथा प्रथम मुद्रित जनमसाखी से प्रायः सौ वर्ष पूर्व हुआ। ब्राउन की इस पुस्तिका में श्री गुरु नानक का जीवन वृत्तान्त अतिसंक्षिप्त एवं उपक्रमणिकात्मक था। इसके पश्चात् गुरु जी का जीवन वृत्तान्त कतिपय अन्य अंग्रेज़ी पुस्तकों और लेखों में प्रकाशित हुआ। यह वृत्तान्त प्रकार तथा विस्तार के विचार से ब्राउन की पुस्तिका के वृत्तान्त के सदृश था। इनमें से कतिपय के लेखक वे पर्यटक एवं साहसिक यात्री थे जो सिख महाराजा रणजीत सिंह की राज-सभा के वैभव की कहानियों से आकृष्ट होकर पंजाब आए थे, तथा जिनके मन सिखों, उनके धर्म एवं देश, के सम्बन्ध में राजनीतिक जिज्ञासा से पूर्ण थे। इन वृत्तान्तों में से कतिपय तो दैनिकियों तथा संस्मरणों के रूप में थे (George Forster : A Journey from Bengal to England, 1798), और कतिपय महाराजा रणजीत सिंह के यूरोप निवासी सेवकों द्वारा लिखी पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में लिखे लेखों के रूप में (Stainbach : The Punjab, 1845)। इनके अतिरिक्त, नियमपूर्वक प्रकाशित कतिपय निबन्ध भी थे। उदाहरणार्थ, Malcolm का Sketch of the Sikhs, 1812 ; H. T.

---

१ 'शाह' फ़ारसी का शब्द है। इसका अर्थ है राजा। यह मुसलमान सन्तों के नाम के अन्त में प्रायः संलग्न रहता है। श्री गुरु नानक के मुसलमान प्रशंसकों तथा शिष्यों ने इसे गुरु जी के नाम के अन्त में भी संलग्न कर दिया। मुसलमानों में अब भी गुरु जी का यही नाम प्रचलित है।

SIKHBOOKCLUB.COM

Prinsep का The Origin of the Sikh Power in the Punjab, 1834; और W. L. M. Gregor का The History of the Sikhs, 1846। इन पुस्तकों और लेखों में दिए सिख सम्प्रदाय के उद्भव के वर्णन की सामग्री अधिकतर या तो दन्तकथाओं से, या लेखकों के भारतीय कर्मचारियों द्वारा उनके लिए प्रस्तुत किए गए हस्तलिखित ग्रन्थों से संकलित की जाती थी। ये लेखक श्री गुरु नानक के जीवन के वृत्तान्तों को, जो उन्हें उक्त प्रकार से प्राप्त होते थे, अभ्यसूया के साथ देखा करते थे। इस काल के लेखकों का उद्देश्य था श्री गुरु नानक के उपदेशों से उद्भूत धर्म के ऐतिहासिक प्रभाव को, तथा इस धर्म ने महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल में जो राजनीतिक उच्चता प्राप्त कर ली थी उसको मापना। १८५९ ई० में सिख राज्य के ईस्ट इन्डिया कम्पनि के शासनाधीन हो जाने के पश्चात् भी इस प्रकार के लेख लिखे जाते रहे। ऐसे लेखों में १८५९ ई० में Robert Needham Cust द्वारा लिखा गया निबन्ध 'Sikhland, or the Country of Baba Nanak'[1] लोकप्रिय हुआ। Cust पंजाब के प्रारम्भिक अंग्रेजी सिविल अधिकारियों में से था। Cust निबन्ध में बालाजनमसाखी में से संगृहीत गुरु-जीवनी के विवरण की पुनरावृत्ति थी, और जैसा इस निबन्ध के शीर्षक से प्रकट है इसमें पंजाब के लिए श्री गुरु नानक के धर्म की महत्ता पर बल दिया गया था। वह अंग्रेजी ग्रन्थ, जिसमें सर्वप्रथम मूल स्रोतों से लाभ प्राप्त किया गया था, Joseph Davey Cunningham द्वारा लिखित, History of the Sikhs था। इसका प्रकाशन १८४९ ई० में हुआ था। कनिंघम ईस्ट इन्डिया कम्पनि की सेना में एक कप्तान था उसने सिखों के धर्म ग्रन्थ तथा इससे सम्बद्ध फ़ारसी और पंजाबी के हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन किया। यद्यपि कनिंघम की लिखी गुरु जीवनी संक्षिप्त है, तथापि उसमें लेखक ने श्री गुरु नानक जिस सामाजिक स्थिति में उत्पन्न हुए थे उसका तथा गुरु जी द्वारा ऊहित सर्जनकारी तत्व का जो मूल्यांकन किया है वह महत्त्व से शून्य नहीं है। Dr. Trumpp ने गुरु ग्रन्थ साहिब के कतिपय अंशों का जो अनुवाद, १८७७ ई० में प्रकाशित किया, उसमें उसने जनमसाखियों से संकलित संक्षिप्त गुरु जीवनी भी संयुक्त की। Dr. Trumpp ने कोलब्रुक के समग्र हस्तकोश का ही अंग्रेजी अनुवाद नहीं प्रस्तुत किया; उसने एक ऐसे ग्रन्थ के कतिपय स्थलों को भी अंग्रेजी में अनूदित किया जो कदाचित् हिन्दाली जनमसाखी का विकृत रूपान्तर था। श्री गुरु नानक की सम्पूर्ण जीवनी Max Arthur Macauliffe की लेखनी से प्रसूत हुई। यह मैकालिफ के छै

---

१. यह Robert Needham Cust के ग्रन्थ Linguistic and Oriental Essays, 1880, London, Trubner & Co. में समाविष्ट है।

भागों वाले ग्रन्थ का प्रथम भाग है। इस बृहद् ग्रन्थ का नाम है The Sikh Religion और यह १६०६ ई० में आक्सफ़ोर्ड में मुद्रित हुआ था। मैकालिफ़ ने सिख धर्म की मौखिक और लिखित दोनों प्रकार की पारम्परीय कथाओं की पूर्ण छानबीन की, और फिर इन कथाओं से निकटतया अन्वित एक जीवनी प्रस्तुत की।

वर्तमान काल में सिख लेखकों द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी आधुनिक गुरु-जीवनियां हैं—करतारसिंह की Life of Guru Nanak Dev (१६३७); नरायणसिंह की Guru Nanak Reinterpreted (१६६५), और गोपालसिंह की Guru Nanak (१६६७)। अन्य है सेवाराम सिंह की The Divine Master (१६३०)। प्रकाशकों के प्रमाद से यह यथोचित उपयोग में नहीं आ सकी। यह लेखक के १६०४ में प्रकाशित ग्रन्थ का परिवर्धित संस्करण था। तेजासिंह और गन्डासिंह द्वारा लिखित A Short History of the Sikhs (Orient Longmans, Calcutta, 1950) में, और खुशवन्तसिंह की पुस्तक A History of the Sikhs (Princeton University Press, 1963) में श्री गुरु नानक के जीवन पर दो लेख हैं। Princeton Press में ही The Sikhs, नामक एक ग्रन्थ १६४६ ई० में भी मुद्रित हो चुका था। यह John Clark Archer की रचना है। इसमें श्री गुरु नानक का जीवन यद्यपि कुछ शीघ्र-हस्त-लिखित है तथापि रोचक है। इसमें वास्तविक और अशरीरी नानकों के मध्य साम्य प्रदर्शित है। इन्दुभूषण बनर्जी के ग्रन्थ The Evolution of the Khalsa, भाग १, १६३७, में गुरु-वृत्तान्त ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक अनुसन्धानपूर्ण एवं समीक्षकीय है। W. H. McLaod का Guru Nanak and the Sikh Religion (Oxford, 1968) इस प्रकरण का अर्वाचीनतम ग्रन्थ है। इसका स्वर वही है जो इन्दुभूषण बनर्जी के ग्रन्थ का है। इसमें जनमसाखी-साहित्य का श्रम-साधित वैज्ञानिक विश्लेषण, एवं श्री गुरु नानक की शिक्षाओं पर एक विस्तृत और ओजस्वी निबन्ध, है।

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

२

ऐतिहासिक परिस्थिति

मानव के विदित इतिहास के उद्‌गतिशील वर्षों की ससत्त्व एवं स्वच्छ कालावधियों में से कतिपय वे थीं जिनमें सार्वभौम सत्य का संदेश सुनाने वाले, दैवी प्रेरणा से समुच्छ्वसित, धर्म-गुरु विद्यमान रहे। ये कालावधियाँ इस हेतु महत्त्वपूर्ण हैं कि वे औदार्य तथा प्रगति के नियमों को दृढता एवं वेग प्रदान करती हैं, और इस प्रकार मानवता-वर्ग को सामूहिकतया विशाल बनाती हैं। ऐतिहासिक अर्थ में, वे भावुक तथा मानवता-हितैषी आत्माओं के उन व्यवहारों को ध्यानाकर्षक बनाती हैं जो आसवीय उबाल से तमतमाती, एवं ललकारती हुई अवस्थाओं के अनुकूल थे। इस प्रकार की एक ललकार भारतवर्ष में ईसवीय पन्द्रहवें शतक में उत्पन्न हुई। उस ललकार के साथ श्री गुरु नानक पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। उन्होंने उस ललकार के पूर्णअर्थ तथा बल का अनुभव किया। उन्होंने उस समय में विद्यमान दशा से मानवतावादी तथा अर्थपूर्ण जीवन की एक नवीन पद्धति निकाली तथा इसे अभिनव एवं परिपूत सूचनाओं को लोक में लाने का माध्यम बनाया।

मुसलिम शासन के भारत में विद्यमान स्थिति का सारांश यह था कि उस समय हिन्दू और मुसलिम संस्कृतियाँ, जो महत्त्वपूर्ण तो थीं, साथ ही कई प्रकार से अन्योन्य विरोधी भी थीं, परस्पर कलह करती रहती थीं। ईसवीय अष्टम शतक में मुसलिम आक्रमण के आरम्भ से लेकर दोनों संस्कृतियाँ समानान्तर रेखाओं के तुल्य प्रवर्तमान रहीं। दोनों का सम्मिलन बहुत कम होता था और यदि काल-गति में कभी होता भी था तो उसका परिणाम केवल सूक्ष्म संयोग होता था। निस्सन्देह कभी कभी भावों की उदारता के दान-प्रतिदान भी होते रहते थे : वास्तव में दोनों संस्कृतिकों के परस्पर निकट आगमन के कार्य में प्रगति सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में हुई। यह एक संश्लेष की ओर संकेत करती है। परन्तु किसी-न-किसी कारण से प्रगति की क्रिया अपूर्ण रही।

भारतवर्ष में ऐसी स्थिति इससे पूर्व कभी नहीं उत्पन्न हुई थी।

मुसलमानों से पूर्व निगृ्ह जातियाँ तथा अन्य आक्रमणकारियों के समूह-के-समूह, मध्य एशिया के पार तथा अन्य पश्चिमीय प्रदेशों से, समुद्र की उत्ताल तरंगों के समान, भारत पर चढ़कर आए और हठात् यहाँ अपने पैर जमाने में सफल हो गए। परन्तु वे सब अविभाज्यतया हिन्दू-समाज में विलीन हो गए। उत्तर भारत में जितनी विभिन्न जातियाँ तथा संस्कृतियाँ परस्पर सम्मिश्रित हुई है कदाचित् उतनी पृथ्वी के किसी अन्य खण्ड में नहीं। ईरानी, यूनानी, पार्थिअन सिथिअन, कुशान और हूण अपरिमेय शृंखला-क्रमों में भारतवर्ष में आए। उन्होंने क्षणिक क्षोभ उत्पन्न किया, किन्तु अन्त में एकैकशः विश्वग्राही भारतीय समाज के अविभाज्य अंग हो गए। यहाँ तक कि वह यूनानी जाति भी, जिसकी सभ्यता भारतीय सभ्यता से भिन्न एवं कतिपय दृष्टियों से वरतर थी, अवारणीय प्रवाह की गति को प्रतिरुद्ध नहीं कर सकी। मानवतावाद, सौन्दर्य एवं कला के यूनानी आदर्श दार्शनिक हिन्दू धर्म को प्रभावित नहीं कर सके। हिन्दू जनता यूनानियों को भी उसी अभ्यसूया की दृष्टि से देखती रही जिससे अन्य विदेशियों को देखती थी। 'यवन' शब्द, जो प्रारम्भ में यूनानी-वाचक था, कालक्रम से निन्दार्थ में 'जांगलिक'-वाचक हो गया। बुद्धधर्म ने, जो इस काल में उत्तर भारत में प्रबल था, यूनानी प्रभाव का ग्रहण केवल इतने अंश में किया कि बौद्ध लोग अब बुद्ध की मूर्तियाँ बनाने लगे। यूनानी शैली में निर्मित बुद्धमूर्ति शिल्पकला की गान्धार शाखा का उपलक्षण हो गई। किन्तु केवल इस बात, तथा कतिपय अन्य जातित्व-सूचक चिह्नों, के अतिरिक्त यूनानी जाति के साथ भारतीय सम्पर्क की सूचक अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं रहा। जातित्व-सूचक इस विशेषता को देखना हो तो पंजाब तथा उससे परे पश्चिमीय भारत में उस हृष्टपुष्ट कृषक को देखना चाहिए जो देखने में मल्ल प्रतीत होता है, तथा जिसके सुघटित अंग यूनानी मूर्तियों के रूप का अनुहरण करते हैं।

मुसलमान अपने साथ भारतवर्ष में नवीन-प्राप्त धार्मिक विश्वास का, तथा दृष्टिकोण का, वह उत्साह लाए जो अनेक तात्त्विक रूपों में हिन्दुओं के उत्साह सर्वथा भिन्न था। उस समय हिन्दुओं में अनेकेश्वरवाद प्रचलित था, देवताओं की प्रतिमाएँ निर्मित तथा चित्रित की जाती थीं और वैराग्य पर बल दिया जाता था; परन्तु मुसलमान एकेश्वरवादी, मूर्ति-भंजक, सामाजिक जीवन के समर्थक तथा व्यवहार-प्रधान थे। हिन्दू जनता धर्म के प्रसंगों में सहिष्णु थी, किन्तु सामाजिक संघटन में उसके विचार कठोर एवं संकीर्ण थे। मुसलमानों में सामाजिक संघटन के विषय में उदारता थी, किन्तु धार्मिक विश्वास के क्षेत्र में उनमें स्वमत का प्रबल आग्रह और उन्माद था। भिन्न प्रकृतियों तथा भिन्न विचारों की ऐसी दो जातियों के सम्मिलन का काल इतिहास का एक परम

रोमांचक तथा महत्त्वपूर्ण काल है। उस काल में दोनों सम्भावनाएँ हो सकती हैं सर्जनशील संश्लेष और अस्वीकरणशील विरोध।

भारतवर्ष के साथ मुसलमानों का सम्पर्क सर्व-प्रथम समुद्र-यात्रा करने वाले उन अरबी लोगों के द्वारा हुआ जिन्होंने ईसवीय सप्तम शतक के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत में वाणिज्यिक बस्तियाँ बना ली थीं। इस सम्पर्क के कारण कारोमण्डल तट, जहाँ अनेक वाणिजिक मार्गों के संगम थे 'मआबार' कहलाने लगा। 'मआबार' अरबी भाषा का शब्द है, और मार्ग वाचक है। उस समय दिग्विजय की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर अरब निवासियों ने दूर-दूर तक पहुँचकर संग्राम आरम्भ कर दिए। ६७० ई० में ईरान की विजय से लेकर ७१० ई० में स्पेन की विजय तक की केवल चालीस वर्ष की अवधि में उस समय के विदित जगत् का आधा भाग अरबों के प्रभुत्व में आ चुका था। मुसलमानी धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहिब के निधन के पश्चात् केवल अस्सी वर्ष में मुसलमानों का इतना प्राधान्य हो गया था। स्पेन की विजय के वर्ष ही विजयाभिलाषी एक दल सिन्ध देश पहुँचा, और एक सुदीर्घ समर के अनन्तर उसने राजा दाहिर से सिन्ध छीन लिया। भारतीय नरेश, दाहिर भी उतना ही साहसी-वीर था जितना आक्रमण-कारी शत्रु, और उसने रणांगण में वीरगति प्राप्त की। उसके पश्चात् मुसलमान आक्रमणकारियों ने मुलतान को जीता और दक्षिण-पश्चिमीय पंजाब में भी पैर जमाया। किन्तु मुलतान के समीप के प्रदेशों के हिन्दू राजाओं के प्रतिरोध के कारण वे आगे न बढ़ सके। मुसलमान सिन्ध में तीन शतक शासन करते रहे। खलीफ़ा की साम्राजिक प्रभुता के क्षीयमाण होने पर सिन्ध में मुसलमानी शासन में दुर्बलता के लक्षण प्रकट होने लगे। अन्त में यह विभिन्न वंशों में विभक्त हो गया, और उनकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता ने इसका अन्त कर दिया। सिन्ध में मुसलिम शासन के स्थूल भौतिक अवशेषों को भूकम्प प्रभृति प्राकृतिक विपत्तियों ने धरातल से दूर कर दिया, और अरब शासन द्वारा भावी पीढ़ियों के लिए छोड़ी हुई किसी वस्तु—भवन, मसजिद अथवा मक़बरे—का चिह्न अब वहाँ नहीं है।

भारतवर्ष के इतिहास में अरबों की विजय राजनयिक दृष्टि से एक निरनु-बन्ध घटना थी ; परन्तु इसके सांस्कृतिक परिणाम अतीव महत्त्वपूर्ण एवं स्थायी हुए। 'अरब लोगों ने आरम्भ से ही भारतीय साहित्य तथा विज्ञानों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था'[1]। उन्होंने भारतीयों से जो कुछ सीखा उसका बड़ा भाग अन्त में भूमध्यसागरीय तथा यूरोपीय उन देशों में से होकर, जो

१. ताराचन्द : Influence of Islam on Indian Culture, p. 66

अरबों के शासन में थे, यूरोप पहुँच गया। यूरोपीय सभ्यता के कई तत्त्व, जिनकी उत्पत्ति अरबों के प्रभाव से दिखलाई जाती है, वास्तव में भारतीय हैं। उदाहरणार्थ, अरबी अंक, जो यूरोप में सुप्रसिद्ध हैं, परन्तु जिनको स्वयं अरबी लोग भारतीय (Al ruqum-al-Hindiyyah) कहते हैं, तथा शून्य (Zero) एवं दशमलव के स्थान की पद्धति, ये सब, जो आधुनिक अंकगणित का आधार बने, भारत की उपज हैं। अरबों ने इनको भारतीयों से सीखकर यूरोप निवासियों को सिखाया था। 'हिन्दसा' शब्द, जिसका अर्थ अंक है, भारतीय सम्पर्क का सूचक है। अमीर खुसरो के अनुसार यह 'हिन्द' और 'असा' इन दो शब्दों के योग से सिद्ध हुआ है, तथा 'असा' एक विख्यात भारतीय गणितशास्त्री का नाम था[1]। अरबों की ज्योतिष विद्या तथा आयुर्वेद दोनों पर इन्हीं दोनों भारतीय विद्याओं का प्रभाव था। संस्कृत एवं यूनानी जैसी भाषाओं के विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों के अरबी भाषान्तर के लिए बग़दाद में एक अनुवाद कार्यालय स्थापित किया गया था[2]। इसका नाम था बैत्-उल-हिक्मत्। एक भारतीय ज्योतिषी प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थ 'ब्रह्म सिद्धान्त' को बग़दाद ले गया, और एक अरबी गणितज्ञ, इब्राहीम फ़जरी, की सहायता से यह अरबी में अनूदित हुआ। उसी रीति से भारतीय आयुर्वेद के, सुश्रुत तथा चरक सदृश, प्रसिद्ध ग्रन्थों के अनुवाद किए गए। पंचतन्त्र का अनुवाद जिसका अरबी नाम 'कलीला व दिम्ना' है, लोकप्रिय हुआ, और यह पशु-पक्षी-जगत् की भारतीय लोक-कथाओं को दूर के देशों तक पहुँचाने का साधन बना। अरबों ने भारतीयों से शतरंज तथा चौपड़-जैसे खेल सीखे। शनैः-शनैः ये खेल भूमण्डल के अन्य भागों में भी पहुँच गए।

हिन्दुओं का पदार्थ विज्ञान भी उपेक्षित नहीं रहा। खलीफ़ा की राज-सभा में भारतीय विद्वानों, गणितज्ञों तथा वैद्यों का अभिनन्दन किया जाता था। जब 'बरमकाइड' अर्थात् बौद्ध धर्म का त्याग करके इस्लाम का ग्रहण करने वाले लोगों को अब्बासी खलीफ़ा के अधीन मन्त्रि-पद मिलने लगा तब विद्या एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भारत और अरब का सम्पर्क गहरा होने लगा। वे लोग भारत से विद्वानों को बग़दाद बुलाते, उन्हें राज-सभा में जीविका-कार्य दिलाते और संस्कृत ग्रन्थों के अरबी अनुवादों को प्रोत्साहित करते थे। जब खलीफ़ा हारून्-अर-रशीद को बग़दाद के हकीम रोग-मुक्त न कर सके तब उसकी चिकित्सा के लिए भारतवर्ष से मानक-नामक एक वैद्य बुलाया गया। उक्त खलीफ़ा के

---

१. मुहम्मद वहीद मिर्ज़ा द्वारा सम्पादित The nuh Sipihr, p. XXX. इसके विपरीत, आधुनिक विद्वान् इस शब्द को प्रायः प्राचीनतर एक अन्य शब्द से व्युत्पन्न करते हैं। वह शब्द है अन्दाज़ाह। यह फ़ारसी का शब्द है, और इसका अर्थ है 'माप'।

२. सय्यद महमूद : Hindu-Muslim Cultural Accord, p. 22.

चचेरे भाई के पक्षाघात की चिकित्सा के लिए भी एक अन्य भारतीय वैद्य बुलाया गया था। यह भी उल्लेख है कि मुहम्मद साहिब की विधवा पत्नी, आयशा, की सेवा में एक भारतीय वैद्य रहता था। बग़दाद का चिकित्सालय एक हिन्दू वैद्य, धन, के अधीन था।

अब एक अन्य दिशा से देखिए। अरब के विद्वान् भारत निवासी बनने के लिए यहाँ आया करते थे। सिन्ध और मुलतान में ऐसे विद्यापीठ स्थापित हो गए थे जहाँ विशेष रूप से मुसलिम धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया जाता था। अबु माशर नामक एक प्रसिद्ध अरबी गणित ज्योतिषी ने काशी में दस वर्ष रह कर हिन्दू पण्डितों से ज्योतिष के सिद्धान्तों का अध्ययन किया था। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान्, इस्माईल, फलित ज्योतिष पढ़ने आया, और अहमद रफ़ी दर्लानी ने यहाँ आकर फलित ज्योतिष तथा गणित पढ़ा। जब सिन्धी भाषा लिखने के लिए अरबी लिपि प्रयुक्त होने लगी तब सांस्कृतिक सहयोग स्पष्टतर रूप से साकार हो उठा।

अरब लोगों के पश्चात् तुर्कों (तुर्किस्तानियों) ने भारत वर्ष पर आक्रमण आरम्भ किए, किन्तु उन्होंने ईसवीय तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में एक केन्द्रीय मुसलमानी राज्य की स्थापना करके लूट-मार के आक्रमणों को समाप्त कर दिया। तुर्कों में अरबों जैसी सभ्यता की प्रतिभा का अभाव था। उनकी संस्कृति स्वरूपतः संकीर्ण तथा लघुदेशीय थी। उससे उनमें प्रजाजनों के साथ किए जाने वाले व्यवहार के सम्बन्ध मे एक विशेष प्रकार की मनोभाव-ग्रन्थि उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने भारतीय विद्याओं एवं जीवन-पद्धति का आदर किया तो, किन्तु वह उतना स्वाभाविक नहीं था जितना अरबों द्वारा किया हुआ। वे भारतीय समाज के सम्पर्क में नहीं आए, और उनकी चित्तवृत्ति 'मैं भी कुछ हूँ' इस विचार पर केन्द्रित रही। अरबों के शासन काल में जिस प्रकार का सम्मिलन स्वतः आरम्भ हो गया था अब वह देखने में नहीं आता था। भारतीय-मुसलमान इतिहास में वह दीर्घकाल के अनन्तर प्रकट हुआ।

ज्योंही बग़दाद के ख़लीफ़ा का नियन्त्रण शिथिल हुआ त्यों ही अफ़ग़ान तुर्क इससे निकल गए, तथा उन्होंने ग़ज़नी में एक स्वायत्त शासन की स्थापना कर ली। उन्होंने उस ब्राह्मण वंश को पराभूत कर दिया, जो कई पीढ़ियों से अफ़ग़ानिस्तान के कुछ भाग, तथा उत्तर-पश्चिम पंजाब, के ऊपर शासन करता आ रहा था। अब अफ़ग़ानिस्तान से भारत को आने वाले पर्वतीय मार्ग उनके लिए निष्कण्टक थे, और भारतीय मैदानों की ओर उनकी सेनाओं के अभियान के साथ ऐतिहासिक आक्रमण-चक्र ने पुनः गति ग्रहण कर ली। ग़ज़नी के सुल्तान महमूद ने ९९८ ई० में भारत पर प्रथम आक्रमण करके सोलह आक्रमण और किए। उसके डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् मुहम्मद ग़ौरी ने आक्रमण किया और यहाँ

पर अपना आधिपत्य स्थापित करना आरम्भ कर दिया। १२०६ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने पर उसके एक दास क़ुत्ब्-उद्-दीन ऐबक ने दिल्ली में मुसलमानी राज्य का शिलान्यास किया। दिल्ली का यह शासन १५२६ ई० तक रहा। दास वंश के अनन्तर खिलजी, तुग़लक, सय्यद और लोधी ये चार वंश शासक हुए। १३९८ ई० में तैमूर के आक्रमण ने इस शासन को कठोर आघात पहुँचाया और १५२६ ई० में बाबर ने पानीपत के रणक्षेत्र में लोधी वंश के अन्तिम शासक इब्राहीम को परास्त करके दिल्ली में मुग़लों के शासन की नींव रख दी।

तुर्क वास्तव में निगृह थे और वर्गों में विभक्त रहकर जीवन-यापन करना उनकी प्रकृति के अनुकूल था। वे लोग प्रारम्भ में लूटमार करने के लिए भारत पर आक्रमण किया करते थे। लूटमार के उद्देश्य के साथ भारतनिवासी 'काफ़िरों' को दण्ड देने का वह उत्साह भी उनका प्रेरक था जो धर्मोन्माद से अभिभूत हो कर युद्ध करने वालों में होता है। उनके आक्रमण अत्यन्त कष्टदायक एवं हानिकारक थे। उन्होंने केवल समूह-हत्याएँ ही नहीं कीं, हिन्दू-देवालय भी अपवित्र किए, और वे स्त्रियों तथा बालकों को पकड़कर ले गए। इस अशान्ति एवं अनिश्चयात्मकता के अनन्तर जब वे एक स्थान पर स्थिर होकर शासक बने तब शासन की ओर से मुसलमानेतर जातियों के साथ प्रायः कठोर तथा अन्याय-पूर्ण व्यवहार किया जाने लगा। आत्म-रक्षा के लिए हिन्दुओं ने अपने संचित अन्तःकरणिक बल की ओर देखा। उन्होंने अपने प्रतिरक्षा-विधायक सामाजिक साधन का आश्रय लिया, तथा मुसलमानों से दूर रहने में अपने आपको सुरक्षित समझा। किन्तु इन दो प्रधान मनोवृत्तियों के साथ-साथ सन्धि की भावना एवं उदारता दिखलाने का विचार भी उनके मन में विद्यमान था। अतः इस सम्बन्ध में कोई सामान्य निष्कर्ष अयुक्त होगा। यद्यपि मुसलमानों का शासन 'शरीअत' (मुसलमानी धर्मशास्त्र) के अनुसार होता था, तथापि इसमें सर्वोच्च प्रमाण शासक स्वयं होता था। अतः स्वरूपतः यह अनि-यन्त्रित शासन था। शासक की नीति अनिवार्यतया उसके स्वभाव एवं राजनयिक स्थिति से प्रभावित रहती थी। दिल्ली के सुल्तानों में से जो अपेक्षाकृत अधिक मनोबलशाली थे वे 'उलमाओं' (मुसलमान धर्मशास्त्रियों) की उपेक्षा कर देते थे तथा उनको अपने नियन्त्रण में रखते थे। उन शासकों में जो धर्मोन्मादी हुए उन्हें भी उस समय में विद्यमान वास्तविकताओं को स्वीकार करना पड़ा। दास वंश का द्वितीय शासक, 'इल्तुतमश' जो इस शासन का वास्तविक प्रतिष्ठापक था, उदाहरणीभूत धर्म-विश्वास का मुसलमान था। अपने निजी, अथवा अन्य लोगों के साथ, व्यवहार में वह 'शरीअत' के विधान से तनिक भी दूर होना नहीं चाहता था। उसके सम्मुख यह प्रश्न था कि मुसलमानों के राज्य में

हिन्दुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाए ? मुसलमानी धर्म-शास्त्रीय विधान की चार शाखाएँ हैं। उनमें से तीन के अनुसार मूर्त्ति-पूजकों को मुसलिम राज्य में से उन्मूलित कर देना चाहिए। 'उलमाओं' ने इल्तुतमश के सम्मुख इस परम्परीण मत पर बल दिया, तथा उससे इसका अनुसरण करने का आग्रह किया। सुल्तान ने राज-सभा करने का आदेश दिया, तथा अपने अमात्य निज़ाम-उल्मुल्क जुनैदी के विचार सुनने की इच्छा प्रकट की। सामान्य चिन्तनशक्ति एवं दूरदर्शिता के अनुसार जो उचित था उसने वही सुल्तान से निवेदन कर दिया। इसके अतिरिक्त, यह कह कर कि हिन्दुओं की संख्या बड़ी है, और मुसलमानी विजय अभी शैशव काल में होने से दुर्बल है, उसने सुल्तान को परामर्श दिया कि ऐसा कोई कार्य न किया जाए जिससे कोई संकट उपस्थित हो जाए। व्यवहार की दृष्टि से यह युक्ति उत्तम थी, अतः सुल्तान उससे प्रभावित हो गया।

अपनी रीति से 'उलमा' भी प्रभावशाली थे, और सामान्यतः सुल्तान उनका सम्मान अवश्य करते थे। अपने धार्मिक परामर्शदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए कतिपय सुल्तानों ने जानकर मुसलिमेतर प्रजा जनों के प्रति विरोधी नीति ग्रहण की। परन्तु अन्त में वे हिन्दुओं के प्रति व्यावहारिक वैषम्य को दूर करने में सफल हो गए—उन्होंने उनके साथ उनकी स्थिति के अनुरूप शिष्ट व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया, तथा उनकी गतिविधि की स्वतन्त्रता के ऊपर से प्रतिबन्ध हटा दिये। सुल्तान ऐश्वर्य-भोग-परायण, तथा विषयासक्त थे। वे अनेक स्त्रियाँ रखते थे तथा मदिरा के दौरों एवं रंगरेलियों में मस्त रहते थे। उनका अनुकरण उनके सामन्तों ने किया। उनके भी अनेक स्त्रियाँ, ताम्बूल-वाहक, सेवकवर्ग एवं दास-कन्याएँ होती थी (अमीर ख़ुसरौ के नाना के यहाँ प्रीति-भोजों में अतिथियों के सत्कार के लिए पचास से साठ तक केवल ताम्बूल वाहक थे)। तो भी उलमा सदा सुल्तानों को इस्लाम के अधिरक्षक के रूप में देखने, तथा प्रसिद्ध करने, को आतुर रहते थे। सुल्तानों की राज-सभा के वृत्तान्त लेखकों में से कतिपय में, जिनकी प्रकृति उलमाओं की प्रकृति की सजातीय थी, इस्लाम के प्रचार के लिए उनके स्वामियों द्वारा किये गये प्रयत्नों के वर्णनों में अतिशयोक्ति का प्रयोग करने की, तथा भारतीय धर्म को नीचा दिखाने की, प्रवृत्ति पाई जाती है। इतिहासकार अफ़ीफ़ अपने ग्रन्थ, तारीखे फ़ीरूज़शाही, में उस वस्तु के प्रभाव को दूर करने का बड़ा प्रयास करता है जिसे वह 'काफ़िरों का लाञ्छन' कहता है। इससे उसका भाव यह है कि जब फ़ीरूज़शाह ने काँगड़ा जीता था तब उसने ज्वालामुखी के मन्दिर की मूर्त्ति नहीं तोड़ी थी।

शासकों के मन में उत्पन्न हुए उपायौचित्य के विचार ने, अथवा किसी-किसी

शासक के उदाहरण में स्वमताग्रह के अभाव ने, और प्रातिवेशिक जीवन की विवशता ने हिन्दू-मुसलमानों के मध्य के व्यवधानों को विघटित करना आरम्भ कर दिया। समय की गति के साथ वे एक दूसरे के समीप आने लगे तथा अधिकाधिक सामाजिक सहयोग होने लगा। शासक जाति बहुलतया नगरों में निवास करती थी, किन्तु आर्थिक दृष्टि से ग्राम प्रधानतया हिन्दुओं के ही थे। केवल स्थानीय मुल्ला वर्ग के द्वारा ही मुसलमान शासनाधिकारी ग्रामीण हिन्दुओं तक पहुँच पाते थे। वाणिज्य अधिकांश में हिन्दुओं के ही हाथ में था। जब तक १५०४ ई० में सिकन्दर लोधी ने दिल्ली से हटकर आगरे को राजधानी नहीं बनाया तब तक सुल्तानों की राजधानी दिल्ली ही रही, और अन्य नगरों के समान दिल्ली में भी व्यापार करने वाले तथा ब्याज पर रुपया देने वाले हिन्दू ही सम्पन्न अवस्था में थे। कुछ प्रभावशाली मुसलमान सामन्त एवं राजसभा के सदस्य भी हिन्दुओं के ऋणी थे। इब्नबतूता, जो १३३३ ई० में भारत में आया, अपने यात्रा-ग्रंथ में लिखता है कि दिल्ली में बदायूँ दरवाजे के अन्दर कपड़े का बाजार था, और नगर के उस भाग में हिन्दू व्यापारी रहते थे जो मुलतानी कहलाते थे। मुहम्मद तुगलक़ ने, १३२६-२७ ई० में, अस्थायी रूप में, दौलताबाद को राजधानी बना लिया था। उस समय दौलताबाद भी दिल्ली के समान एक महानगर था। मूर यात्री ने देखा कि वहाँ व्यापारियों तथा बड़े-बड़े जौहरियों में हिन्दू अधिक हैं।

SIKHBOOKCLUB.COM

जब सुल्तानों की राजसभा में हिन्दुओं को पद मिलने लगे तब हिन्दू-मुसलमानों के सम्पर्क के मार्ग में और वृद्धि हो गई। गजनी के महमूद की सेना में एक हिन्दू दल भी था, और उसमें सेवन्दराय तथा तिलक जैसे उच्च अधिकारी थे[1]। सुल्तानों के शासन-काल में साधारणतया हिन्दुओं को सेना में कोई पद नहीं दिया जाता था; किन्तु असैनिक सेवाओं में कतिपय श्रेणियों के पद प्राप्त करने के लिए उनके ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ग्रामों में मुसलमान निवासियों की संख्या स्वल्प होती थी, अतः वहाँ राजस्व-संग्रहण-विभाग के पदों पर बहुशः हिन्दू ही नियुक्त किए जाते थे। हिन्दू लोग ग्रामों में 'मुक़द्दम', 'खुत्' तथा 'चौधरी' तो होते ही थे, वे दिल्ली में राजसभा में तथा साम्राज्य के अन्य नगरों में अन्य अधिकार-पदों पर भी आरूढ़ होते थे। धर्मान्तर का स्वीकार तथा विवाह-सम्बन्ध भी दोनों जातियों को समीप लाने में सहायक हुए। दोनों जातियों के मध्य वृद्धि पाते हुए सम्पर्क ने कुछ सीमाओं के अन्दर-अन्दर दोनों समाजों के स्वरूप में कुछ परिवर्तन कर दिया और सन्धि-भावना को उद्बुद्ध कर दिया, जिसने जीवन के सांस्कृतिक, साहित्यिक, कला-परक तथा धार्मिक

---

१. ताराचन्द : Influence of Islam on Indian Culture, p. 138.

प्रभृति अनेक पक्षों को प्रभावित किया।

एक दूसरे को बौद्धिक रूप से समझने के मार्ग का द्वार प्रसिद्ध अरबी पर्यटक अल्बरूनी ने उद्घाटित किया। अल्बरूनी ग़ज़नी के महमूद के अनुगामियों की श्रेणी में भारतवर्ष में आया था। यहाँ उसने हिन्दुओं के दर्शनों एवं पदार्थ-विज्ञानों का अध्ययन किया, और वह इनका प्रशंसक बन गया। उसने यूनानी तथा अरबी भाषा के ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद किया।[1] उसने अपनी पुस्तक, 'किताब अल्हिन्द', में भारतवासियों के धर्म, रीति-प्रथाओं तथा संस्थाओं का विस्तृत, तथा दर्शक की सूक्ष्म दृष्टि का सूचक, पर्यवेक्षण दिया है। सुल्तानों की राजधानी दिल्ली में एकत्र समागत विद्वान्, विशेषत: १२५८ ई० में मुग़लों द्वारा बग़दाद पर अधिकार कर लेने के पश्चात्, भारतीय ज्ञान तथा दर्शन से आकृष्ट हुए। परन्तु जिसकी प्रतिभा वास्तव में समाहारिणी थी वह था अमीर ख़ुसरौ (१२५३-१३२५ ई०)। उसका जन्म भारतवर्ष में ही हुआ था, और वह राजसभा का सदस्य, कवि तथा विद्वान् था। वह भारत में प्रारब्ध सांस्कृतिक सम्मिश्रण का उत्तम निदर्शन था। इस सम्मिश्रण की प्रक्रिया ने उसकी कविता में तथा भाषा और संगीत-विषयक उसकी उद्-भावित नवीनताओं में स्पष्ट अभिव्यक्ति प्राप्त की है। उसका भारत-प्रेम, उसकी ऐतिहासिक 'मस्नवी', 'नूह सिपिह्र' (नौ आकाश), के एक खण्ड में रमणीयतया तथा भावुकतया मुखर हो उठा है। यह कविता उसके राजवंशीय स्वामी एवं आश्रयदाता मुबारक शाह की प्रशस्ति है, परन्तु इसमें उसने भारतवर्ष और भारतवासियों की भी प्रशस्ति दे दी है। वह भारत को पृथ्वी पर सुरलोक समझता था। वह भारत को यहाँ के पुष्प, फल, जलवायु तथा विद्या का निकेत होने के कारण स्तुत्य समझता था। वह भारतवासियों की प्रशंसा उनकी विविध भाषाओं में निपुणता आंकिक पद्धति के आविष्कार तथा पञ्चतन्त्र की रचना के कारण किया करता था ;—पञ्चतन्त्र, जो लौकिक व्यवहार में दक्षता प्राप्त करने के लिए एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है और जिसका अनुवाद फ़ारसी, तुर्की एवं अरबी भाषा में हो चुका है। तुग़लक़वंशीय शासकों के काल में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, दलाइले फ़ीरूज़शाही, की फ़ारसी में रचना हुई। यह पद्य-बद्ध ग्रन्थ है। इसके उपजीव्य ग्रन्थ दर्शन, शकुन, निमित्त-सदृश विषयों पर लिखे उन संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद थे जो फ़ीरूज़शाह (१३५१-८८ ई०) द्वारा नगर कोट का दुर्ग जीत

---

१ अपने ग्रन्थ Alberunis' India, p. xix, में Edward Sachau कहता है 'अनुवादक के रूप में उसका (अल्बरूनीका) कार्य दो प्रकार का था। वह संस्कृत से अरबी में, तथा अरबी से संस्कृत में अनुवाद करता था।'

लेने पर मुसलमानों ने ज्वालामुखी के मन्दिर में से प्राप्त किये थे[1]।

इतिहासकार फ़िरिश्ता के अनुसार सिकन्दर लोधी (१४८८-१५१८ ई०) 'मुसलमानी धर्म का दृढ़ अनुयायी था, और उसने समस्त हिन्दू देवालयों को भूमिसात् करने का निश्चय कर रखा था।'[2]

वह मुसलिमेतर प्रजा के ऊपर सदा गृध्र दृष्टि रखता था, तथा उसके साथ परम कठोर व्यवहार करता था। धर्मोन्माद एवं धर्म-निमित्त-परिपीडन के इस काल तक में भी दोनों धर्मों के अनुयायियों में सांस्कृतिक संसर्ग जारी रहा। संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों का अनुशीलन एवं फ़ारसी में उनका अनुवाद होता रहा। इस काल के ग्रन्थों में एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तिब्बे सिकन्दरी' है। यह प्राचीन संस्कृत सन्दर्भों की सहायता लेकर लिखा गया आयुर्वेदीय ग्रन्थ है। इसका रचयिता मियाँ भुव था। भारतीय-संगीत-शास्त्र-विषयक फ़ारसी का प्रथम ग्रन्थ भी इसी काल में लिखा गया था। इसका नाम है 'लहजाते सिकन्दर शाही'। सिकन्दर लोधी ने हिन्दुओं को फ़ारसी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। वह फ़ारसी भाषा में विशेष अभिरुचि प्रकट करने वाले हिन्दुओं को जागीरें प्रदान करता था। उसने मथुरा, नरवर एवं अन्य स्थानों में मदरसे खोले, जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।[3] सुल्तानों के काल में प्रशासन द्वारा चलाए जाने वाले शिक्षणालयों की अच्छी बड़ी संख्या थी। लिखित साक्ष्य के अनुसार मुहम्मद तुग़लक़ के समय में दिल्ली में एक सहस्र मक्तब और मदरसे थे। मक्तब प्रायः मस्जिदों के साथ सम्बद्ध प्राथमिक शालाएँ थीं। उनमें अरबी, फ़ारसी तथा साधारण अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी। मदरसे महाविद्यालय थे। उनमें माक़ूलात् (बौद्धिक विज्ञान) और मन्क़ूलात् (परम्परा, रूढ़ि) दोनों का अध्यापन होता था।

दोनों जातियों के मध्य सम्पर्क की आवश्यकता से एक मिश्रित भाषा का जन्म हो गया, और उस भाषा ने साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्रों में संयुक्त प्रयत्नों की पारस्परिक सम-व्यवसायिता तथा सम्भावना के नवीन मार्ग बना दिए। सुल्तानों के समय राज-सभा की भाषा फ़ारसी, मुसलमान धर्मशास्त्रियों की भाषा अरबी तथा शासकों की भाषित भाषा तुर्की थी। जब पंजाब ग़ज़नी-साम्राज्य का अंग हो गया तब यहाँ के प्रशासनिक कार्यालयों की भाषा

---

1. R. C. Majumdar, et al. : An Advanced History of India, p. 321.
2. Briggs : History of the Rise of Mohamedan Power in India, Vol I, p. 586.
३. युसुफ़ हुसैन : Glimpses of Medieval Indian Culture, p. 76.

फ़ारसी कर दी गई। उस काल में पंजाबी भाषा की वह विधा प्रचलित थी जो पंजाब की राजधानी लाहौर एवं उसके चतुर्दिक् बोली जाती थी और जो लाहौरी के नाम से व्यवहृत होती है। लाहौरी और फ़ारसी के संयोग से प्रतिदिन के व्यवहार की एक ऐसी भाषा विकसित होने लगी जिसमें उक्त दोनों भाषाओं के शब्द सम्मिलित थे। अमीर ख़ुसरो के अनुसार मस्ऊद बिन् सग्रद सलमान् ने, जिसका जन्म लाहौर में १०४८ ई० के समीप हुआ था, अरबी, फ़ारसी तथा हिन्दवी तीनों में कविता लिखी, अर्थात् उसकी भाषा फ़ारसी एवं पंजाबी के संयोग से विकसित होती हुई मिश्रित भाषा थी। उसने पंजाबी में प्रचलित 'बारामाह' (बारहमासा) के अनुकरण पर फ़ारसी में 'द्वाज़्दहमाह' लिखा, जो फ़ारसी में एक नवीन वस्तु थी। जब दिल्ली में गौरी-साम्राज्य की प्रतिष्ठा हो गई तब फ़ारसी-वेत्ता अनेक मुसलमान एवं हिन्दू लाहौर से भारत की राजधानी में पहुँचने लगे। दिल्ली की भाषा, खड़ी बोली को फ़ारसी, अरबी, तुर्की एवं पंजाबी ने प्रभावित किया, और इस प्रकार लगे 'जावन' (Leaven) से बहुक्षेत्रीय भाषा उद्भूत हुई। शासकीय छत्रच्छाया में पलकर शनैः-शनैः यह कोमल एवं स्निग्ध भाषा हो गई, जो आगे चलकर उर्दू के नाम से अभिहित होने लगी। यह हिन्दू और मुसलमान प्रतिभाओं के सहयोग से उत्पन्न अत्यन्त सुश्लिष्ट एवं परिष्कृत भाषा है। जब मुस्लिम शासन के आगमन से संस्कृत का प्रयोग न्यून हो गया तब प्रादेशिक भारतीय भाषाएँ प्रमुख हो गईं। अमीर ख़ुसरो ने, जिसने, उसके अपने कथनानुसार, हिन्दवी में कविता लिखी[1], सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, बंगाली, अवधी इत्यादि कई भाषाओं का नाम्ना उल्लेख किया है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने ही इन भाषाओं के विकास में योगदान किया। जब तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली की कमर तोड़ दी, और दिल्ली में निवास करने वाले विद्वानों ने दिल्ली से देश के अन्य भागों में जाना प्रारम्भ कर दिया, तथा जब दिल्ली की सुल्तानशाही का बल क्षीण हो जाने पर प्रादेशिक शासकों ने स्वतन्त्र-शासकों का सा परिधान ग्रहण कर लिया तब प्रादेशिक भाषाओं का विकास वेगवान् हो गया।

हिन्दू मुसलमानों के सहप्रयत्नों ने संगीत के क्षेत्र में जैसा प्रायः पूर्ण अन्योन्य विलयन निष्पादित करके दिखलाया, वैसा किसी अन्य में नहीं। भारतीय तथा फ़ारसी संगीत पद्धतियों के योग से दोनों पद्धतियों को स्वीकार्य

---

१. अमीर ख़ुसरो की रचना के नाम से प्रसिद्ध 'हिन्दवी' की कविता और प्रहेलिकाओं की भाषा उत्तरकालीन उस भाषा से मिलती-जुलती है जिससे हिन्दी तथा उर्दू विकसित हुई, और सम्भवतः ये उसकी मूल रचनाओं का आधुनिक भाषा में किया हुआ रूपान्तर हैं। देखिए मुहम्मद सादिक़ : A History of Urdu Litereture, p. 42.

नवीन रागों की सृष्टि की गई। इनमें से कतिपय का स्रष्टा अमीर खुसरो कहा जाता है। कहा जाता है कि प्राचीन परिपाटी में प्रसिद्ध 'ध्रुव पद' के स्थान पर उसने लोकप्रिय 'खयाल' को जन्म दिया। भारतीय संगीत अत्यन्त नियम-बद्ध था, और उसका उपयोग विशेषतः देवालयों एवं भक्ति के लिए अभिप्रेत था। अब उसमें ऐसा परिवर्तन हो गया कि उससे राज-सभा के मनो-विनोद का धर्म-निरपेक्ष प्रयोजन भी सिद्ध होने लगा। अमीर खुसरो ने ग़ज़ल का प्रचार किया, तथा क़व्वाली की सृष्टि की। उसने भारतीय वीणा एवं ईरानी तम्बूरे के योग से सितार का आविष्कार किया। मुसलमान संगीत शास्त्रियों ने भारतीय मौलिक स्वर-ग्राम को, तथा हिन्दुओं ने मुसलमानों द्वारा उत्प्रेक्षित विकृतियों एवं परिवर्तनों को, स्वीकार कर लिया। पारस्परिक विरोधनिवारण, तथा अन्य के पास से भी रुचित वस्तु के स्वीकार, की भावना वास्तु-कला के जगत् में भी लोचन-गोचर होती है। हिन्दुओं की अभिरुचि विशालता तथा अलंकृति की ओर थी; मुसलमानों को सादा और मेहराबदार रचना रुचिर लगती थी। दोनों जातियों की अभिरुचियों के योग से एक अभिनव वास्तु-कला का विकास हुआ। इस दिशा में दो बातें सहायक सिद्ध हुई : प्रथम हिन्दू शिल्पकार, तथा पाषाण का कार्य करने वाले हिन्दू राज, जिनको मुसलमान शासकों ने भवन-निर्माण के कार्यों मे नौकर रखा; द्वितीय, भारत में मिलने वाली भवन-निर्माण सामग्री, विशेषतः नाना जाति का पाषण।[१]

कतिपय साधारण प्रकार से भी हिन्दू और मुसलमान दोनों की जीवन-पद्धतियों ने एक दूसरी को प्रभावित किया। राजपूतों में स्त्रियों को पृथक् रखने की प्रथा थी। इसे मुसलमानों ने ग्रहण कर लिया, और बुर्क़े की प्रथा इस में सम्मिलित करके इसे अधिक कठोर एवं दुःसह बना दिया। उच्च श्रेणी के मुसलमान और हिन्दू पुरुषों ने तुर्की वेष स्वीकार कर लिया, जिसमें ढीली सलवार, ('शलवार'), तंग कुर्ता ('कबा'), सब वस्त्रों के ऊपर पहना जाने वाला ढीला चोग़ा ('जुब्बाहे') और पगड़ी होती थी। ग्रामों में मुसलमानों का रहन-सहन प्रायः उनके पड़ौसी हिन्दुओं-जैसा था। इसका आदर्शभूत उदाहरण एक मुसलमान सन्त, शेख हमीद-उद्-दीन, के जीवन से उपस्थित किया जाता है। 'वह एक छोटे से कच्चे कोठे में रहता था, केवल एक बीघा भूमि जोतकर अपना साधारण निर्वाह करता था······वह अपनी भूमि का आधा भाग एक फ़सल में जोतता-बोता था, और आधा, दूसरी में। उसका वेष आदर्शभूत भारतीय कृषक का था। वह एक चादर ओढ़ता था, और धोती पहनता था। उसने एक गौ पाल रखी थी, और स्वयं इसे दोहता था। उसकी पत्नी·······

---

१. देखिए आदिब हुसैन : Indian Culture, p, 34.

रोटी बनाती और चर्खा चलाती थी······उनका रहन-सहन वैसा ही था जैसा बहुत ग्रामीणों का जिनके मध्य वे रहते थे। शैख़ हमीद्-उद्-दीन पक्का शाकाहारी था······वे लोग हिन्दवी बोलते थे।[1]

मुसलमानों ने, हिन्दुओं के शिवरात्रि-उत्सव के समान, रात्रि-जागरण तथा आतिशबाज़ी करके, शबे-बरात का उत्सव मनाना आरम्भ कर दिया। उसी प्रकार, मुसलमानों में सन्तों तथा ध्वंसावशेषों की पूजा प्रचलित हो गई। इससे उनमें क़बरों पर कली कराने तथा रात्रि में उन पर दीपक जलाने की रीति चल पड़ी। मुहर्रम के महीने में, कर्बला के धर्मवीरों के मक़बरों के आदर्शों (Models) के रूप में, ताजियों के निकालने की प्रथा हिन्दुओं के जगन्नाथ अथवा विष्णु देव की समारोह-पूर्ण रथ-यात्रा का स्मरण कराती है।[2]

पारस्परिक सम्पर्क के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के अनुयायियों के जीवन में जो परिवर्तन हुए, वे चाहे जितने साधारण हों, वे दो वस्तुओं को संलक्षित करते हैं: एक, जैसे-कैसे मिलकर रहने के लिए किया गया परम महत्त्वपूर्ण तथा निश्चित उपाय; द्वितीय, वे समाज जिनकी सीमाओं को उन परिवर्तनों ने असन्दिग्धतया उन्मीलित किया। इस प्रक्रिया में एक ऐसा आध्यात्मिक तत्त्व हस्त-गत हो गया जो दोनों जातियों के साथ समान रूप से सम्बद्ध था। इस तत्त्व के मुख्य घटक थे—दिव्य सत्ता का भावुकता-पूर्ण व्यक्ति-गत प्रेम, विशुद्धता के बाह्य रूपों का तिरस्कार, मनुष्यों के मध्य संसर्गबाधक भित्तियों का ध्वंस, और ऐहिक कामनाओं का दमन। हिन्दुओं की, भक्ति में तथा मुसलमानों के सूफ़ी मत में उक्त तत्त्व के ये घटक विद्यमान थे और इन से भक्ति और सूफ़ी मत का व्यापक प्रचार हुआ। इससे आत्मा को बन्धनों से अभिनन्दनीय मुक्ति मिली, नियमों की कठोरता दूर हुई, नाना प्रकार के निषेधों की समाप्ति हुई और दोनों जातियों के पारस्परिक सम्पर्क तथा परिचय के अपूर्व पथों का प्रादुर्भाव हुआ। एक नूतन युग, एक नवीन समाज, की उत्पत्ति के लक्षण दृष्टि-पथ में आने लगे।

भक्ति तथा सूफ़ी मत में स्फुट एक-समान गुण थे, और दोनों की विशेषता थी उदार सर्वतः सार-संग्राहिणी ब्रह्म-विद्या। भक्ति तथा सूफ़ी मत दोनों अपने-अपने धर्म से सुसम्बद्ध थे, तथा दोनों की मूल रूप-रेखा का निर्धारण प्रत्येक के धर्म द्वारा किया गया था। परन्तु लोकप्रिय दोनों धाराओं ने परस्पर जो स्वल्पाधिक आदान-प्रदान किया था वह प्रच्छन्न नहीं था, तथा उनके संगम के

---

१. ख़लीक़ अहमद निज़ामी : Some Aspects of Religion and Politics in India During the Thirteenth Century, pp. 186-87.

२. युसुफ़ हुसैन : Glimpses of Medieral Indian Culture, p. 127.

स्थल स्पष्ट दिखाई देते थे। इस्लाम के आधार पर खड़े सूफ़ी मत में हिन्दू धर्म के प्रभाव के चिह्न स्पष्ट थे, तथा हिन्दू धर्म के भक्ति-काण्ड पर इस्लाम की मुद्रा अंकित थी 'दोनों धर्मों की यह प्रत्यासत्ति किस प्रकार अस्तित्व को प्राप्त हुई, और यह कहाँ तक अव्यवहित विनियम से उद्भूत कही जा सकती है?' इन प्रश्नों के उत्तर के लिए मुख्यतया अनुमान ही सहायक है: खलीफ़ाओं के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय लोग राजनयिक सम्बन्धों के कारण बग़दाद में, तथा वाणिज्यिक प्रयोजनों से ईरान में रहा करते थे। अनुमान किया जा सकता है कि सूफ़ियों ने हिन्दू धर्म की कुछ विशेषताएँ उनसे ग्रहण कर ली थीं। पुनः, मध्य एशिया के समीप के प्रदेशों में बौद्ध धर्म का प्राधान्य चिरकाल से था। उन प्रदेशों के साथ सूफ़ियों का सम्पर्क खलीफ़ाओं के शासन काल से भी पर्याप्त प्राचीनतर काल से था। उस सम्पर्क के बल से हिन्दुओं एवं बौद्धों के विश्वासों तथा व्यवहारों का जो ज्ञान मुसलमान प्राप्त कर सके होंगे, सम्भव है उसने अन्य मुसलमानों से पृथक् रहने वाले पवित्रतावादी मुसलमानों को प्रभावित किया हो; उन मुसलमानों को, जो सूफ़ी मत के प्रतिष्ठापक थे, तथा जिनके अन्तराल में साम्राजिक बग़दाद की राजसभा के वैभव के विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पद्यमान थी। कदाचित् सूफ़ियों ने मठवासी साधु का जीवन, सन्तों-जैसे एकान्तवास के प्रति आस्था, शरीर के ऊपर योगियों-जैसा अनुशासन, और विश्वदेवतावाद का त्याग, ये सब बातें उसी सम्पर्क से सीखी हों।

सम्भव है दक्षिण भारत में वैष्णव आलवारों तथा शैव नयनमरों के तामिल गीतों में जिस भक्ति की अभिव्यक्ति हुई उसने भी कतिपय मुसलमानी विचारों को अपना लिया हो। ईसवीय पंचम शतक के अवसान के समीप तोरमाण ने भारत पर आक्रमण किया। यह हूणों का अन्तिम आक्रमण था। इसके पश्चात् भारत को विदेशियों के आक्रमणों से विश्राम प्राप्त रहा, और प्रायः पाँच सौ वर्ष तक यहाँ शान्ति की सुखद शीतल छाया रही। कदाचित् किसी अन्य देश में निरन्तर इतनी कालावधि तक ऐसी शान्ति नहीं रही। परन्तु, कश्मीर के अपवाद के साथ, समस्त देश के लिए यह समय प्रवाहहीनता तथा ह्रास का समय रहा;—अविश्वसनीय अनुर्वरता एवं क्लीबता का एक इतना विशाल प्रसार! उत्तर भारत के विपरीत, दक्षिण भारत सजीव एवं प्रगतिशील रहा। उसने, विशेषतः धर्म के क्षेत्र में नवीकरण तथा पुनः सिद्धान्तीकरण के लिए एक गम्भीर प्रेरणा का अनुभव किया। इस उद्देश्य की सिद्धि दो मार्गों से हुई: (१) मुख्यतया शंकर द्वारा किए अद्वैतवाद के निरूपण से, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा दार्शनिक दृष्टि से परमोज्ज्वल है; (२) तामिल सन्तों के भक्ति-भावना के उद्रेक से पूर्ण गीतों से। किन्तु सम्भव है दक्षिण भारत में इस पुनर्निर्माण का प्रारम्भ मुसलमानों के एकेश्वरवाद के प्रभाव से हुआ

हो, और दक्षिण भारतीय हिन्दुओं ने एकेश्वरवाद का विचार वहाँ बसे हुए अरबी व्यापारियों तथा अपने उपनिवेश स्थापित करने वाले अरबी लोगों से लिया हो। यह भी हो सकता है कि ईसाई धर्म ने भी दक्षिण भारत के इस कार्य को कुछ प्रभावित किया हो। कारण, ईसवीय प्रथम शताब्दी में ईसाई धर्म प्रचारक थामस दक्षिण भारत में आ गया था और पूर्वीय सीरिया में ईसाई धर्म के उदय ने दक्षिण भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को शक्ति प्रदान की थी। किन्तु ये सुझाव उसी सुझाव के समान केवल अनुमान-प्रेरित हैं जिसमें यह कहा गया था कि सूफ़ी मत हिन्दू धर्म का अधमर्ण है; क्योंकि, एकदेववाद हिन्दुओं के लिए अज्ञात वस्तु नहीं थी। किन्तु विचारों के प्रसार की ऐसी क्रिया परोक्ष एवं प्रच्छन्न रूप में विविध प्रकार से होती है। सांस्कृतिक एवं बौद्धिक धाराओं तथा प्रतिधाराओं की सृष्टि और अभिव्यक्ति दुर्ज्ञेय रीति से होती है; विभिन्न स्थानों तथा समाजों में इस अभिव्यक्ति के नाना भेद परस्पर एक-समान नहीं होते हैं : कभी-कभी प्राचीन साँचे और विचार पुनः जीवित करके उनमें नूतन अर्थ एवं बल भर दिया जाता है, और कभी-कभी पुराने साँचों और विचारों से मिलते-जुलते दिखाई देने वाले नये साँचे और विचार पैदा कर लिए जाते हैं।

ईसवीय बारहवें शतक में उत्पन्न, तथा दक्षिण भारत के एक विचारक एवं सुधारक, रामानुज ने तामिल भूमि के रहस्यमय जीवन व्यतीत करने वाले सन्तों के भक्ति सम्प्रदाय को दार्शनिक आधार प्रदान किया। उसने यह घोषित करके कि प्रबल प्रेम के बल से मनुष्य पर-ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है शंकर के कठोर सूक्ष्म ज्ञानवाद का खण्डन किया। शंकर के तुल्य रामानुज का भी यह अभ्युपगम था कि ब्रह्म एक है। परन्तु रामानुज यह भी मानता था कि उस ब्रह्म की अभिव्यक्ति दृश्यमान जगत् के अनन्त नाना पदार्थों में होती है। शंकर का मत अद्वैत, और रामानुज का मत विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। धार्मिक विषयों की भाषा में कहा जाएगा कि रामानुज के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म एक गुण-सम्पन्न सत्ता है; वह सन्तान-वत्सल पिता के तुल्य है, जो पूजनीय तथा अर्चनीय है और जिससे सुख-प्रदान करने की प्रार्थना की जा सकती है।

उदारचेता मुसलमान सूफ़ियों के उपदेशों से नवीन चिन्तन के लिए आकुलीकृत उत्तर भारत रामानुज की शिक्षाओं के प्रचार के लिए अनुकूल क्षेत्र था। रामानुज-सम्प्रदाय का एक अनुयायी, रामानन्द, जिसका जन्म प्रयाग में, एक ब्राह्मण वंश में हुआ था, उनको उत्तर भारत में ले आया। उसने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर दूर-दूर तक रामानुजीय सिद्धान्त के अनुसार भक्ति का उपदेश दिया। वह लोक-भाषा में उपदेश देता था। अल्प काल में उसके अनेक प्रभावशाली शिष्य हो गए। कहा जाता है उसके शिष्य-मण्डल में भिन्न-भिन्न

सम्प्रदायों एवं वर्णों के लोग थे। उदाहरणार्थ, रविदास चमार था ; सेना, नाई ; धन्ना, किसान ; पीपा राजपूत ; और कबीर, मुसलमान जुलाहा। कबीर इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। उस समय में सन्धि, सुधार, तथा संकुचित धर्म-विश्वास एवं सिद्धान्त से मुक्ति, की जो प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं, वह उन सबका सर्वोत्तम उदाहरण था। वह हिन्दू धर्म के प्राचीन केन्द्र काशी में रहता था। जनश्रुति के अनुसार उसने मुसलमानी विद्या-पीठ जौनपुर की यात्रा की थी, और उसका सम्पर्क एक प्रसिद्ध सूफ़ी, शैख़, तक़ी, के साथ भी था। वह भक्ति का एक प्रमुख व्याख्याकार हुआ। भक्ति की लहर के इतिहास में उसका विशिष्ट स्थान इसलिए है कि उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक दूसरे के समीप लाने में मध्यस्थ का कार्य किया, तथा उसके उपदेश हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक-समान सम्बोधन करके दिए गए हैं। उसने अपने उपदेशों की भाषा के विशेषार्थी शब्द दोनों धर्मों के धर्म-ग्रन्थों से लिए हैं। उदाहरणार्थ, जहाँ वह अल्लाह, रहीम, ख़ुदा, काबा, मुल्लाह, क़ाज़ी, शैख़, तरीक़त (धर्म विश्वास के अनुसार आचरण का मार्ग) इत्यादि मुसलमानी धर्म के शब्दों का प्रयोग करता है वहाँ राम, हरि, ब्रह्मा, समरथ, शक्ति इत्यादि हिन्दू-धर्म के शब्दों का भी। उसने जातिवाद, जटिल कर्म-काण्ड एवं मूर्ति-पूजा के सिद्धान्त की निन्दा निर्भय और निष्कपट होकर की है। जो पाखण्डी पण्डित एवं क़ाज़ी, धर्म के बाह्य रूप के भक्त रहकर, धर्म-द्वारा प्रतिपादित प्रधान कर्तव्यों की उपेक्षा करते थे, उनके ऊपर चलाए हुए कबीर के व्यंग्य बाण विशेषतः मर्मवेधी और अप्रतिवारणीय हैं। कबीर 'एक ईश्वर' की पूजा का प्रतिपादक था। उसके मन में स्वर्ग-प्राप्ति की कामना थी ; वह ब्रह्म में विलय का अभिलाषी था, जो केवल आराधना और अनुराग के बल से सम्भव है। भक्तों के मन में कर्म-काण्ड आडम्बर से शून्य यह उत्कट धर्म बसा हुआ था। ईसवीय चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दियों में भारत के विभिन्न भागों में यह लहर उत्ताल तरंग बन गई। ज्ञानेश्वर और नामदेव ने महाराष्ट्र में, रामानन्द, कबीर और रविदास ने गंगा प्रदेश में, धन्ना ने राजस्थान में और चैतन्य ने बंगाल में इसे लोक-प्रिय बनाया। इस प्रकार, भक्ति केवल धार्मिक सुधारों की ही नहीं उस सामाजिक क्रान्ति की भी वाहिका बनी जिसके स्वरूप की प्रमुख विशिष्टताएँ थीं जातिवाद की निन्दा, हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव को न्यून करना और उस समय में विद्यमान धर्म के रूपों का ललकार के साथ अस्वीकार।

विस्तीर्ण होती हुई समवेदना, तथा पारस्परिक आदान-प्रदान की वृत्ति की इस परिस्थिति को मुसलमानों का योगदान रहस्यमय जीवन यापन करने वाले सूफ़ियों द्वारा हुआ, जो स्वयं प्रेम तथा सहिष्णुता के सिद्धान्तों के अनुरागी थे। सूफ़ी सन्तों के जीवन के अंग थे—परमात्मा के दर्शनों के लिए औत्सुक्यमय

अन्तरात्मिक मार्गणा, प्रभु-इच्छा के सम्मुख पूर्ण आत्म समर्पण, मिताहार, सत्य-शीलता, एवं मानवतावादी विशाल दृष्टिकोण। अनेक सूफ़ी ईरान अथवा अरब में अपना घर छोड़कर भारत में आकर स्थायितया यहीं रहने लगे थे। उनमें कई विद्वत्ता की दृष्टि से महागुणशाली, तथा प्रकाश एवं अन्तर्दृष्टि के दैविक दान से कृतार्थ सन्त भी थे। आध्यात्मिक यश तथा विशुद्ध आचार के कारण वे महाप्रभावशाली हो गए थे। उनके निवास स्थान शनैः शनैः धार्मिक भावों के तथा मानवता-विवर्धन, प्रीति-प्रसार, के केन्द्र हो गए। इन्हीं केन्द्रों में चिश्ती, सोहरावर्दी, क़ाद्री, नक़्शबन्दी, मदारी प्रभृति सूफ़ी गुरुकुलों का जन्म हुआ।

सूफ़ियों के अपेक्षाकृत अधिक महत्वशाली केन्द्र लाहौर, मुलतान, उच्च अजोधन (वर्तमान पाकपटन), सरहिन्द, समाना, हाँसी, पानीपत, करनाल, देहली, अजमेर और गुलबर्गा (दक्षिण भारत) में थे। ग़ज़नी के महमूद द्वारा पंजाब के मुसलमान राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व ही लाहौर में शैख़ इस्माईल नामक एक रहस्य-सम्प्रदायी धर्म-गुरु आ चुका था। किन्तु परम यशस्वी शैख़ अली बिन् उस्मान हुज्वीरी (निधन १०७१ ई०) था। जनता में वह दाता गन्ज बख़्श के नाम से प्रसिद्ध था। लाहौर में उसका मक़बरा, जिसे महाराज रणजीत सिंह (१७८०-१८३९ ई०) ने दोबारा बनवाया था, अनेक शताब्दियों तक लाहौर का महाबहुजन-पूजनीय पुण्यस्थान रहा। हुज्वीरी अभ्यर्थियों के मनोरथ पूर्ण करने के लिए तो प्रसिद्ध था ही; वह विख्यात विद्वान् एवं कवि भी था। वह कश्फ़ अल् महजूब (अवगुण्ठित के अवगुण्ठन का अपसारण) नामक एक फ़ारसी ग्रन्थ का प्रणेता था। यह फ़ारसी में सूफ़ी मत विषयक प्राचीनतम ग्रन्थ है। अली हुज्वीरी का एक शिष्य सय्यद अहमद था। हिन्दू उसे बहुत मानते थे और उसे सुल्ताल सर्वर ('लखदाता') कहा करते थे। अजोधन की प्रसिद्धि चिश्ती शाखा के ख़्वाजा फ़रीद-उद्-दीन मसऊद गन्जेशकर (११७३-१२६५ ई०) के कारण हुई। वह सूफ़ी-सन्त-जगत् में अपनी परम विनम्रता एवं घोर सादगी के हेतु प्रसिद्ध था, और बहुसंख्यक हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उसे प्यार करते थे। उसकी पंजाबी कविता, जो तीक्ष्ण औत्सुक्य एवं अनु-शय की भाव-दशा से व्याप्त है तथा जिसमें अर्थाभिव्यक्ति असाधारणतया शुद्ध है, गुरु ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित है। उसका ख्यातनामा शिष्य, ख़्वाजा निज़ाम-उद्-दीन औलिया दिल्ली में रहता था। भारत में चिश्ती सम्प्रदाय का संस्था-पक मुइन-उद्-दीन था। वह पंजाब से आगे बढ़कर अजमेर चला गया, जहाँ उस समय राय पृथ्वीराज का राज्य था। वह अजमेर ही रहता रहा, और १२३४ ई० में वहीं उसका देहान्त हुआ। दक्षिण भारत में सूफ़ी मत के प्रचार की गति को तीव्रतम करने वाला हज़रत बन्दानवाज़ गेसूदराज़ (१३२१-१४२२ ई०) था। उसका केन्द्र था गुलवर्गा।

ये तथा अन्य अनेक सूफ़ी साधु, जिनका गौरव एक-समान नहीं है, भक्ति-परक भाव-सिक्त गीत लिख-लिखकर भगवान् की प्राप्ति के निष्ठापूर्ण प्रयत्नों, अहंत्व के उन्मूलन, एवं विषय-सुखों के प्रति परामुखी वृत्ति, के द्वारा एक समञ्जस धार्मिक मनोदशा उत्पन्न कर रहे थे। यद्यपि वे मुसलमानी शरीअत (धर्म-शास्त्रीय विधान) की परिधि के अन्दर रहे और स्व-धर्म-शास्त्रीय नमाज़, रोज़ा एवं हज्ज (मक्का-यात्रा)-विषयक अनुशासन का पालन करते रहे, तथापि उन्होंने इन कर्मानुष्ठानों की अपेक्षा अनुभूति को ब्रह्म-प्राप्ति का साक्षात्-सम्बन्धवान् साधन माना और उस पर जो बल दिया उसने रूढिवाद की कर्कशता को कम कर दिया। सूफ़ियों ने मुसलमानी धर्म में जिन नवीनताओं का समावेश किया उनमें से कतिपय के सम्बन्ध में उलमाओं के साथ उनका स्पष्ट विरोध रहा। उदाहरणार्थ, सूफ़ी सन्त आध्यात्मिक आनन्द में निमग्न होने के लिए भक्ति-गीतों को सुनते हैं, और उलमा इसे धर्म-विरुद्ध मानते हैं। इस प्रकार के विवादों से चिर-काल प्रतिष्ठित मन्तव्यों के प्रति आस्था दुर्बल होती गई, और विचारों को रूढि के बन्धनों से मुक्ति मिलती गई।

ब्रह्मान्वेषी, निरहंकार सूफ़ी सन्त भारतीय जनता को अच्छे लगने ही थे। मुसलमानों के समान हिन्दुओं के हृदयों में भी उनके प्रति श्रद्धा का उदय हो गया था। उनके आशीर्वाद एवं कृपा की प्राप्ति, तथा अपने मनोरथों की पूर्ति, की कामना से मुसलमान और हिन्दू दोनों ही सूफ़ी सन्तों की सेवा में उपस्थित होते थे। सूफ़ियों की संगति में बैठने से हिन्दू मुसलमान भी हो जाते थे। इस प्रकार मुसलमान हुए हिन्दुओं की संख्या विशाल है। सूफ़ियों की खानक़ाहों (मठों) में केवल मुसलमान और हिन्दू ही नहीं, धनवान् तथा निर्धन महाकुला-भिजन तथा साधारण, कवि तथा विद्वान् भी पहुँचते थे। खानक़ाह (जिसे दर्गाह भी कहते हैं), जहाँ मसजिद तथा किसी मुसलमान फ़क़ीर की क़ब्र और पथिकों के विश्राम के लिए घर का होना आवश्यक है, एक ऐसी संस्था थी, दिल्ली के मुसलमानों के शासन-काल में जिसका प्रभाव दूरव्यापी था। किसी उत्तम कोटि के सूफ़ी सन्त का निवास स्थान, अथवा स्मारक, होने के कारण खानक़ाह लोगों के आकर्षण का केन्द्र रहती थी, तथा धर्म-भावना से प्रेरित होकर लोग वहाँ जाया करते थे। खानक़ाह में कभी-कभी उस मार्ग से आ निकलने वाले यात्री, ज्ञानोपलब्धि के लिए आए हुए जिज्ञासु, शैख़ (प्रधान पुरुष, यहाँ सूफ़ी सन्त) के अनुयायी तथा स्थायी संगी, और उर्स (संरक्षक सन्त की निधन-तिथि) सदृश विशेष अवसर पर श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिए आने वाले बहुत लोग रहा करते थे। सब लोग भूमि पर सोते थे, और किसी व्यक्ति, अथवा जनता के दान से चलने वाली भोजनशाला में भोजन किया करते थे। क़ुरआन का पढ़ना, शैख़ के आध्यात्मिक प्रवचनों का सुनना, उसका आशीर्वाद प्राप्त

करना, और रात्रि में गायकों की मण्डली में सम्मिलित होकर लोमहर्षक धार्मिक गीतों का गाना, ख़ानक़ाह के निवासी एवं यात्री दोनों का कर्तव्य-कार्य था।

ख़ानक़ाहें मनुष्यों में समतापादक का कार्य भी करती थीं। वहाँ उच्च, नीच सबके साथ समान व्यवहार किया जाता था। लौकिक प्रभुत्व से घृणा के कारण सूफ़ी, विशेषतः चिश्ती-सम्प्रदायी, प्रशासनिक अधिकारियों से दूर रहने का यत्न करते थे, और राजनयिक साहाय्य अस्वीकृत कर देते थे। शैख़ फ़रीद को दिल्ली का निवास इसी हेतु रुचिकर नहीं था कि दिल्ली का सुल्तान वहाँ सुगमता से उसके पास पहुँच सकता था। अला-उद्-दीन ख़िलजी ने शैख़ फ़रीद के शिष्य शैख़ निज़ाम्-उद्-दीन औलिया को कुछ भूमि और कुछ वस्तुएँ भेंट में देनी चाहीं, परन्तु उसने उन्हें अस्वीकृत कर दिया, और एक बार तो सुल्तान का अपने घर में आना भी पसन्द नहीं किया। शैख़ ने कह दिया कि यदि सुल्तान मेरे घर में एक द्वार से प्रवेश करेगा तो मैं दूसरे से बाहर चला जाऊँगा।[१] कभी-कभी सूफ़ियों का सुख-त्याग पराकाष्ठा को प्राप्त हो जाता था। शैख़ फ़रीद ने, जिसकी एक पत्नी सुल्तान बल्बन की पुत्री थी, अपने आपको इतना अकिंचन बना लिया था कि उसके बालक प्रायः भूखे मरते थे। शैख़ निज़ाम्-उद्-दीन औलिया के जीवन की एक घटना है : उसने एक बार एक स्त्री को यमुना तट के समीप कुएं से पानी भरते देखा तो पूछा—'देवी ! जब नदी समीप है तब तुम यह कष्ट क्यों उठा रही हो ?' उस स्त्री ने उत्तर दिया—'मेरा पति फ़क़ीर है, और हमारे घर में अन्न की कमी रहती है। नदी का पानी पीने से भूख जल्दी लग जाती है। अतः मुझे यह कष्टतर कार्य करना पड़ रहा है।' सूफ़ियों में वित्तैषणा के त्याग के ऐसे आग्रह के साथ विनयशीलता तथा पद और पदवी की अवहेलना के गुण भी थे। वे अपने अनुयायियों के मध्य किसी प्रकार के भेद-भाव को नहीं मानते थे। अतः ख़ानक़ाहें, जहाँ धन-वान् होने के कारण किसी का आदर, और निर्धन होने के कारण किसी का अनादर नहीं किया जाता था, सूफ़ियों के समता के आग्रह को व्यवहार में परिणत करके दिखलाने का उदाहरण थीं।

यद्यपि सूफ़ी मत और भक्ति सम्प्रदाय दोनों के सिद्धान्तों का सार यही है कि दोनों में प्रत्येक व्यक्ति की निजी ब्रह्म-विषयक अनुभूति ही मुख्य मानी गई है, अतएव इनमें से एक भी साधारण जनता का धर्म नहीं बन सकता था, तथापि इन दोनों में साधारण जनता के लिए सहज संवेदना थी, तथा दोनों साधारण जनता के लिए नवीन प्रकार के विचार एवं अनुभव के मार्ग का द्वार खोलते थे। सूफ़ी मत एवं भक्ति सम्प्रदाय दोनों ने उस काल की अवरुद्ध जीवन-धारा

---

१. M. Mujeeb : The Indian Muslims, p. 74.

को गति प्रदान की, तथा इसके प्रवाह-मार्ग को विस्तीर्ण किया। उन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में जो प्रभाव उत्पन्न किया, उसने एक दूसरे को पुष्ट किया, और हिन्दू-मुसलमानों के मध्य बढ़ते हुए भ्रातृ-भाव को वेगवान् बनाया। दोनों के सैद्धान्तिक भेद अन्त में प्रवाहित हो जाने के आनन्दमय क्षण के लिए हिन्दू भक्त एवं मुसलमान सूफ़ी के प्रबल भावोद्रेक में निमग्न हो गए। सिद्धान्तों के पालन के लिए अपेक्षित कर्मानुष्ठानों की अवहेलना ने पुरोहितों एवं धर्माचार्यों द्वारा लगाए हुए प्रतिबन्धों को शिथिल कर दिया। प्रातिबन्धिक शिथिलीकरण में साहाय्य-दान करते हुए, तथा हिन्दुत्व एवं इस्लाम के महत्वपूर्ण सम्मिलन-भूमि की सीमाओं को चिह्नांकित करते हुए, सूफ़ी मत और भक्ति सम्प्रदाय जनता की समष्टि के जीवन में होने वाली नूतन प्रवृत्तियों की ओर संकेत कर रहे थे।

उस काल के लोक के सर्जनशील मनः-संवेग की पूर्ण अभिव्यक्ति श्री गुरु नानक में हुई, तथा उन्होंने ही उसके स्वरूप पर अपने विचारों की मुद्रा अंकित की एवं उसके प्रवाह की दिशा को निश्चित किया। श्री गुरु नानक द्वारा की हुई धार्मिक भविष्यद् वाणी की दो विशिष्टताएँ थीं : (१) सनिश्चय वस्तु प्रतिपादन और (२) एकीकरण। उन्होंने धर्म तथा जीवात्म-मुक्ति का, तथा न्याय एवं मानवमात्र की समानता का वह सजीव आदर्श लोक-सम्मुख रखा जिसको उन्होंने अपने जीवन में गहराई से पूर्ण कर लिया था। उन्होंने अपनी सूक्ष्म-दर्शिनी दृष्टि को उस समय की ऐतिहासिक अवस्थाओं, प्रेरणाओं एवं अभिकांक्षाओं के वास्तविक स्वरूप पर केन्द्रित किया। उस समय की वेदनाओं तथा व्यथाओं ने उनके दयालु हृदय को व्याकुल कर दिया। उन्होंने उस समय में विद्यमान प्रवृत्तियों से, जिनमें से कतिपय अभी तक अस्पष्ट एवं अस्थायितया स्वीकरणीय हैं, एक नवीन वस्तु विकसित की। वह वस्तु है—अस्तित्ववती वास्तविकता, विश्वास के सिद्धान्त, सदाचारानुमोदित एवं औदार्यशालिनी क्रिया। यह वस्तु सर्वांगपूर्ण है, इसकी रूपाकृति में किसी रेखा का अंकन शेष नहीं है। इस वस्तु में एक प्रबल धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्ति का बीज निहित था। जितने महत्वपूर्ण इस वस्तु से उत्पद्यमान विचार एवं जीवन थे, उतनीही गौरवशालिनी श्री गुरु जी की मूर्ति थी—सौम्य ; नम्र ; प्रेम से तथा मानवमात्र के हितभाव से पूर्ण ; अपने काव्य, निर्व्याज उदाहरण और ईश्वरीय सन्देश के द्वारा पिघलकर उस समय की चेतना में विलीन होती हुई।

भक्तों एवं सूफ़ियों के समान श्री गुरु नानक ने घोषित किया कि धर्म का प्रथम उद्देश्य है भगवान् का प्रेम, और उसके द्वारा भगवान् से मिलना। अधिकतर भक्तों के समान ही उन्होंने जातिवाद का तथा कर्मकाण्ड की महत्ता का प्रत्याख्यान किया, और सूफ़ियों के तुल्य, भगवत्-प्राप्ति के अन्तिम उपाय के रूप

में भगवदिच्छा के प्रति आत्म-समर्पण पर बल दिया। भक्ति-सम्प्रदाय और सूफ़ी-मत ने जो वातावरण उत्पन्न किया था उसके अनुरूप, वे भगवान् की स्तुति के गीत गाने से आनन्दित होते थे, और हिन्दू-मुसलमानों के मध्य सन्धि का मार्ग दिखलाते थे। उन्होंने इन सामान्य प्रवृत्तियों में दैवी शक्ति से अति-समुच्छ्वसित, तथा भविष्यत् पर दृष्टि रखने वाले, धर्म की शक्ति एवं प्रेरणा का संचार किया। उन्होंने उनमें ऐसे तत्वों का समावेश किया, जो सर्वथा उनके अपने थे, तथा जिनसे उनमें उद्देश्य-पूर्ति की पूर्णतया नवीन सम्भावनाओं की शक्ति भर गई। श्री गुरु नानक का ध्यान जीवन के समस्त अंगों पर था। गुरु जी अपने स्वतः सम्भूत अन्तर्ज्ञान के बल से समाज के दोषों और स्खलनों, तथा उनके निवारणोपायों, को जानते थे। यह गुण भक्ति-सम्प्रदाय एवं सूफ़ी मत दोनों में नहीं है ; क्योंकि उनमें पलायनवादीय मनोवृत्ति अव्यक्तरूप से विद्यमान है। भक्ति-सम्प्रदाय और सूफ़ी-मत के अनेक समर्थक यह मानते हैं कि मनुष्य अपनी आध्यामिक प्रगति में कभी ईश्वर के तुल्य हो सकता है ; परन्तु गुरु जी ने ऐसा नहीं माना। इसी प्रकार, गुरु जी ने भक्ति-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध अवतारवाद को स्वीकार नहीं किया, और न वे सूफ़ियों के इस आग्रह से सहमत हैं कि शरीर को कष्ट देने, तथा उन्मत्त होकर गाने एवं नाचने, से आध्यात्मिक प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है।

इन प्रशंसनीय प्रवृत्तियों में से कतिपय के साथ-साथ ऐसे प्रभाव भी सक्रिय थे जिनसे सामाजिक ताना-बाना दुर्बल तथा क्रमशः विशीर्ण हो रहा था। इनमें से दो अत्यन्त हानिकारक थे—दुर्बल-विश्वासिता तथा आत्म-प्रपीडन। मानो विदेशियों के आक्रमण से उत्पन्न आघातों, तथा सुरक्षा के अनिश्चियों, से त्राण प्राप्त करने के प्रयोजन से मानसिक प्राकार खड़ा करने के लिए, श्री गुरु नानक के आविर्भाव-काल में पंजाब ने अपना धर्म-विश्वास नाना मतों के एवं प्रकारों के सन्तों, फ़क़ीरों, साधुओं और एकान्त सेवियों के पास गिरवी रख दिया था। साधारण जनता में ईश्वर भक्ति के लिए उत्साह भरने वाले ऊनी वस्त्रधारी, दाढ़ी रखने वाले सूफ़ी दरवेशों, तथा भ्रमण करते रहने वाले हिन्दू सन्तों, के अतिरिक्त, सिर के बालों को गूँथकर रखने वाले कनफटे नाथ थे जो अवधूत गोरख के चेले थे ; काषाय वस्त्रधारी संन्यासी थे ; दैवज्ञ रावल थे ; भूत-प्रेत निकालने वाले आमिल थे ; स्पेन के एक सूफ़ी सम्प्रदाय के अनुयायी खप्पर लिए मांगने वाले क़लन्दर थे ; बौद्ध भिक्षु थे ; नग्न-मूर्ति-पूजक दिगम्बर जैन साधु थे ; भौतिक पदार्थों के त्याग के व्रतधारी 'अतीत' साधु थे ; गुप्तरूप से अनंग-लीलामयी रीतियों के पालक तान्त्रिक थे ; सूफ़ियों की मलामती शाखा के लोग थे जो अपने अभिमान एवं अहंकार के दमन के प्रयोजन से निन्दनीय कार्य करके भर्त्सना के अभिलाषी रहते थे ; कलहप्रिय साधु थे जो प्रायः ग्रामों में

डटे रहते थे और अपने अश्लील एवं लम्पटी भण्डाचार से ग्रामीणों से विपुल धन संग्रह करते थे। ये लोग भ्रमण करते रहते, अथवा भोली-भाली अन्ध-विश्वासों से भरी ग्रामीण जनता के गुरु बनकर किसी कुटी में रहने लगते थे। ये जिन मतों को मानते थे उनमें परम्परागत वह धार्मिक सहिष्णुता तथा प्रति-वेशी के साथ मिलकर रहने की भावना लुप्त नहीं हुई थी जो भक्ति की लहर तथा सूफ़ी मत के प्रभाव से दृढ़ हुई थी ; परन्तु कुछ काल व्यतीत होने पर इनमें दोष भी आ गए थे। इनमें प्रधान दोष यह था कि ये पलायनवादी दर्शन को मानने लगे थे। इनमें से बहुसंख्यक दूसरों के उपार्जित धन पर ही पलने वाले थे। इनके अनुयायियों के मन में कभी यह विचार उत्पन्न नहीं होता था कि कपटानभिज्ञ ग्रामीण जनता को प्रवंचित करना पाप है। मन एवं शरीर को कृश करने के हेतु ये सब प्रकार के गुह्य अभ्यास किया करते थे ; लोगों की चिकित्सा करते थे ; प्रार्थियों को तावीज़ लिखकर दिया करते थे ; दुर्भाग्य के निवारण अथवा निरोध के लिए रहस्यमय मन्त्र पढ़कर प्रार्थी की हथेली पर फूंक मारते थे और उसे इलायची, लौंग अथवा मिसरी देते थे ; शकुनों की व्याख्या करते थे ; जन्मपत्र पढ़ते थे ; और भविष्यत् को पूर्व ही सूचित कर देते थे। इस प्रकार जीवन का एक घोर चित्र ग्रामीण जनता के मन में अंकित करते हुए ये लोग सगर्व एवं साभिमान ग्रामों में भ्रमण करते रहते थे, और इनके जीवन की समस्त आवश्यकताएँ ग्रामवासियों को ही पूर्ण करनी पड़ती थीं। लोगों के मन में इस विश्वास ने दृढ़ता से घर बना लिया था कि जीवन व्यर्थ है। वे निश्चेष्ट तथा नैराश्याभिभूत हो गए थे। इन बातों ने उनको उन परिस्थितियों से पृथक् कर दिया था, जिनमें वे रहते थे।

श्री गुरु नानक ने अपने उपदेशों के लिए मनुष्य को समष्टि रूप में लिया, तथा उसके सुधार में समस्त मानव समाज की उन्नति समझी। गुरु जी के समय में विलक्षण प्रकार के शतशः मत-मतान्तर और उनके आचार-व्यवहार प्रचलित थे। ऐसी अवस्था में उन्होंने एक परात्पर सत्ता—परम-ब्रह्म—की स्तुति के गीत गाने प्रारम्भ किए, तथा लोगों से अभ्यर्थना की कि केवल एक परम-ब्रह्म को आराध्य समझो। उन्होंने प्रेम, समानता एवं सेवा का सरल धर्मोपदेश दिया। उन्होंने बतलाया कि धर्म हृदय की और सदाचार की वस्तु है, औपचारिक कर्मा-नुष्ठानों की नहीं। श्री गुरु नानक उस समय में परिव्याप्त नैराश्य के श्यामल वातावरण से ऊपर उठे, और आशा एवं जीवन के लक्ष्य की पूर्ति का सुख-स्वप्न लाए। उन्होंने अपने युग के लक्षणों को स्पष्टतया देखा, और प्रवाहहीन रहने से दूषित तथा विकृत तत्त्व को सजीव एवं शक्ति-सम्पन्न तत्त्व से पृथक् किया। उन्होंने जीर्ण-शीर्ण प्रतीकों को अस्वीकृत कर दिया, और प्रत्यग्र, प्राणवान् जीवन के तत्त्वों को प्रविष्ट किया। उन्होंने अपने समय में प्रचलित क्षयावस्था के कारणों

के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार किया। स्वच्छन्द शासन ने जनता के सदाचार एवं स्वाभिमान की जो हानि की वह, तथा जनता के मन के अन्तस्तल में बद्धमूल अन्धविश्वासों के दुष्परिणाम, विशेष रूप से उनके ध्यान में आ गए। उनके पुण्य काव्य में, जिसका स्वर मानवतावादी एवं मृदु है, इन त्रुटियों का उल्लेख है। उन्होंने बाबर द्वारा किए गए भारत के आक्रमण का उल्लेख मर्म-स्पर्शी और निर्व्याज भाषा में किया है। उस स्थिति से उत्पन्न मानसी पीड़ा उन्होंने महाप्रभावशाली और प्रतिवाद-सूचक शब्दों में अभिव्यक्त की है। उनका उस घटना का वर्णन मानो लोधी सुल्तानों द्वारा निदर्शित भ्रष्ट एवं अत्याचारी शासन के विषय में इतिहास का निर्णय है। स्व-काल-वर्तिनी वास्तविक स्थिति के प्रति ऐसी भावप्रवणता उस समय के समस्त भारतीय वाङ्मय में अद्वितीय है।

भक्ति-सम्प्रदाय, एवं सूफ़ी-मत, द्वारा प्रवर्तित निर्माण-विषयक प्रवृत्तियों को श्री गुरु नानक से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। देश में विद्यमान इस्लाम को उन्होंने पूर्णतया ध्यान में रखा, और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए उपयोगी उपदेश दिया। उनकी शिक्षाओं में हिन्दुत्व और इस्लाम जिस प्रकार परस्पर मिलते हैं उस प्रकार कहीं अन्यत्र नहीं। यहाँ The History and Culture of the Indian People में से एक स्थल का अनुवाद दिया जाता है—श्री गुरु नानक उस काल में प्रचलित साम्प्रदायिक धर्मों से सम्बन्ध-विच्छेद करके अपने ही मार्ग पर चलते रहे, और यद्यपि उनका अभिमत था कि भगवान् की प्राप्ति प्रेम एवं भक्ति द्वारा हो सकती है, तथापि उन्होंने वैष्णव अथवा किसी अन्य मत के रूपकों अथवा प्रतीकों को ग्रहण नहीं किया। हिन्दुओं तथा मुसलमानों को आध्यात्मिक और सामाजिक भ्रातृभाव के सर्व-भोग प्रांगण में लाने का उनका प्रथम, और अन्तिम, सफल प्रयत्न था।[१]

इस तथ्य को कदाचित् उस समीचीनता से किसी अन्य लेखक ने व्यक्त नहीं किया जिससे आर्नल्ड टायनबी (Arnold Toynbee) ने किया है। गुरु ग्रन्थ साहिब में से चुने हुए स्थलों के अंग्रेजी संस्करण के अपने प्राक्कथन में उसने कहा है :—

'प्रायः सभी उच्चतर धर्म, जो आज जगत् में महत्वपूर्ण समझे जाते है,—पारसी धर्म के अपवाद के साथ—दो भूखण्डों में से किसी एक उद्भुत हुए हैं अर्थात् भारत में अथवा दक्षिण-पश्चिमीय एशिया में। भारतीय धर्म और यहूदी धर्म मूल रूप में परस्पर कुख्याततया भिन्न हैं, और वे जहाँ कहीं मिले

१. R.C. Majumdar : The History and Culture of the Indian People , Volume entitled 'The Delhi Sultanate,' P. 569

हैं उन्होंने कभी-कभी तेल और सिरके के सदृश व्यवहार किया है। उनका सम्मिलन भारत में हुआ है, जहाँ इस्लाम ने हिन्दू धर्म को प्रबलतया प्रभावित किया है। सामूहिक दृष्टि से, भारत भूमि में इन दोनों महान् धर्मों के पारस्परिक सम्बन्धों की कथा पारस्परिक भ्रान्तावगति एवं विरोध की दुःखद कथा रही है। तथापि, दोनों धर्मों को एक दूसरे से पृथक् रखने वाली भित्ति के दोनों पार्श्वों में सूक्ष्म-द्रष्टा कुछ ऐसे नर-वर विद्यमान रहे हैं जिन्होंने देखा है कि (१) मूलभूत सिद्धान्तों की दृष्टि से हिन्दू धर्म एवं इस्लाम दोनों एक ही मूलाधार-भूत धार्मिक सत्यता की अभिव्यक्तियां हैं, (२) अतएव इन दोनों अभिव्यक्तियों का पुनः परस्पर सम्मिलन सम्भव है, और (३) जब इन दोनों का पारस्परिक विरोध दूर हो जाएगा तब ये दोनों परम-महत्व की वस्तु हो जाएंगी। सिख धर्म को हिन्दू मुसलमान धर्मों की संगम-भूमि का स्वप्न कहना अयथार्थ न होगा। हिन्दू मुसलमानों के ऐतिहासिक विरोध के नीचे दबे हुए गहरे अविरोध का पता लगाना और उसे कण्ठ से लगाना एक उदात्त आध्यामिक विजय है; और सिखों का अपने धर्म के शिष्टानुमोदित आचार और उद्भव पर गर्व करना उचित ही होगा।[1]"

इन सत्यों को अपने समय के प्रकाश में लाने वाले श्री गुरु नानक थे। अब हम उनके जीवन की कथा का उपक्रम करते हैं।

SIKHBOOKCLUB.COM

१. Selections from the Sacred Writings of the Sikhs, translated by Trilochan Singh et al, revised by George S. Fraser (London; George Allan and Unwin, Ltd 1960) pp. 9-10.

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

३

तलवंडी में जन्म एवं शैशव

भारत के तीन मुसलमान लोधी सुल्तानों में प्रथम बह्लोल खाँ था। उसके शासन-काल में लाहौर से प्रायः चालीस मील दूर, दक्षिण-पश्चिम में, तलवंडी नामक एक लघु ग्राम था। उसमें एक साधारण बेदी वंश रहता था, जिसके भाग्य में इतिहास में स्मरणीय होना लिखा था।

बहलोल, न उतना विख्यात हुआ और न उतना धर्मोन्मादी, जितना उस का पुत्र सिकन्दर। लोधी वंश से पूर्व दिल्ली में सय्यद वंश का शासन था; परन्तु वह वंश क्रमशः दुर्बल एवं शिथिल-बन्ध हो चुका था। बहलोल खाँ ने एक पटु व्यपदेश के बल से उसे स्थान-भ्रष्ट कर दिया। सय्यद वंश का अन्तिम सुल्तान, आलम शाह, दिल्ली को अपने मन्त्री, हमीद खाँ' के हाथ में सौंपकर स्वयं बदायूं जाकर विश्राम का जीवन व्यतीत करने लगा था। उस समय बह्लोल खाँ सुल्तान की ओर से एक प्रान्त का शासनाध्यक्ष था।

वह दिल्ली पहुँच कर मन्त्री से मिला। उसके सेवकों ने, स्व-स्वामी के पूर्व-प्रबोधन के अनुसार, मन्त्री के घर भोजन के समय विचित्र आचरण किया। उन्होंने अपने जूते कमर पर बँधी अपनी पेटियों में फँसा लिए, और पूछने पर कह दिया कि हमने जूतों की चोरी हो जाने की आशंका से ऐसा किया है। उन्होंने तश्तरियों में से फूल तो खा लिए, और पानों को, यह देखने के लिए कि इनकी सुगन्ध कैसी है सूँघकर, वहीं छोड़ दिया। मन्त्री के प्रति, जो उनके स्वामी का अतिथि-सत्कारकर्ता था, उन्होंने सेवकोचित विनयशीलता दिखलाई। उन्होंने मन्त्री के मसनद (आसन-मंच) के रंग की प्रशंसा की, और प्रार्थना की कि हमें क़ालीन देने की कृपा की जाए, जिससे हम उन्हें काट कर अपने बच्चों की टोपियाँ बनवा सकें। अपने सेवकों के व्यवहार की व्याख्या करते हुए बह्लोल ने कहा कि अफ़ग़ानों के समान ये सरल-स्वभाव, पहाड़ी लोग हैं और राजसभा के अथवा नागरिक जीवन के व्यवहारों के अनभिज्ञ हैं। बह्लोल के

निमन्त्रण पर अगले दिन मन्त्री हमीद खाँ पूर्वोक्त के घर भोजन करने आया। उसके भोजन के समय बह्लोल के सेवकों ने सानुरोध अभ्यर्थना कि हमें माननीय अतिथि के सम्मुख अपनी समादर-भावना व्यक्त करने के लिए अन्दर जाने की अनुमति दी जाए। उनकी ऋजुता का विचार करके मन्त्री ने 'अस्तु' कह दिया। कमरों में प्रवेश करके उन्होंने हमीद के भृत्य वर्ग को घेर लिया, तथा हमीद के सम्मुख एक शृंखला फेंक दी, जिसका अभिप्राय था कि वह बन्दी बना लिया गया है।[१] दिल्ली का राजसिंहासन रक्त-पात के बिना हस्तान्तरित हो गया, और सम्भवत: इस प्रकार के परिवर्तन का दृष्टान्त अप्राप्य है।

बह्लोल (१४५१-८८ ई०) ने केन्द्र के अधिकार से विच्युत भू-भाग को पुन: केन्द्राधीन करने का प्रयत्न किया, और वह क्षीण दिल्ली-राज्य को राज्य का सा रूप देने में सफल हो गया। पंजाब में, जिसे बह्लोल सरहिन्द का राज्य-पाल रह कर दृढ़ता से अपने आधिपत्य में रख चुका था, शासन-परिवर्तन से न्यूनतम अशान्ति हुई। सामूहिक दृष्टि से देश उत्तर-पश्चिम की दिशा से होने वाले आक्रमणों से कुछ काल तक मुक्त रहा, और यद्यपि बह्लोल में स्वमताग्रह एवं धार्मिक असहिष्णुता दोनों थे, तथापि उसके शासन के प्रारम्भ के साथ अपेक्षा-कृत शान्ति का एक अच्छा काल आ गया।

मध्य पंजाब में, रावी और चिनाब के दोआबे में तलवंडी ग्राम था। उत्तर पश्चिमीय पर्वतमाला के अन्दर से भारत में आने वाले जो दो प्रधान मार्ग हैं, यह उनमें से एक से बहुत दूर नहीं पड़ता था। आक्रमणकारियों, भारत में आकर बसने वालों, वाणिजिकों, व्यापारियों, धर्म-यात्रियों एवं पर्यटकों के अनेक समुदाय इस मार्ग से शताब्दियों तक यात्रा करते रहे। इस भूभाग में विभिन्न कालों में नई-नई पराक्रमशाली जातियाँ घर बनाती रहीं, और यह नाना जातियों एवं जन-गणों के जीवन तथा उनकी सभ्यताओं की विशेषताओं का क्षेत्र बन गया। इन तथ्यों का अध्ययन इतिहास के अनेक स्तरों का निर्माण करता है। जब ईसवीय दशम शतक में ब्राह्मण-वंश को काबुल-प्रदेश का आधिपत्य छोड़ना पड़ा, और उसने पंजाब में प्रभुत्व स्थापित करके लाहौर को राजधानी बना लिया, तब लाहौर को राजनयिक महत्त्व मिल गया। उससे पूर्व पंजाब में तलवंडी का चतुर्दिग् भू-भाग विशेष महत्त्वपूर्ण था। इस भू-भाग में स्थित साकला को महाभारत में मद्रों, अथवा वाहीकों, की राजधानी कहा गया है। यहाँ के निवासियों ने सिकन्दर की सेनाओं का घोर प्रतिरोध किया था, और उसी से इस नगर का समूल नाश हो गया था। तब मद्र-गण ने

---

१. सुजान राय भण्डारी : खुलासत्-तु-तवारीख़ (सैन्ट्रल उर्दू बोर्ड, लाहौर, द्वारा प्रकाशित उर्दू अनुवाद), पृष्ठ ३३२-३३।

समीप के एक अन्य स्थान को अपनी राजधानी बना लिया था। बौद्धकाल में इस नवीन राजधानी की वैसी ही प्रसिद्धि रही जैसी उससे पूर्व साकला की थी। चीनी यात्री ह्वेन साँग (Hiuen Tsang) इस नगर में ६३३ ई० में आया था। उसने इसका नाम त्सीकिआ (Tsekia) अथवा तकी (Taki) दिया है, तथा लिखा है कि यह मुलतान एवं शोरकोट तक समस्त पंजाब का आश्रय था।

ऐसी राजधानियों के समीप में तथा प्रबल घटनाओं एवं द्वन्द्व की श्याम छाया में स्थित तलवंडी ग्राम उस काल के संकटों से मुक्त नहीं रह सकता था। इसके निवासियों में यह लोकवाद अभी तक प्रचलित है कि अपने इतिहास के दीर्घकाल में यह ग्राम तेरह बार ध्वस्त हुआ, और तेरह बार ही इसका पुनर्निर्माण हुआ। जिन मनुष्यों को प्रत्येक प्रभात के नवीन सूर्योदय के साथ नवीन कष्ट अथवा आक्रमण का आखेट होना पड़े यदि उनमें स्वस्थता को पुनः प्राप्त कर लेने की ऐसी प्राणवत्ता हो तो आश्चर्य क्या ! उन्होंने अपने आघातों को स्मृति में रखना सीख लिया था। वे धुंधयाती आग में से जो कुछ बचा सकते थे बचा लेते थे और अपने घरों का पुनर्निर्माण करने में अथवा नई फ़सल बोने में देर नहीं लगाते थे। कुछ उसी प्रकार के उत्साह से सम्पन्न राय भोए ने ईसवीय पन्द्रहवें शतक के प्रारम्भ में तलवंडी को फिर बसाया। राय भोए भट्टी राजपूत था। ये लोग हिन्दुओं से मुसलमान हुए थे, और तलवंडी के समीप विशाल क्षेत्र-भूमि के स्वामी थे। राय भोए का बसाया तलवंडी ग्राम अब तक चला आ रहा है, परन्तु अब इसका नया नाम ननकाना साहिब है।

राय भोए का बसाया तलवंडी बह्‌लोल खाँ लोधी के काल में एक उन्नतिशील ग्राम था। भोए की मृत्यु के अनन्तर उसका पुत्र राय बुलार पैतृक सम्पत्ति का स्वामी हुआ। उसने तलवंडी की जन संख्या तथा सम्पन्नता दोनों में वृद्धि की। कृषक एवं शिल्पकार दोनों सुरक्षा के हेतु समीप की वस्तियों से उठ उठ कर वहाँ आने लगे। रावी नदी के इस पार, जहाँ अब अमृतसर है, वहाँ से एक हिन्दू क्षत्रिय बेदी परिवार भी वहाँ पहुँच गया। मुसलमान भट्टियों के समय में ऐसे कई परिवार वहाँ रहा करते थे।

रावी के इस पार के प्रदेश से जो बेदी परिवार तलवंडी जाकर बसा उस परिवार का एक पुरुष वहाँ का पटवारी बना दिया गया। उसका नाम कल्याण चन्द था। या तो उसके समकालवर्त्तियों ने, या अवश्य उत्तरकालीन इतिहासकारों ने, इसे संक्षिप्त करके कालू प्रसिद्ध कर दिया। अपने पिता शिवराम के समान कालू भी भट्टियों की भूमि के कर का लेखा रखा करता था। इसके अतिरिक्त खेती करने के लिए उसके पास कुछ अपनी भूमि थी, और कुछ पशु भी थे। कालू का विवाह लाहौर के दक्षिण में स्थित ग्राम चहलवाले के निवासी

रामा की पुत्री तृप्ता से हुआ था, और वह अपने वैवाहिक जीवन में सन्तुष्ट था। कालू का, लालू नामक, एक भाई था और नानकी नाम की एक पुत्री थी।

१५ अप्रैल[1] १४६९ ई० के ब्राह्म-मुहूर्त में कालू के घर एक पुत्र का जन्म हुआ। वह बड़ा होकर मानव जाति का एक महान् धर्म-गुरु, एवं उत्तरकालीन पीढ़ियों का प्रशंसा पात्र महापुरुष, हुआ। 'जनमसाखियों' के वर्णनों के अनुसार बालक का जन्म एक उज्ज्वल, मनोहर घटना थी, और उस समय कई अद्भुत बातें हुईं। जिस कच्चे कोठे में जन्म हुआ वह सहसा प्रकाश से पूर्ण हो गया। सुरलोक एवं पारताल लोक में गुणी और बुद्धिमान् सौभाग्य-सूचक इस घटना से प्रमुदित हो गए और उस परम अभिराम आत्मा को नमस्कार करने के लिए खड़े हो गए, जिसने देवाधिदेव की इच्छा को पूर्ण करने के हेतु पार्थिव शरीर धारण किया था।

बालक के जन्म के समय औत्सुक्य से व्याप्त पिता बाहर बैठा था। जब दाई ने बाहर आकर सूचना दी कि पुत्र का जन्म हुआ है तब उसके हर्ष की सीमा न रही। प्रचलित प्रथा के अनुसार जन्म के ठीक समय को लेकर बालक का जन्मपत्र बनना चाहिए। अतः कालू तत्क्षण उठा और कुल पुरोहित पण्डित हरदयाल के घर पहुँचा। पुरोहित अभी प्रातःकालिक संध्या-वन्दन से निवृत्त नहीं हुआ था। नित्यकर्म को समाप्त करके वह शीघ्र ही कालू के घर आ गया।

---

१. ईसवीय सन् के इस दिन के साथ-साथ एक अन्य दिन भी गुरु जी का जन्म दिन माना जाता है। यह कार्तिक पूर्णिमा है, जो कभी अक्तूबर में और कभी नम्बर में पड़ती है। वास्तव में गुरु जी का जन्मदिन सर्वत्र इसी तिथि में मनाया जाता है। यह दिन उत्तरकालीन जनमसाखियों से प्रचलित हुआ है, और उन उत्तरकालीन साखियों में भाई बाला की जनमसाखी भी सम्मिलित है। 'पुरातन' तथा 'मेहरबान' जैसी प्राचीन साखियों में अप्रैल वाला ही जन्मदिन दिया गया है। भाई मनीसिंह की जनमसाखी में, और महिमा प्रकाश में भी ऐसा ही है। परन्तु इन ग्रन्थों में गुरु जी के जोतीजोत समाने के समय उनकी आयु सत्तर वर्ष, पाँच मास और सात दिन दी गई है। इसके अनुसार उनका जन्म दिन अप्रैल के मध्य में आता है। इस विषय पर करन सिंह ने अपनी पुस्तक 'कतिक की बैसाख'—'कार्तिक अथवा वैशाख'—(नवम्बर अथवा अप्रैल) में अच्छा ऊहापोह किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन १९१२ ई० में हुआ था। उसके अनन्तर श्री गुरु नानक पर प्रकाशित प्रायः प्रत्येक पुस्तक में वैशाख (अप्रैल) वाली तिथि स्वीकार की गई है; परन्तु कार्तिक में जन्म-दिन मनाने की प्रथा, इसका प्रचलन चाहे जिस कारण से हुआ हो, प्रचलित है।

SIKHBOOKCLUB.COM

वहाँ उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। उसके वहाँ पहुँचते ही उसके बैठने के लिए आदर के साथ गद्दा बिछा दिया गया। गद्दे पर बैठकर हरदयाल ने गोल लपेटे हुए एक लम्बे कागज पर केसर के जल का छींटा दिया और फिर उस बालक की जन्म-कुण्डली बनाई। 'बाला जनमसाखी' में कथित है कि पुरोहित ने परम प्रसन्न होकर प्रश्न किया कि क्या दाई ने कोई लक्षण देखें हैं? मुसलमान दाई, दौलताँ, को पुरोहित से बात करने के लिए बुलाया गया। दाई बोली—मेरे हाथों बीसियों बालकों का जन्म हुआ है, किन्तु मैंने कालू के पुत्र जैसा विचित्र कोई बालक नहीं देखा। उसने यह भी कहा कि इस बालक का प्रथम रोदन युवा पुरुष के हास के तुल्य था। फिर, दाई ने कहा कि मैंने इस बालक के जन्म के समय जो शकुन देखे हैं उन्होंने तो मुझे विस्मय-विमुग्ध कर दिया है। दाई के कथन ने पण्डित हरदयाल के गणना-फल की पुष्टि की। तब पण्डित ने बालक को देखने की इच्छा प्रकट की। बालक को वायु लग जाने के भय से बालक की माता ने बालक को बाहर भेजना स्वीकार नहीं किया तो पण्डित ने यह कहकर उसके भय की निवृत्ति कर दी कि बालक को वायु नहीं लग सकेगी। 'जनमसाखी' का कथन है कि ज्योंही तत्कालोचित वस्त्रों में परिवेष्टित बालक बाहर लाया गया त्योंही पण्डित हरदयाल ने बद्धांजलि होकर उसे नमस्कार किया और कालू से कहा कि आपका पुत्र चन्द्रातप के नीचे बैठेगा। उसने यह भी कहा कि—'हिन्दू और तुर्क दोनों उसका समादर करेंगे, और उसका नाम नरलोक और सुरलोक दोनों में प्रथित हो जाएगा। समुद्र, पृथ्वी एवं आकाश उसे मार्ग देंगे। वह केवल एक निराकार ईश्वर को मानेगा, और उसकी आराधना करेगा, तथा औरों को भी वैसा करने का उपदेश देगा। ······वह प्रत्येक प्राणधारी को परमात्मा की सृष्टि मानेगा। कालू! दुःख की बात यह है कि उसके गौरव के दिन को देखने के लिए मैं जीवित नहीं रहूँगा। क्या पता मेरी आयु कितनी है।"[1] इतना कहने के पश्चात् पुरोहित ने कहा कि मैं तेरहवें दिन आकर इसका नामकरण करूँगा, और बधाई तथा अनेक आशीर्वाद देता हुआ वह घर चला गया।

ज्योंही कालू के घर पुत्र के जन्म होने का समाचार ग्राम में फैला, त्योंही उसके मित्र और सम्बन्धी, हिन्दू और मुसलमान, बधाई देने के लिए कालू के घर आने लगे। कालू ने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया, और बधाई के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। रीति के अनुसार उसने बधाई देने वाले सब लोगों के घर मिठाई भिजवाई, तथा दरिद्रों में मिष्टान्न एवं वस्त्र वितीर्ण किए। गीत गाते हुए, तथा बालक का वंश-वृक्ष कविता में सुनाते हुए, जो भाट कालू के घर आए वे उदार

---

१. बाला जनमसाखी, पृष्ठ ६।

दान-सम्मान से सन्तुष्ट किए गए। छठी के दिन रीत्यनुकूल सहभोज हुआ, जिसमें बेदी कुल के लोग तथा अन्य मित्र एवं गण्य-मान्य नर-नारी निमन्त्रित किए गए।

वयो-वृद्धि के साथ होने वाला, बालक के, गुणों का विकास 'मेहरबान जनमसाखी' में, काव्योचित कमनीय पंजाबी भाषा में, नाटकीय शैली में वर्णित है :—'जब बालक एक मास का था तब वह दृष्टि को एक लक्ष्य पर स्थिर कर सकता था, और यदि पिता, माता अथवा दाई उसे बुलाती थी तो वह बुलाने वाले की ओर ध्यान से देखता था। जब वह दो अथवा तीन मास का था तब गर्दन सीधी रख लेता था। जब वह चार मास का था तब उसे चोला पहनाया गया, तथा पालने में लिटाया गया। पाँच मास के वय में वह हर्ष की किलकारी मारने लगा था।''''''जब वह छै मास का था तब कोई उससे बात करता था तो वह तोतली भाषा में प्रसन्नता से बोलता था। सात मास का बैठ जाता था, और योगियों के समान पद्मासन लगाकर बैठता था। सात मास का बालक, और देखो कैसे बैठता है! माता-पिता को यह चिन्ता होती थी कि कहीं इसके पैर मुड़ न जाएँ। यदि माता-पिता उसके पद्मासन को खोल देते तो वह केवल उतने क्षण पैरों को फैलाए रखता जितने क्षण वे उन्हें पकड़े रहते, और जब छोड़ देते तब फिर पद्मासन लगा लेता। आठ मास का होने पर वह एक घुटने के बल रेंगने लगा, और नौ मास का हुआ तो दोनों घुटनों से। दस मास के वय में वह धीरे-धीरे चलना और पैरों पर खड़ा होना सीख गया था। बारह मास का हुआ तो वह लड़खड़ाता चलता और बालकों की भाषा में बा बा मा मा कहता। डेढ़ वर्ष का होकर वह अबाध गति से बातें करता था। दो वर्ष का होकर वह अपने वय के बालकों के साथ खेलने लगा था।'[1] 'घर के पुराने बही-

---

१. 'जदि मास दिना का हूआ तब लागा गुरू बाबा नानक जी द्रिसटि मुखी लावणे। माता पिता दाई दाइआ जे कोई बुचकारै तिस की तरफ नेत्रा की तारि लाइ रहै। जब दुहु त्रिहु महीनिआँ का हूआ तब गुरू बाबे नानक धवणि टिकाई। जब चारि महीने का हुआ तब झुगली पहिराई। पलनै बहालिआ, लागा झूलि-झूलि आईणे। जब पंज महीने का गुरू बाबा नानकु हूआ तब लागा गुटिकि पवाणै। जे कोई बुलावै गुटिकि गुटिकि मुखि लागै।''''''' जब छिआँ महीनिआं का गुरू बाबा नानक हूआ तब जे कोई बुलावै तब आगैते हूंगारा भरै, हां भावटै। जब सता महीनिआँ का हूआ तब लागा चक्र मार बैठणै, जोगिंद्र की जैसी बैठक बैसे। सति महीनै का बालकु अरु कैसे बैठता है। तब माता पिता कहहि जी मतु इसकी टंगड़ी महि बलु पड़ि जाता होइ। तब ओहि जुगिंद्र चक्र की गोठि उतारि करि सीधी गोठि होइ बैठावहि। जब

खातों तथा कागजों को इकट्ठा करके गड्डी बनाना और उन्हें स्वच्छ वस्त्र में लपेटना"[1] उसका प्रिय खेल था। वह कागजों की उस गड्डी को बग़ल में दबाकर चला करता था, अथवा मानो उन्हें पढ़-पढ़कर अपने साथियों को सुनाया करता था।

बालक का नाम नानक रखा गया। नामकरण संस्कार के समय पुरोहित हरदयाल ने भविष्यद्वाणी की कि नानक नाम हिन्दू और मुसलमान दोनों में प्रचलित है, अतः युवा होकर यह बालक हिन्दू और मुसलमान के भेद को नहीं मानेगा। समय व्यतीत होने पर तलवंडी ग्राम का नाम, 'नानक' नाम को लेकर, ननकाना हो गया तथा उसके अन्त में आदरसूचक अरबी शब्द 'साहिब' (महान्) लगा दिया गया।

तलवंडी नीची छत वाले कच्चे घरों का एक छोटा-सा ग्राम था। इसमें राय की हवेली ही सबसे ऊँची थी। गलियाँ तंग तथा धूल से भरी थीं। समीप ही छोटी-छोटी झाड़ियों का जंगल, तथा रेत, था, गाँव के कुओं के पास, खण्डशः हरे-हरे खेतों के समूह थे। गाँव के पास समतल भूमि में कहीं-कहीं ऊँचे-ऊँचे टीले थे, जो वास्तव में उजड़ी हुई पुरानी तलवंडी के खण्डहरों के ढेर थे। तलवंडी ग्राम अपरिपक्व प्रकृति के निर्जन विस्तार में वास्तव में एक लघु शाद्वल था। तलवंडी के भूमि दृश्य का रूप ऋतु-परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो जाता था, और प्रत्येक ऋतु में यहाँ की जलवायु पंजाब में सबसे अधिक चरम सीमा को पहुँच जाती थी। शरद ऋतु प्रभात के साथ तुषार ले आती थी, जो झाड़ियों के जंगल को आच्छादित कर लेता था। स्फटिक-सदृश स्वच्छ, निर्मल नील आकाश से दिनकर का उदय होता, उससे शीत की कठोरता कुछ मृदु हो जाती, तथा वातावरण नील-वर्ण की स्पर्शार्ह आभा से आप्लावित हो जाता। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा चिरतरस्थायी ग्रीष्म ऋतु में दिन दाहक एवं निष्कम्पवात-तापमय होते ; कृष्ण रज के वात्या-चक्र उठते, शून्य धरातल पर

लगु फड़ि राखहि तब लघु सीधी गोठी होइ जब छोड़ि देहि तब बहुड़ि जोग चक्र गोठि होइ जाइ। तब लोक कहहिं जि ए पणमेसुर ! एसु की कैसी गोठि है बैठणै की, किउ करि बैठता है सात महीने का बालकु, अरु एस की बैठक जोग चक्र होइ जाती है। जब आठ महीने का भइआ तब लागा एक गोडे परनै होवणै। जब नवा महीनिआ का हूआ तब लागा दोनो गोडे परणै। जब दस महीने का हूआ तब लागा गोडीआं परणै रुभणै अरु खड़ोवणै। जब बारह बारह महीने का हूआ लागा पगहु चलणै, बाबा-बाबा, माता-माता लागा कहणै। जब डूढु बरस का हूआ तब लागा चौपटि बोलणै। जब दो बरस का हूआ तब लागा बालका साथि खेलणै।' पृष्ठ १०-११।

१ मनीसिंह जनमसाखी, पृष्ठ ३६।

नाचते और वायु-मण्डल को धूलि तथा प्रस्तर-शर्करा से पूर्ण कर देते। जब वायु मण्डल प्रशान्त होता तब मध्याह्न की अन्धा करने वाली धूप में रेतीले प्रदेश से ताप की तरंगें उठने लगती थीं। शरद् के अनन्तर अल्पकालस्थायी वसन्त आता था। इसमें मरु की झाड़ियाँ कुसुमित हो जातीं, तथा गेहूँ एवं चने के खेतों में स्निग्ध सुनहरा रंग भर जाता। वसन्त के अनन्तर वर्षा की ऋतु आती। इस काल में शुष्क धरा में नवजीवन के लक्षण स्फुटित हो जाते, गोचर भूमि अविरल घास से आवृत हो जाती, सर्प तथा कृमि-कीट अलब्ध-पूर्व स्वतन्त्रता का सुख भोगते।

वह प्रदेश जिसमें तलवंडी ग्राम था 'बार' (अरण्य-सदृश प्रदेश) कहलाता है। उस 'बार' प्रदेश में बालक नानक खेलता और दिवा-स्वप्न देखता। काल-क्रम से उसमें वहाँ की परिवर्तनशील अवस्थाओं तथा मनो-भावों के सौन्दर्य के ज्ञान का उदय हो गया। उस ज्ञान से उसमें आत्म-विस्तार और हर्ष की, विस्मय और एकान्तवास के प्रेम की, अनुभूति उत्पन्न हुई। वहाँ के पशु, पक्षी, ध्वनियाँ, सुगन्ध, ऋतु, हरितावली, 'जन्ड' (शमी), 'वन', 'पीलु' इत्यादि[1] वृक्ष, 'करीर' इत्यादि झाड़ियाँ उसके कविजनोचित स्वतः सम्भूत अन्तर्ज्ञान के अंग हो गए। बड़े होकर आत्मानुभूत जगत् की, तथा उन्हें जो ईश्वरीय सन्देश लोगों को सुनाना था उसकी, अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित रूपकादि-काव्यालंकारों की योजना में उन्होंने इन वस्तुओं का उपयोग किया। तलवंडी के तीर-भाग में ध्वंसावशेषभूत एक भारी टीला, जो अभी तक वहाँ के टीलों की पंक्तियों में प्रमुख है, अवश्य बालक नानक की कल्पना में विशेषतः घर कर गया होगा। गुरु जी ने अपनी रचना में एक ठोस प्रतीक के रूप में इसका प्रयोग किया है। अन्य बालकों के तुल्य बालक नानक भी कुतूहल की शान्ति, एवं क्रीडा, के लिए इस टीले के समीप जाता होगा, और इसे देखकर उसके मन में भय तथा एक विचित्र भाव उत्पन्न होता होगा।

अपने वय के बालकों के साथ खेलना, तथा अपने मिष्टान्न में एवं खेल की वस्तुओं में उन्हें भी भागहारी बनाना बालक नानक को प्रिय था। उसकी इस वृत्ति से उसकी माता प्रसन्न होती थी, तथा उसके साथ खेलने वाले बालकों को घर बुलाया करती और उन्हें अपनी शक्ति के अनुरूप कोई न कोई वस्तु दिया करती थी। परन्तु यह बात नानक के पिता की रुचि के अनुकूल नहीं थी, और वह नानक को व्यर्थ-व्ययकारी समझता था। कभी-कभी नानक खेल के सहचरों से पृथक् होकर ध्यान-मग्न हो जाता। वह गुरुजनों के सम्मुख

---

१. प्राचीन काल से इस प्रदेश में पीलु विशेषतः उत्पन्न हो रहा है। महाभारत में कहा गया है 'शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु,' Alexander Cunningham : The Ancient Geography of India, p. 184.

सदा नम्रता एवं बुद्धिमत्ता से बोलता। इतने लघु वय के बालक में ऐसा गुण विस्मयावह माना जाता था। बालक नानक से समस्त ग्राम प्रसन्न था। 'मेहर-बान जनमसाखी' में कहा गया है :—'यदि कोई हिन्दू उसके पास से निकलता तो कहता—भगवान् गोविन्द ! इतना छोटा बालक और ऐसे शुभ वचन बोलता है ! यह जितना सुन्दर है उतने ही निर्मल इसके शब्द हैं। यह तो स्वयं पर-मात्मा की प्रतिमा है ! यदि कोई तुर्क उसे देखता तो वह भी उतने ही स्वर-बल से कहता—हे दयालु भगवान् ! तेरी रचना अद्भुत है। यह बालक कितना सौम्य-दर्शन है और यह कितनी कोमलता से बात करता है ! ओहो, इसके साथ बात करने से मन कैसा प्रसन्न होता है ! इसे सर्व शक्तिमान् परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त है।'[१]

SIKHBOOKCLUB.COM

१. 'जे कोई हिन्दू जनमु देखै सि कहै धंनि गोबिंद ! एता कु बालकु है अरु कहा शुभ बचन कहता है तैसा ही सुन्दरताई है अरु तैसो ही शुभ बचन बोलता है। कोई परमेसुर का रूप है। अरु जे कोई तुरकु देखै सु इवै ही कहै जि वाहु खुदाई। तेरी पैदासि, कैसा लड़का खूबिसूरति है अरु बोलता कैसी नसीहति है। अरु निसा कैसी होती है एस के बोलणे साथि। वडा कोई खुदाई दा नेकु है :' पृष्ठ ११।

४

धार्मिक गीत द्वारा शिक्षा

कालू के मन में अपने इकलौते पुत्र के विषय में सांसारिक महत्वाकांक्षाएँ थीं। उसकी इच्छा थी कि मेरा पुत्र पढ़-लिख जाए, और एक दिन मेरे स्थान पर ग्राम का पटवारी हो जाए। अतः जब बालक नानक सात वर्ष का हो गया तब उसको शाला भेजने की व्यवस्था की जाने लगी। उसके विद्यारम्भ के लिए पण्डित से शुभ दिन पूछा गया। पण्डित द्वारा निर्दिष्ट दिन पिता कालू नानक को गोपाल नामक अध्यापक के पास ले गया। गोपाल ने ग्राम में एक शाला खोल रखी थी। कालू गोपाल को भेंट देने के लिए थाल में सुपारी, चावल, खांड और चाँदी का एक रुपया ले गया। जिस बालक की ग्राम में इतनी प्रशंसा हो रही थी उसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए अपने पास आया देखकर गोपाल मन में अतिप्रसन्न हुआ। उसने नानक को अपने सम्मुख विद्यार्थियों में, जो सभ्यता के साथ, भूमि पर, एक पंक्ति में बैठे थे, बैठाया। इसके पश्चात् उसने एक पट्टी पर वर्णमाला के कतिपय प्रथम अक्षर लिखकर स्मरण करने के लिए नानक को दिए।

सन्ध्याकाल में, नानक के घर आने के समय, माता तृप्ता तथा बहिन नानकी, द्वार पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने उसके मुख पर विचार-मग्नता के वे लक्षण, जो कभी एकान्त में बैठे के होते थे, देखे तो उनके हर्ष का स्थान व्याकुलता ने ले लिया। उन्होंने उससे कुछ नहीं पूछा, और अनुपम स्नेह से उसे गोद में उठा लिया। अगले दिन माता ने नानक को शीघ्र स्नान कराया और नवीन वस्त्र पहिनाकर शाला भेज दिया।

एक दिन नानक ने शाला में एक रचना अपने हाथ से पट्टी पर लिखी और उससे उसके दोनों पार्श्व भर दिए। अध्यापक उसकी पट्टी को देखकर विस्मित हो गया ; क्योंकि उसका विचार था कि नव-प्रविष्ट नानक कतिपय अक्षरों के अतिरिक्त कुछ नहीं लिख सकता। 'बालक ने लिखा क्या है ?' यह

जानने के लिए उत्सुक होकर उसने कहा—इसे पढ़कर सुनाओ। अध्यापक तो आश्चर्य से स्तब्ध हो गया, अरे, यह तो पंजाबी भाषा में लिखा एक धार्मिक गीत था, जिसे नानक ने वर्णमाला के वर्णों के अनुगुण चरणों से युक्त कविता के रूप में सहसा लिख डाला था।[1] इस गीत में उसने उन प्रश्नों को चिन्ता का विषय बनाया था जो उसके वय के बालक की बुद्धि में कभी नहीं आ सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मन में उठे प्रश्नों में मुख्य यह था कि 'वास्तव में किसे विद्वान् कहना उचित है ?' निश्चय ही उसे नहीं जिसने वर्णमाला के वर्ण सीख लिए प्रत्युत 'उसे जो इनके द्वारा सत्य भूत वस्तु का ज्ञान उपलब्ध करता है।' 'ऐसे व्यक्ति से किसी प्रकार का हिसाब किताब नहीं माँगा जाएगा। ······जो ब्रह्म ज्ञान का प्रकाश करता है वही वास्तविक पण्डित है।······जिस एक परमात्मा ने इस विश्व की रचना की है वही प्रत्येक सद्वस्तु का स्वामी है। जिनका हृदय उस परमात्मा के प्रेम से पूर्ण है, तथा जो उसकी सेवा में संलग्न रहते हैं इस लोक में उनका जन्म धन्य है। जो परमात्मा को भूल जाता है वही अज्ञानी है। बन्धो ! जब तुम अपना हिसाब-किताब ठीक कर लोगे तभी तुम विद्वान् समझे जाओगे। जिनका मन भगवान् के चरणों में लीन रहता है उन्हीं के हृदय में सुख व्याप्त होते हैं। हे प्रभो ! जिनका मन इस प्रकार तेरे साथ जुड़ा है, वे ही रक्षित हैं तथा तेरी कृपा से आनन्द प्राप्त करते हैं।' पवित्र चिन्तन से पूर्ण यह मनोदशा छन्दोमयी रुचिर रचना में व्याप्त है। 'पाँधा' (उपाध्याय) गोपाल ने नानक की, कविता तथा भावाभिव्यक्ति के लिए, ऐसी समय से पूर्व पक्व प्रतिभा स्वीकार की और उसने इसे अपना सौभाग्य समझा कि मुझे आश्चर्यजनक तथा दैवी-शक्ति सम्पन्न मेरे एक शिष्य ने शिक्षा दी। उसके अन्य शिष्यों के लिए यह एक दुर्बोध विचित्र घटना थी।

अध्यापक को अभी तक आशा थी कि नानक हिसाब-किताब करना, बही-खाते लिखना, आय-व्यय का जोड़ करना तथा अन्तर निकालना सीख जाएगा और अपने पिता का व्यवसाय संभाल लेगा। वह नानक को यह बात

---

१ गुरुजी की जो लम्बी छन्दोबद्ध रचनाएँ मूल रूप में अब तक चली आ रही हैं और गुरु ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित हैं यह, इस कथा के अनुसार, उन सब में प्रथम कही जाएगी। यह 'राग आसा' में (पृष्ठ ४३२) सम्मिलित है, और इस पर यह टिप्पण है 'पट्टी लिखी'। यह धार्मिक गीत गुरु जी की उस शैली की विशेषता का सूचक है, जिसमें उन्होंने, उत्तरकाल में, अपनी बहुत सी शिक्षाओं को व्यक्त किया। रचना-शैली के विषय में प्रश्न किया जाए तो उत्तर यह है कि बड़े होने पर गुरु जी ने स्वयं कहा है कि मुझे जिस प्रकार बोलने का भगवदादेश होता है मैं उसी प्रकार बोलता हूँ।

समझाता रहा। परन्तु नानक का मन तो अन्यत्र था। उसने मन में शाला-त्याग का निश्चय कर लिया; किन्तु वैसा करने से पूर्व उसने अध्यापक के लिए एक अन्य धार्मिक गीत की रचना कर डाली :—

"जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु॥
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु॥
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंत न पारावारु॥
बाबा एहु लेखा लिखि जाणु॥
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु॥"[१]

पुत्र को कुल-विद्या प्राप्त किए बिना ही शाला से घर लौट आते देखा तो पिता खिन्न हो गया, किन्तु हताश नहीं हुआ। उसने सोचा नानक को पण्डित ब्रिजनाथ शास्त्री के पास भेजना चाहिए, क्योंकि वहाँ यह अपनी रुचि के अनुसार धर्म ग्रन्थ पढ़ सकता है। नानक को शिष्य के रूप में प्राप्त करके पण्डित ब्रिजनाथ प्रसन्न हुआ। बालक नानक ने उससे संस्कृत पढ़ी; किन्तु वह संस्कृत को जीविका-वृत्ति का साधन बनाना नहीं चाहता था, अतः पंडित ब्रिजनाथ से अधिक समय नहीं पढ़ा। बालक नानक का मन उसे समस्त प्राचीन परिपाटियों से भिन्न परिपाटी पर चलने की प्रबल प्रेरणा कर रहा था। तलवंडी में एक मकतब भी था। उसमें मौलवी क़ुत्ब उद्-दीन पढ़ाया करता था। बालक नानक अब वहाँ प्रविष्ट कराया गया, और उसने वहाँ अल्प काल में ही अरबी तथा फ़ारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली, और अपने सहज गुणों से मौलवी को विस्मित कर दिया। 'मेहरबान - जनमसाखी' के अनुसार 'मौलवी कहा करता था—सुबहान् अल्लाह! फ़ारसी भाषा में बालक की ऐसी गति! मैं ने ऐसी मेधा कभी किसी में नहीं देखी! इस पर स्वयं परमात्मा की कृपा है……यह महासौभाग्यशाली है……यह एक बार जो सुन लेता है तत्क्षण उसे समझ, और बुद्धि में बैठा, लेता है।[२] यह भी अनुश्रुति

---

१ गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरी रागु, पृष्ठ १६।

सांसारिक प्रेम को जलाकर, घिसकर, मसी बना लो, शुद्ध बुद्धि को काग़ज। [ईश्वर] प्रेम को लेखनी बना लो, चित्त को लेखक, [और] गुरु से पूछ पूछ कर [उसके निर्दिष्ट] विचार लिखते जाओ। [परमात्मा का] नाम [और उसकी] प्रशंसा लिखो, [और] लिखो [कि] उस परमात्मा का अन्त [अथवा] इधर का एवं उधर का तट नहीं है। बाबा! यही लेख लिखना जानना चाहिए। जहाँ लेखा माँगा जाएगा वहाँ [यही] सत्य निशान (प्रमाण-पत्र) होगा।

२ 'सुबहान या रब्बलि आलमीन! एहा फ़हमु मैं किसै का नाहीं देखिआ-एस दै ताईं बडी इनाइति रबुलि आलमीन दी है……एहु कोई वली है जि सुणिदिआँ सार जबति करि लैदा है।' पृष्ठ १६।

है कि बालक नानक ने फ़ारसी की वर्णमाला के 'अलफ़्' आदि वर्णों से युक्त एक धार्मिक कविता फ़ारसी में भी लिख डाली थी। यह कविता उनके कई जीवन चरितों में दी गई है, किन्तु गुरु ग्रन्थ साहिब में नहीं है।

बालक नानक के शाला-वर्षों में उसके घर दो विशेष घटनाएँ हुईं : (१) नानकी का विवाह, (२) नानक का यज्ञोपवीत संस्कार। उस समय नानकी का वय तेरह वर्ष का था, और बालक नानक अभी 'पांधा' गोपाल की शाला में पढ़ता था। तलवंडी ग्राम सुलतानपुर के लोधी राज्यपाल नवाब दौलतखाँ के आधिपत्य-क्षेत्र में था। दौलतखाँ तलवंडी के भट्टियों से वार्षिक राजस्व संग्रह करने के लिए किसी राजपुरुष को भेजा करता था। एक बार उसने जैराम नामक एक क्षत्रिय युवक को भेजा। जैराम राजपुरुष तो था ही, शिष्ट गुण सम्पन्न भी था। इस हेतु तलवंडी के भट्टी सरदार राय बुलार ने उसका असाधारण आदर तथा अतिथि-सत्कार किया। उन दोनों का पारस्परिक प्रेम-भाव और विश्वास इतना बढ़ गया कि एक दिन जैराम ने बुलार से कहा कि मैं तलवंडी के किसी क्षत्रिय-कुल में विवाह का इच्छुक हूँ। राय बुलार ने सोचा जैराम जैसे गुणवान् तथा बुद्धिमान् युवक के लिए कालू के घर से अच्छा और कौन घर हो सकता है। उसने तत्काल कालू के समीप सन्देश भेजा, तथा जैराम के गुणों की प्रशंसा करके इस सम्बन्ध पर बल दिया। बुलार ने कहा कि मेरे लिए नानकी मेरी अपनी कन्या के समान है, अतः यदि मैं इस सम्बन्ध को उचित न समझता तो यह सुझाव ही न देता। कालू ने जैराम तथा उसके परिवार के विषय में जो कुछ सुन रखा था उसके कारण यह सम्बन्ध उसकी रुचि के अनुकूल था। अपनी धर्मपत्नी एवं भाई से परामर्श करने के हेतु वह तत्काल घर गया। आशा के अनुसार तत्क्षण दोनों सहमत हो गए। अब वह मिठाई तथा कुछ रुपए लेकर जैराम के समीप पहुँचा और सम्बन्ध पक्का कर दिया गया। अगले वर्ष जैराम की बारात तलवंडी आई तथा कालू के घर जैराम के साथ नानकी का विवाह यथाविधि हो गया। राय बुलार ने, तथा कालू-परिवार के सुहृद सम्बन्धी हिन्दू-मुसलमानों ने, वर एवं वधू दोनों को उपहार दिए।

यह अवसर नानक के लिए परम मर्मस्पर्शी था। उसकी बहिन उसके मन की बात को जितना समझती थी तथा उसे जितना प्यार करती थी उतना और कोई नहीं। वास्तव में नानक की प्रतिभा को सब से पूर्व अनुभव करने वाली वही थी। उसे नानक की प्रतिभा से परम हर्ष हुआ, तथा उसने इसको हृदय की वस्तु बना लिया। उस समय की प्रथा के अनुसार, विवाह के पश्चात् नानकी अपने पिता के घर आकर बहुत दिन रह जाती। परन्तु बहिन के विवाह के पश्चात् वह घर नानक के लिए घर नहीं था। यद्यपि बड़ा

बहिनोई होने कारण सत्करणीय एवं सम्माननीय जैराम था, तथापि जैराम स्वयं नानक का बड़ा आदर करता था। उधर जैराम के प्रति नानक का सामाजिक प्रथा के अनुसार आदरभाव वस्तुतः हृदयस्पर्शी था।

शूद्रों से भेद सूचित करने के लिए सवर्ण हिन्दू यज्ञोपवीत धारण करते हैं। जब नानक ग्यारह वर्ष का हुआ तब उसका यज्ञोपवीत संस्कार अवश्य हो जाना चाहिए था। कालू ने इस संस्कार को समारोहपूर्वक सम्पन्न करने का प्रबन्ध किया। अनेक सम्बन्धी एवं मित्र निमन्त्रित किए गए। पुरोहित के बैठने के लिए एक चबूतरा बनाया, और गोबर से लीपा, गया। कुल पुरोहित पण्डित हरदयाल आकर उस पर बैठ गया। उसने दीपक जलाए, धूप जलाई, अपने सामने भूमि पर आटे से देव-मूर्तियाँ बनाईं और अपने साथ लाए हुए यज्ञोपवीत को हाथ में लेकर मन्त्रों का उच्चारण किया। प्रारम्भिक रीतियाँ पूर्ण करके वह अपने सम्मुख बैठे बालक नानक को यज्ञोपवीत धारण कराने के लिए आगे झुका। परन्तु बालक नानक ने यह प्रश्न करके कि आप इस धागे का क्या करने लगे हैं ? उसे वहीं रोक दिया।

पण्डित ने उत्तर दिया यह यज्ञोपवीत जो द्विजों का चिह्न है मैं तुम्हें धारण कराने लगा हूँ।

SIKHBOOKCLUB.COM

नानक ने कहा—'आप इस प्रकार के चिह्नों से मानव को मानव से पृथक् कैसे कर सकते हैं! मनुष्यों के भेदक तो उनके कार्य होने चाहिएँ। मैं इस प्रकार का कोई चिह्न नहीं धारण करूँगा। यह धागा तो मैला हो जाएगा और टूट जाएगा।'

पण्डित हरदयाल ने ऐसे विलक्षण शब्द इससे पूर्व कभी नहीं सुने थे, और जिस बालक के विषय में उसने एक बड़ी सुन्दर भविष्यदवाणी की थी, उसके मुख से ऐसे शब्द सुनने की आशा तो उसे हो ही नहीं सकती थी। उसने बालक को बहुत समझाया और कहा कि तुम क्षत्रिय हो, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए हो, अतः अपने पूर्वजों के समान तुम्हें यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। परन्तु बालक नानक को यज्ञोपवीत-धारण का कोई लाभ दिखाई नहीं दिया, और उसने उसका धारण करना स्वीकार नहीं किया। उसने उसी क्षण सहसा स्फुरित यह पवित्र गीत बोलकर पण्डित हरदयाल को सुनाया :—

"दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वट्टु ॥
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ॥
ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ ॥

धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ॥"[1]

पण्डित आसन से नीचे उतर गया, और संस्कार की क्रिया वहीं समाप्त समझी गई। प्रत्येक व्यक्ति मनः-स्तम्भ की अवस्था में था ; क्योंकि यह अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व घटना थी। बालक नानक के विषय में तो प्रसिद्ध था कि वह एकान्तप्रिय और मधुरभाषी है। कोई इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि नानक में धर्म-विहित तथा परम्परानुमोदित पुरातन प्रथा का तिरस्कार करने का ऐसा मनोबल हो सकता है। तत्पश्चात् कई दिन तक ग्राम में कालू के घर हुई इसी घटना की चर्चा बहुशः होती रही। कई लोगों के विचार से बालक नानक ने अपने कुल की प्रतिष्ठा नष्ट कर दी थी।

---

१ गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा रागु, पृष्ठ ४७१।

—दया को कपास, सन्तोष को सूत्र, संयम को ग्रन्थि, सत्य को वेष्टन [बनाओ]। जीव के लिए यह यज्ञोपवीत, पण्डित जी! है तो [मेरे कण्ठ में] डालिए, न यह टूटता है, न इसे मल लगता है, न यह जलता है [और] न यह [कहीं] जाएगा (नष्ट होगा)। नानक! जो मनुष्य [ऐसे यज्ञोपवीत को] कण्ठ में डाल कर चलता है (रहता है) वह धन्य है!

SIKHBOOKCLUB.COM

५

बाल्यकाल का व्यवसाय

नानक के पिता के हृदय की आकुलता अनुदिन उग्र होती गई। उसका विचार था, और वह जानता था कि और लोगों का भी यही विचार है, कि 'मनुष्य के जीवन का मार्ग पूर्व से ही सुनिश्चित है। सुख-दुःख तो मनुष्य के कर्मों का, प्राचीन शास्त्रों तथा रीति-प्रथाओं के अनुसार जीवन की विभिन्न अवस्थाओं एवं घटनाओं में पालनीय कर्तव्यों का, और मनुष्य जिस कुल में जन्म ग्रहण करता है उसके अनुरूप व्यवसाय का फल है। नानक द्वितीय द्विजों—क्षत्रियों—के एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ है जिसका एक परम्परा-सिद्ध पैतृक व्यवसाय है। यदि वह अधिक विरोध न करे तो उसके लिए तो प्रत्येक वस्तु पूर्व से ही निश्चित है।' प्रयेक सुव्यव्यस्थित कार्य के प्रति बालक नानक की अनिच्छा ने पिता को पुत्र के भविष्यत् के विषय में चिन्तातुर कर दिया। जनमसाखियों के अनुसार पिता और पुत्र में लम्बे-लम्बे वार्तालाप होते रहे, और पुत्र उन वार्तालापों के मध्य इंन्द्रियागोचर ईश्वर में अपने विश्वास को अत्यन्त पूत एवं उदात्त कविता के द्वारा अभिव्यक्त करता रहा। जिस व्यवसाय को वह सब व्यवसायों से अधिक मूल्यवान् समझता था उसे उसने सरल सुबोध उपमाओं एवं रूपकों की सहायता से पिता के सम्मुख प्रकट किया। उसने सहसा कई 'शबदों' की रचना की। उनमें से एक है :—

"मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु।
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु॥
भाउ करम करि जंमसी × ×

× × ×

हाणु हटु करि आरजा सचु नामु करि वथु॥

सुणि सासत सउदागरी सतु घोड़े लै चलु ॥
खरचु बंनु चंगिआईआ मतु मन जाणहि कलु ॥"[1]

उपलभ्यमान सब साक्ष्य इस तथ्य के समर्थक हैं कि पिता के आदेश से नानक घर के पशुओं को चराने के लिए बाहर ले जाया करता था। उन मूक संगियों एवं अपने चतुर्दिक् विस्तीर्ण धरावकाश में वह प्राय: कल्पनाओं में निमग्न तथा ईश्वर-भजन में आत्म-विस्मृत हो जाता था। प्रकृति तथा अपने प्रत्यगात्मा के साथ निष्प्रत्यूह प्रत्यासत्ति के ये क्षण उसके प्रारम्भिक जीवन-वर्षों में बड़े अर्थवान् थे। तलवंडी के तीर पर, समीप ही, जंगल में, साधुओं की प्रिय एक कुटी थी। एकान्त प्रिय सन्त-महात्मा दूर-दूर से आकर उसमें विश्राम किया करते थे। पशुचारक नानक कभी-कभी उनके पास चला जाता, और उनके गुह्य धर्म-सिद्धान्तों की हृदयोल्लासक व्याख्याओं को सावधान मन से सुनता। इस प्रकार उसे अनेक विभिन्न सम्प्रदायों तथा मतों के मन्तव्यों एवं आचारों का ज्ञान हो गया। ऐतिहासिक अनुसन्धानों के अनुसार नानक बाल्यकाल में एक मुसलमान विद्वान् और दरवेश सय्यद हसन से मिला करता था, उसी से उसने सूफ़ी मत का ज्ञान प्राप्त किया था।[2]

तलवंडी में पशुचारक नानक के अद्भुत कार्यों की कई कथाएँ प्रचलित हो गईं। इनमें से दो, साधारण विवरण-भेद के साथ, सब जनमसाखियों में वर्णित हैं।

एक दिन अपनी भैंसें चराता हुआ नानक जब उनके समीप भूमि पर बैठा था ध्यान में मग्न हो गया। उसकी भैंसें पड़ौसी के गेहूँ के एक खेत में घुस गईं और उसे चर गईं। दैवयोग से उसी समय खेत का स्वामी वहाँ आ गया। उसने अपने खेत को नष्ट हुआ देखा तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह खेत के जिस किनारे पर खड़ा था वहीं से चिल्लाकर कहने लगा—किसके पशुओं ने मेरा सारा खेत चर डाला है? खेत को नष्ट हुआ देखा तो नानक का हृदय

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, सोरठि रागु, पृष्ठ ५९५।
—तात्पर्य यह कि शरीर को क्षेत्र, मन को हालिक, धर्म के साथ किए परिश्रम को क्षेत्र-सेचक जल, भगवन्नाम को बीज, सन्तोष को मैंड़ा (पंजाबी, सुहागा), नम्रता को वृति और भगवत्प्रेम को कर्म बना लो। इस प्रकार बीज बहुत अंकुरित होगा।.........इस प्रकार दुर्बल शरीर को दूकान, भगवान् के सत्य नाम को पण्य बना लो। जो सत्य के घोड़े पालता है और व्यापार-यात्रा में गुणों का पाथेय साथ ले जाता है वही घोड़ों के व्यापार में लाभ प्राप्त करता है।

२. गुलाम हुसैनखाँ लिखित फ़ारसी ग्रन्थ, सियार्-उल्-मुतख़रीन्, में कहा गया है कि तलवंडी में गुरु नानक के शिक्षकों में अन्यतम सय्यद हसन भी था।

दया से भर गया। उसने खेत के स्वामी भट्टी का क्रोध शान्त करने का यत्न किया, और कहा कि परमात्मा तेरे खेत को धान्यपूर्ण करेगा। परन्तु खेत के स्वामी का मन शान्त न हुआ। उसने नानक पर दोषारोपण करते हुए कहा कि तूने मेरी फ़सल नष्ट करवा दी है। उसने फिर आग्रह-पूर्वक कहा कि तू राय बुलार के पास चल, वही न्याय करेगा। बुलार के समीप पहुँचकर भट्टी ने अनाश्वसनीय स्वर में कहा—'ख़ाँ साहिब'! मैं नष्ट हो गया। मेरी फ़सल नष्ट कर दी गई है। मैं तो लुट गया। न्याय कीजिए। यदि आप नहीं करेंगे तो मैं तुर्कों के पास जाऊँगा।'

इस प्रकार नानक पर दोषारोण होते देखकर राय बुलार को दुःख हुआ। उसने नानक के पिता कालू को बुला भेजा। उसने जो कुछ सुना था कालू को सुनाकर कहा कि यदि जिसके खेत का नाश हुआ है उसकी क्षति-पूर्ति कर दी जाएतो मैं क्षमा कर दूंगा। इसके पश्चात् खेत की हानि का अनुमान लगाने के लिए पदाति सेवक भेजे गए। उन्होंने लौटकर कहा कि हमने तो फ़सल को नष्ट हुआ देखा नहीं। एक पत्ती तक की हानि नहीं हुई और 'ऐसा प्रतीत होता था कि खेत कह रहा था कि यदि हानि हुई है तो यहाँ नहीं अन्यंत्र हुई है।'[1] सब को आश्चर्य हुआ, और सबसे अधिक आश्चर्य शिकायत करने वाले पुरुष को हुआ। उसने नम्रता से रायबुलार से कहा कि मैं झूठ नहीं बोलता हूँ, मैंने खेत को नष्ट हुआ, और खेत चर कर खेत के बीच बैठी भैंसों को, अपनी आँखों से देखा है। फिर उसने कहा मुझे पता नहीं उसके पश्चात् परमात्मा ने क्या अद्भुत कार्य कर दिया है।

ननकाना साहिब में उस खेत में एक गुरद्वारा बना हुआ है। इसका नाम है किआरा साहिब (पवित्र खेत)।

एक अन्य अवसर पर पशुओं को चराते हुए नानक ग्रीष्म के अपराह्ण में विश्राम करने के लिए एक वृक्ष के नीचे लेट गया। थोड़ी देर में उसे नींद आ गई। यह वह समय था जब भूमि-कर निश्चित करने के प्रयोजन से खेत में खड़ी, कटने के लिए तैयार, पकी फ़सल के मूल्य का अनुमान लगाया जाता था। खेतों की माप करके राय बुलार, सेवकों के साथ, घर लौट रहा था। जब वह वहाँ पहुँचा जहाँ पशुचारक नानक सो रहा था तब उसने अपना घोड़ा रोक लिया। उसे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। उसने देखा कि सूर्य की गति के साथ अन्य वृक्षों की छाया ने तो स्थान-परिवर्तन कर लिया है, किन्तु जिस वृक्ष के समीप उस का घोड़ा खड़ा था उस की छाया ने स्थान-परिवर्तन नहीं

---

१. 'जेहा तेरा खेतु जंमिआ है एहा सभना दा जंमउ।'

—मेहरबान जनमसाखी, पृष्ठ २३।

किया है। उसने अपने सेवकों से कहा—देखो, वह वृक्ष के नीचे कौन सो रहा है ? उन्होंने देखकर बतलाया कि वह कालू बेदी का पुत्र नानक है। इतना कह कर उन्होंने नानक को जगा दिया। नानक ने उठकर, हाथ जोड़कर, राय बुलार को नमस्कार किया। राय बुलार ने घोड़े से उतरकर नानक को छाती से लगाया और माथा चूमकर प्यार किया। इसके पश्चात् उसने साथियों से कहा—नानक रिक्त नहीं है। उस पर भगवान् की कृपा है। आज हमने एक अद्भुत दृश्य देखा है। परमात्मा के आश्चर्यों को देखो! इस वृक्ष की छाया परमात्मा के कृपा-पात्र के लिए स्थिर रही है। नानक साधारण मानव नहीं है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर का धन्यवाद है।'[1] राय बुलार घोड़े पर नहीं चढ़ा, वहाँ से पैदल ही घर गया। उसने नानक के पिता कालू को बुलाकर कहा—'तुम्हारा पुत्र एक महान् पुरुष है। वह मेरे ग्राम की आदर-प्रतिष्ठा का हेतु है। तू भी धन्य है और मैं भी धन्य हूँ कि हमारे ग्राम में ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ।'[2] कालू ने कहा—परमात्मा की बातें परमात्मा ही जाने।'[3]

एक पुराना 'वन' वृक्ष, जिसमें अनेक गाँठें उभर रही हैं, ननकाना साहिब में एक अन्य गुरद्वारे की सीमा के अन्दर सुरक्षित है। कहा जाता है यही वह वृक्ष है जिसकी छाया स्थिर रही थी, और नानक धूप से बचा रहा था।[4]

SIKHBOOKCLUB.COM

अब नानक सोलह वर्ष का हो गया था, और उसका अधिक समय घर से बाहर अपने पशु चराने में, उस मार्ग से आते-जाते साधु-सन्तों के साथ रहने में एवं एकान्त होने पर अन्तरात्मा से मन का संयोग करने में व्यतीत होता था। अब घर के लोगों ने नानक की प्रवृत्तियों का विरोध करना छोड़ दिया था; केवल उसके पिता का यह विचार था कि नानक के लिए हित का मार्ग यही है कि वह मेरे व्यवसाय को ग्रहण कर ले। तलवंडी के लोग उसे असाधारण बालक समझते, और नानक का सबसे महान् प्रशंसक स्वयं राय बुलार था।

इसके पश्चात् नानक के मन की दशा में अकस्मात् परिवर्तन हो गया। वह मौनी, तथा पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक स्व-विचार-मग्न, हो गया। अब

१. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ ६।

२. वही, पृष्ठ ६।

३. वही, पृष्ठ ६।

४. इसी कथा के तुल्य लोकप्रचलित अन्य कथा यह है कि एक महा विषधर ने नानक को धूप से बचाने के लिए अपना फण उठाकर छाया कर रखी थी। इस कथा में भी उस दृश्य का साक्षी राय बुलार ही है। यह कथा 'बालाजनमसाखी' में है, 'पुरातन' तथा 'मेहरबान' जनमसाखियों में नहीं।

वह घर से बाहर जाना नहीं चाहता था, कम खाता और कम पीता था, समस्त समय शय्या पर लेटा रहता था। निरन्तर चार-पाँच दिन तक उसकी यही अवस्था रही। माता-पिता दुःखित थे, और प्रातिवेशिकों ने प्रसिद्ध कर दिया कि नानक को कुछ हो गया है। माता तृप्ता वात्सल्य के कारण सदा सोचा करती थी कि मेरा पुत्र जो कुछ करता है उसका कोई न कोई प्रयोजन होता है। वह न कभी सन्देह करती, न प्रश्न। वह भी सोचने लगी कि मेरे पुत्र की यह अवस्था क्यों है? प्रातिवेशिकों की आलोचना उसे पीडित करती। उसने एक दिन विरक्तों की एक टोली अपने घर के समीप से जाती देखी तो उसके हृदय में सुई सी चुभी। वह जाकर नानक से कहने लगी :—'पुत्र! मैंने अभी कुछ महात्मा जाते देखे हैं। कदाचित् वे किसी दूर तीर्थ की यात्रा को जारहे हैं। उन्हें देखकर मेरा हृदय काँपता है, कहीं ऐसा न हो कि एक दिन मेरा नानक भी इसी प्रकार यात्रा को घर से निकल जाए। वे अपनी माताओं को घर छोड़ आये हैं, इसी प्रकार नानक भी अपनी माता को अकेली छोड़ कर चला जाएगा।'[1]

इस अवसर पर नानक ने एक गीत सुनाया। उस गीत में कहा गया था कि नानक को ऐसी यात्राएँ करने की आवश्यकता नहीं है। उसने तो अपने मन को मन्दिर बना लिया है, वही उसका तीर्थ-स्थान है।

माता चाहती थी कि मेरा पुत्र उठे और कुछ खाए-पिए। उसने नानक से खाने-पीने के लिए कहा और वह बोली—'पुत्र! तू बाहर निकल, इधर उधर घूम फिर, जिससे लोग कहें कि अमुक का पुत्र अब अच्छा हो गया है।'

नानक की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और जैसा 'पुरातन' जनम-साखी में कहा गया है, उसने तीन मास तक कुछ नहीं खाया-पिया। समस्त बेदी जाति चिन्तातुर हो उठी। लोग पिता कालू से कहते—'तुम्हारा पुत्र स्वस्थ नहीं है। तुम शान्त होकर कैसे बैठे हो! उसे किसी वैद्य-हकीम को दिखाओ और औषध दो। कभी-कभी साधारण-सी वस्तु से बड़ी बचत हो जाती है।'[2] जिस किसी ने भी जो कुछ करने का परामर्श दिया कालू तथा उसके बन्धु लालू ने वही करने का पूर्ण प्रयत्न किया। जिनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि ये भूत-प्रेत निकाल देते हैं वे मुसलमान मुल्ला भी बुलाए गए।

---

१. 'बेटा! इकि कलंदर जेहे आए हैनि, तीरथा नो जांदे हैनि। मैं आखिआ जि अजु कलि नानक भी मैंनो छडि जाइगा, एना वांगि तीरथी। बेटा! मेरा बैरागु रहै नाही, मैं कहिआ जि एवैं एनी माँवाँ छडीआं हैनि तिउ अजु कलि नानकु भी एवैं जागु।' —मेहरबान जनमसाखी, पृष्ठ ६१।

२. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ १२-१३।

उन्होंने अनेक मन्त्र पढ़े, तथा तावीज लिखकर दिए। परन्तु नानक ने पूछा—'जो लोग बेचने के लिए परमात्मा का नाम काग़ज के टुकड़े पर लिखते हैं वे दूसरों की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं?' कालू हरदास वैद्य को बुला कर लाया। उसने नानक की कलाई पकड़ी और रोग के निदान का निश्चय करने के लिए नाड़ी देखने लगा। यह कहकर कि यह शरीर का रोग नहीं है नानक निम्नलिखित 'शबद' गाने लगा —

"वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह ॥
भोला वैद न जाणई करक कलेजे माहि ॥"[1]

वृद्ध वैद्य हरदास नानक के मन का भाव समझ गया। उसने कालू से कहा कि तुम्हारे पुत्र को चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं रोगों से मुक्त है, और 'सम्भव है वह औरों का भी चिकित्सक बन जाए।'[2]

शनैः-शनैः नानक की अवस्था में परिवर्तन होता गया और वह पुनः यथावत् प्रकृतिस्थ हो गया। उसे चारपाई से उठ कर काम पर जाता हुआ देखकर माता-पिता का हृदय गद्‌गद् हो गया। नानक के मन को और अधिक लौकिक कार्यों में संलग्न रखने के लिए, तथा उसके लिए स्थायी व्यवसाय की व्यवस्था के लिए, एक दिन कालू ने गिनकर उसे बीस रुपए दिए, और कहा-'चूहड़काना[3] जाओ और इन रुपयों से कोई लाभदायक व्यापार करो।' नानक को अकेला भेजना उचित न समझकर उसके पिता ने बाला[4] नामक एक सन्धू जाट को उसके साथ भेजा। कुछ दूर तक कालू स्वयं भी पुत्र के साथ गया, और बार-बार समझाता गया कि कोई वास्तव में अच्छा व्यापार करना। पुत्र को आशीर्वाद देकर घर लौटते हुए 'वह बार-बार गर्दन घुमाकर प्रेम से पुत्र के मार्ग की ओर देख लेता था;' कारण, ग्राम से बाहर जाने का, नानक का, यह प्रथम अवसर था।

तलवंडी से चूहड़काना को जाने वाले मार्ग में एक जंगल था। नानक ने वहाँ बहुत से कौपीनमात्रधारी साधुओं को नाना-प्रकार से तपस्या करते देखा। उनमें से कई दोनों बाहु खड़े करके बैठे थे; कई खड़े थे; कई अपने सम्मुख अग्नि प्रज्वलित करके बैठे थे; कई जल में बैठे और खड़े थे। कई धार्मिक ग्रन्थों का पाठ कर रहे थे, और कई सर्वथा मौनावलम्बी थे। उनसे वार्तालाप

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, वार मलार, पृष्ठ १२७९।
२. 'पुरातन जनमसाखी,' पृष्ठ १४।
३. तलवंडी के समीप एक नगर।
४. यही बाला जाट 'बाला जनमसाखी' का रचयिता माना जाता है।

SIKHBOOKCLUB.COM

करने के लिए नानक वहाँ रुक गया। उन साधुओं का प्रधान, 'महन्त', उनसे कुछ दूर, मृगचर्म पर पद्मासन से बैठा था। उसके समीप जाकर नानक ने पूछा "महात्मा जी! आप वस्त्र क्यों नहीं धारण करते? क्या आपके पास वस्त्र नहीं हैं? अथवा वे आप को अच्छे नहीं लगते?" नानक को इस प्रकार उस दिन के वास्तविक कार्य का विस्मरण करते देख कर बाला के मन में क्षोभ हुआ। उसने नानक को उस दिन की अपनी यात्रा के प्रयोजन का स्मरण कराया और कहा कि अभी तो हमें पर्याप्त मार्ग चलना है। परन्तु नानक महन्त के उत्तर की, शान्ति से, प्रतीक्षा करता रहा। महन्त ने कहा—"हम 'निर्बाणी' हैं। वस्त्रों का न धारण करना ही हमारे लिए उचित है......बच्चे! हम तभी खाते हैं जब परमात्मा भेजता है।"[१]

नानक को ज्ञात हुआ कि साधुओं को कई दिन से भोजन नहीं मिला है। इससे उसके मन को आघात पहुँचा। उसने सोचा पिता के दिए रुपयों से मैं इससे उत्तम व्यापार अन्यत्र कहाँ कर सकता हूँ। वह चूहड़काना चला गया और वहाँ बाला के रोकने पर भी उसने उन सब रुपयों से जंगल में भूखे बैठे उन साधुओं के लिए भोजन-सामग्री मोल ले ली। गेहूँ का आटा, खाँड और घी लेकर वह झपटता हुआ साधुओं के स्थान पर आ पहुँचा।

जंगल से बाहर निकलकर नानक ने बाला से कहा-बताओ हमने क्या किया है? बाला ने तत्क्षण उत्तर दिया—"तुमने जो कुछ किया है उसके लिए उत्तरदायी केवल तुम्हीं हो; मेरे 'न, न' कहते रहने पर भी तुमने सब रुपए यूं ही नष्ट कर दिए। तुम्हारा पिता कुपित हुआ तो तुम्हें कहना चाहिए कि यह समस्त अपराध मेरा है।" सायंकाल नानक घर नहीं गया, ग्राम से बाहर ही रुक गया।

नानक ने जो कुछ किया था उसे सुनकर कालू कुपित हुआ, और वह बाला को साथ लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ नानक रुक गया था। उसने कठोरतम शब्दों में नानक की भर्त्सना की, और यदि दौड़कर पीछे आती हुई नानकी भाई का पक्ष ले कर पिता को न समझाती तो वह कोई और भी भीषण कार्य कर डालता। नानक के विषय में राय बुलार को भी उतनी ही चिन्ता रहती थी जितनी नानकी को। उसने समस्त वृत्तान्त सुना तो कालू को बुला भेजा। उसने कालू से प्रार्थना की कि नानक के साथ धैर्य और शान्ति से पूर्ण व्यवहार करो तथा उसमें जो विलक्षण गुण है उसे पहिचानने का प्रयत्न करो। राय

---

१. 'बालाजनमसाखी,' पृष्ठ ३३।

बुलार ने यह भी कहा कि मैं नानक द्वारा की गई समस्त क्षति की पूर्ति करने, तथा उसके ऊपर किए जानेवाले समग्र व्यय का भार भी उठाने, को उद्यत हूँ। उसने कहा—'नानक मेरे घर में रहेगा।' परन्तु खेद है वह रख नहीं सका।"[1]

SIKHBOOKCLUB.COM

---

१. 'बालाजनमसाखी', पृष्ठ ३६-३७। सूच्य अर्थ यह है कि राय बुलार की उदारता कालू को इस हेतु स्वीकार्य नहीं थी कि कालू सवर्ण हिन्दू था, और राय बुलार मुसलमान। परन्तु नानक तो रूढ़ि का विरोधी था। वह यज्ञोपवीत धारण करना अस्वीकृत कर चुका था। उसे जाति-प्रभृति का प्रतिबन्ध भी स्वीकार्य नहीं था, जो राय बुलार के मन में रहा होगा।

६

न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान

नानक को तलवंडी में अधिक काल तक नहीं ठहरना पड़ा। पिता एवं पुत्र दोनों के नाम पत्र लेकर सुलतानपुर से पत्रवाहक आ गया। जैराम ने नानक को मिलने के लिए आने को लिखा था, और कालू से प्रार्थना की थी कि उसे (नानक को) यात्रा करने की अनुमति दे दी जाए। विवाहित कन्या के पितृ-कुल के व्यक्तियों के लिए कन्या के घर जाकर ठहरना पुरातन प्रथा के प्रतिकूल था—प्राचीन परिपाटी के परिवार इस प्रथा का पालन आज तक करते हैं। विवाहित कन्या के माता-पिता इत्यादि को उससे मिलना होता है तो वह पितृ-कुल में बुला ली जाती है, और विदा के समय उसे यथाशक्ति उपहार भी दिए जाते हैं। परन्तु वे लोग कन्या के घर जाकर वहाँ का अन्न-जलादि ग्रहण करना उचित नहीं समझते हैं। कन्या का अनुज बन्धु कभी-कभी उसके घर जा सकता है। नानक वय में नानकी से छोटा था। वह अपने जीजा के पत्र के स्निग्ध स्वर से इतना प्रभावित हुआ कि उसने जीजा से मिलने सुलतानपुर जाने का निश्चय कर लिया।

पिता पुत्र के प्रस्ताव के प्रतिकूल नहीं हुआ। वस्तुतः उसने सोचा स्थान परिवर्तन नानक के लिए हितकारक हो सकता है। उसने राय बुलार के साथ परामर्श किया। यद्यपि नानक अल्पकाल के लिए जाना चाहता था, और राय बुलार को उसका उतना वियोग भी सह्य नहीं था, तथापि उसने 'क्या हानि है?' कह दिया। माता तृप्ता को पुत्र का वियोग सर्वथा असह्य रहा। पीड़ा से अस्थिर मन के साथ उसने पुत्र की यात्रा के लिए अपेक्षित समस्त वस्तुएँ एकत्र कीं। नानक के साथ बाला भी भेजा जा रहा था। अतः माता तृप्ता ने विशेषतः मीठी रोटियाँ बनाईं, जो नानक एवं बाला दोनों के लिए, यात्रा के समस्त दिनों तक, खाने योग्य रहें। नानक के प्रस्थान से पूर्व एक प्रीति-भोज हुआ। उसके लिए अन्नादि-सामग्री राय बुलार ने उपहृत की। कालू

लालू, नानक के समग्र सखा-सहचर, जिनके साथ वह खेला करता था और जो उसके विचारों एवं उल्लास के सहभागी थे, प्रस्थान के समय घरों से बाहर आए। सब में विनम्रतम तथा प्रियतम मर्दाना[1], एक मुसलमान व्यवसायिक गायक तथा ढक्का-वादक डूम, था। जब नानक 'अकाल' पुरुष की स्तुति के गीत गाया करता था तब वह, साथ में, वादक का कार्य किया करता था। विदा की प्रस्तुति नानक की रुचि से अधिक श्रम-साधित थी, और विदा का दृश्य अति-हृदयद्रावक हो गया—अब जब अतीत की दिशा में दृष्टिपात करके देखते हैं तो वह अधिक हृदयद्रावक प्रतीत होता है; कारण, इसके पश्चात् गुरु जी केवल एक बार अल्पकाल के लिए अपनी जन्मभूमि तलवंडी जा सके, अधिक नहीं।

तलवंडी से उत्तर-पूर्व दिशा में चलते हुए नानक ने रावी नदी पार की। रावी पार करके वह लाहौर के लाल ईंटों के विशाल द्वार के सम्मुख पहुँचा होगा, और अपने सहचर बाले के साथ लाहौर के बाजारों तथा मुहल्लों में से निकला होगा, परन्तु उस समय किसी ने उस की ओर ध्यान नहीं दिया होगा। वह वहाँ से और पूर्व दिशा में चलकर गोइन्दवाल पहुँचा, जहाँ व्यास पर नावों का पुल होता था। व्यास को पार करके वह सतलुज और व्यास नदी के मध्य, जालन्धर दोआब में पहुँच गया। अब वह लोधी सत्रप, नवाब दौलत खाँ के निवास-नगर, सुलतानपुर के अत्यन्त समीप था। दौलत खाँ दिल्ली के सुल्तान के बन्धु-बान्धवों में अन्यतम था। वह एक शक्तिशाली प्रशासनाधिकारी था, तथा उसने मुग़ल-आक्रमणों के प्रारम्भ में, भारतीय इतिहास में, अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण कार्य किए थे। उसने एक प्राचीन बौद्ध नगर के ध्वंसावशेषों की भूमि में सुलतानपुर नाम से एक नवीन नगर का निर्माण, तथा विपुल सम्पत्ति व्यय करके उसे उद्यानों, मण्डपों एवं भव्य राज भवनों से अलंकृत, करवाया। वह विद्वानों का आदर-सम्मान करता था; अतः अनेक मुसलमान विद्वान् एवं धर्म

---

१. देश-विदेश की विशाल यात्राओं में मर्दाना गुरु जी का सहयात्री रहा। परन्तु गुरु जी की बहुसंख्यक जीवनियों में मर्दाने का नाम तब आता है जब गुरु जी तलवंडी से सुलतानपुर के लिए प्रस्थित हो चुके थे। यह असम्भव प्रतीत होता है कि मर्दाना तलवंडी में गुरु जी का अपरिचित रहा हो। कम से कम प्रामाणिक ग्रन्थ, रतन सिंह भंगु लिखित प्राचीन पन्थ प्रकाश (पृष्ठ ६) से इस धारणा की पुष्टि होती है कि बाल्यावस्था में नानक ने नल नामक शरकाण्ड काटकर उससे तारवाला एक वाद्य-यन्त्र बनाया और मर्दाने को दे दिया। उनके आदेश के अनुसार वह उनके ईश्वरस्तुति के गीत गाने के समय उसे बजाया करता था। 'मेहरबान जनमसाखी' (पृष्ठ ७३) के अनुसार मर्दाना गुरु जी के साथ तलवंडी से सुलतानपुर आया। इस जनमसाखी में मर्दाना गुरुजी का बाल्य-काल से साथ रहने वाला सहचर, तथा गुरु जी के सम्मुख कबीर, त्रिलोचन रविदास, धन्ना एवं बेणी की वाणियों में से गीतों का गाने वाला कहा गया है।

शास्त्री उसके शासन-काल में, सुलतानपुर में आकर रहने लगे थे। उन्होंने जो विद्यालय स्थापित किए वे कुछ काल व्यतीत होने पर इतने प्रसिद्ध हुए कि कई मुग़ल राज-कुमार, जिनमें दाराशिकोह और औरंगज़ेब भी हैं, अध्ययनार्थ सुलतानपुर भेजे गए।

तलवंडी से चलकर प्राय: सौ मील की यात्रा पाँच दिन में समाप्त करके नानक सुलतानपुर पहुँचा। बहिन नानकी कई दिन से उत्सुकता पूर्वक उसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। गृहस्थ के कार्य करने के समय भी उसकी दृष्टि सतत द्वार से लगी रहती थी। अब जब उसका स्वप्न पूर्ण हुआ, और उसने अपने भाई को द्वार के अन्दर पैर रखते देखा तो वह हर्ष से आत्म-विस्मृत हो गई। वह उसके चरणों का स्पर्श करने झपटी, जो यात्रा के कारण धूलि से धूसर थे, परन्तु नानक ने यह कहकर उसे रोक दिया कि मैं अनुज हूँ; अत: मेरा कर्त्तव्य है कि मैं तुमको प्रणाम करूँ। बालाजनमसाखी के अनुसार नानकी ने उत्तर दिया, 'यदि तुम पार्थिव प्राणी होते तो यह सत्य होता।'[१] वह नानक और बाला के लिए एक खाट ले आई, और उनसे यात्रा के, तथा तलवंडी के विषय में प्रश्न करने लगी। इसी अन्तर में जैराम घर आ गया, और अत्यन्त स्नेहपूर्ण शिष्टाचार का विनिमय हुआ। नानकी ने भोजन प्रस्तुत किया, और घर-जैसे विश्राम तथा शान्ति के वातावरण में, नानक ने भोजन किया और नानकी को धन्यवाद दिया।

SIKHBOOKCLUB.COM

जैराम नवाब दौलत खाँ लोधी के अधीन एक ऐसे पद पर आरूढ़ था, जो केवल विश्वासपात्रों को ही दिया जाता है। एक दिन जैराम ने नानक के सम्मुख यह विचार प्रकट किया कि मैं चाहता हूँ कि तुमको नवाब के सम्मुख ले चलकर उसे तुम्हारा परिचय दे दूं, और तुम्हें उसके अधीन किसी कर्मचारी का पद दिलवाने का यत्न करूँ। नानक अपनी बहिन के घर निष्कार्य रहना नहीं चाहता था, अत: उसने अपने जीजा का प्रस्ताव तत्क्षण स्वीकार कर लिया। नानक जैराम के साथ नवाब की सभा में पहुँचा तो नवाब उसकी सौम्य मूर्त्ति देख कर स्तब्ध रह गया। उसने तत्क्षण नानक को अपने अन्नागार और भाण्डागार का अध्यक्ष बना दिया। नवाब से मिलने के फल को देखकर जैराम बड़ा प्रसन्न हुआ, और उसने सोचा कि नानक को नवाब द्वारा ऐसे ऊँचे पद का देना इस तथ्य का सूचक है कि नवाब मुझे पूर्ण विश्वास-पात्र मानता है।

गृहस्थ का त्याग नानक के जीवन का उद्देश्य कभी नहीं था; तथापि किसी भी परम्परीण व्यवसाय में नानक के मन को न लगता हुआ देखकर समस्त परिवार चिन्तित रहता था। अब नानक को नवाब के सैन्यभोजनादि

---

१. पृष्ठ ४२।

विभाग में अपने पद के कर्तव्यों का एक-निष्ठता से पालन करता हुआ देखकर सब लोग विस्मित हो गए। नानक के लिए यह कोई असाधारण वस्तु नहीं थी; क्योंकि, जैसा उसने स्वयं एक गीत में कहा है 'धर्म का तत्त्व विषयों से अनभिभूत होकर जीवन व्यतीत करने में है।' आदर्श का उदाहरण उपस्थित करने के प्रयोजन से जनमसाखियाँ सुलतानपुर के निवास-काल में गुरु जी के दैनिक कार्य-क्रम का वर्णण करती हैं। नानक सूर्योदय से एक प्रहर पूर्व निद्रा का त्याग कर देता और नगर के उत्तर- पश्चिम में बहने वाली नदी 'बेई' पर चला जाता। नदी के रात्रि-शीतल, शान्त जल में स्नान करके वह भगवान् के नाम का विचार करता हुआ, उस अनन्त की सर्व-व्यापक सत्ता में निमग्न हो जाता। भगवान् के नाम का जप अथवा स्मरण उसका नित्य कर्म था, और अब यह उसके अनुयायियों के लिए भक्ति का एक साधन बन गया है। जिस बेरी के वृक्ष के नीचे नानक बैठा करता था वह अभी तक बेई के तीर पर विद्यमान है—बेई जो अब भी उसी प्रकार स्वच्छता से अपने चिर-क्षुण्ण मार्ग में बहती है जिस प्रकार पाँच सौ वर्ष पूर्व बहती थी।

नानक का दिन 'मोदीख़ाने' (अन्नागार) में व्यतीत होता था। उन दिनों भूमि-कर भूमि की उपज के रूप में दिया जाता था। असैनिक तथा सैनिक कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते का कुछ भाग द्रव्य के रूप में दिया जाता था। यह कार्य अन्नागार में सम्पन्न होता था, और नानक अपने कर्त्तव्य का पालन तत्परता से करता था। जो कोई उसके समीप आता उसके दयालु व्यवहार से प्रसन्न हो जाता। नानक निर्धनों एवं निम्न-स्थिति के लोगों की ओर प्रथम ध्यान देता था; और जब वह कार्य में व्यग्र रहता था तब भी उसका ध्यान परमात्मा की ओर रहता था। एक दिन खाद्यान्न तोलने के समय 'तेरा' ('त्रयोदश' और 'त्वदीय') शब्द ने उस पर ऐसा जादू किया कि वह इसकी आवृत्ति भी करता गया, तोल-तोल कर खाद्यान्न भी देता गया।

नानक ने बाले को तलवंडी वापस नहीं जाने दिया था। अतः वह उसका एक परिचारक रहा। नानक अपनी बहन से पृथक्, किराये पर लिए मकान में, रहता था। वह और बाला दोनों सायंकाल वहीं साधारण भोजन कर लेते थे। रात्रि में देर तक नानक प्रार्थना करता, और ईश्वर-स्तुति के भजन गाता रहता। नानक के बाल्य-मित्र मर्दाने को कालू ने कुशल-समाचार लाने के लिए सुलतानपुर भेजा था। वह वहीं रुक गया और फिर कभी गुरु जी से पृथक् नहीं हुआ। नानक की छोटी, किन्तु निरन्तर बढ़ती हुई, भक्त-मण्डली में वह भी सम्मिलित रहता था।

इस समय नानकी के मन में एक ही प्रबल इच्छा थी, वह यह कि मेरे

भाई का विवाह हो जाए। मूलचन्द चोना[1] नामक एक सज्जन जैराम का परिचित था। उसकी एक कन्या विवाह के योग्य थी। वह पक्खोके नामक ग्राम के रनधावा जाटों की भूमि की देख-भाल किया करता था, और उस ग्राम के समीप बटाला नगर में रहता था। वह सुलतानपुर आ कर नानक को देख गया था, और अपनी स्वीकृति देते हुए उसने जैराम से कहा था कि यदि यह सम्बन्ध हो जाए तो मेरा परिवार इसे अपने लिए मान का कारण समझेगा। अब जैराम को अपने श्वशुर, कालू, की स्वीकृति प्राप्त करनी थी। दैवयोग से उन्हीं दिनों नानक का समाचार जानने के लिए कालू भी सुलतानपुर आ गया। यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि नवाब के अन्नागार के अध्यक्ष-पद पर इतना समय रह कर भी नानक ने कुछ धन संचित नहीं किया। उसे जो वेतन मिलता रहा वह उससे निर्धनों की आवश्यकताएँ निवृत्त करता रहा, अथवा अन्नागार से जो वस्तुएँ अभ्यर्थियों को दे देता था अपने वेतन से उन्हें मोल लेकर अन्नागार में रखता रहा। पुत्र के इस व्यवहार से कुपित होकर कालू उसकी बहुत भर्त्सना करता, परन्तु उसी समय जैराम ने नानक के विवाह का प्रसंग प्रारम्भ कर दिया। उससे वह परम प्रसन्न हुआ, और उसने तत्क्षण उस सम्बन्ध को अपना आशीर्वाद दे दिया।

विवाह के समय नानक का वय उन्नीस वर्ष था।[2] कालू ने निश्चय

SIKHBOOKCLUB.COM

---

१. 'चोना' क्षत्रियों में एक उपजाति है।

२. इस विषय में भिन्न-भिन्न ग्रन्थ भिन्न-भिन्न मत प्रकट करते हैं। 'पुरातन' और मेहरबान जनमसाखी के अनुसार नानक का विवाह उसके तलवंडी निवास के काल में हुआ, परन्तु पूर्वोक्त का कथन है कि विवाह के समय नानक का वय बारह वर्ष था, और उत्तरोक्त के अनुसार पन्द्रह अथवा सोलह। परन्तु मेहरबान जनम साखी का कथन है कि नानक पैंतीस वर्ष से भी अधिक वय तक तलवंडी में रहा। यह वय सामान्यतः स्वीकार वय से सत्रह वर्ष अधिक है, और यदि यह वास्तविक माना जाए तो यह उन कई तथ्यों के विरुद्ध पड़ता है जिनकी सत्यता का निश्चय ऐतिहासिक साक्ष्यों के बल से किया जा सकता है। भाई बाला की जनमसाखी तथा नानक प्रकाश के अनुसार नानक का विवाह उसके तलवंडी-निवास-काल में हुआ। यह कथन उसके जीवन के समस्त रूप के अधिक अनुरूप है। सुलतानपुर में विवाह होने का खण्डन करता हुआ Macauliffe कहता है—यदि बाल्यकाल में नानक का विवाह न हो जाता तो वह विवाह ही न करवाता। परन्तु Macauliffe की युक्ति के विरुद्ध कहा जा सकता है कि यह निर्णय करना सरल नहीं है कि यदि विवाह करना न करना नानक की इच्छा पर छोड़ दिया जाता तो वह ब्रह्मचर्य का मार्ग ग्रहण करता। यदि उसे आजीवन ब्रह्मचारी रहना होता तो, जैसे उसने यज्ञोपवीत के लिए 'न' कह दिया था वैसे ही वह विवाह के लिए भी माता पिता से 'न' कह सकता,

किया कि नानक का विवाहोत्सव दर्शनीय बनाना है। अतः वह बहुसंख्यक सम्बन्धियों तथा मित्रों को साथ लेकर सुलतानपुर पहुँचा। 'बाला जनमसाखी' में वर्णित कतिपय नाम ये हैं—कालू का भ्राता लालू, इन्दरसेन, फिरन्दा, जगतमल, लालचन्द, जगत राय और जटमल। राय बुलार ने कालू के हाथ नानक को प्यार, और बधाई भेजी। चहलवाले से नानक का नाना रामा, मामा किशन तथा अन्य सम्बन्धी आए। इस प्रकार सुलतानपुर में वर यात्रा संघठित हुई। जैराम के पिता परमानन्द ने कुल वृद्ध के रूप में समस्त रीतियाँ पूर्ण कीं। वर-यात्रा के प्रस्थान के समय नानकी ने बहिन द्वारा की जाने वाली सब रीतियाँ पूर्ण कीं, और भाई पर आशीर्वादों की वृष्टि की। वरयात्रा घोड़ों पर तथा गाड़ियों में बटाले के लिए प्रस्थित हुई। पाँच दिन में वहाँ पहुँची और तीन दिन वहाँ ठहरी। कन्या के पिता मूलचन्द ने वरयात्रा की यथाशक्ति बड़ी सेवा शुश्रूषा की। जिस स्थान पर विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ था, वहाँ अब एक गुरद्वारा बना हुआ है, और अगस्त के मास में वहाँ विवाह का दिन मनाने के लिए वार्षिक उत्सव होता है। कन्या के परिवार ने वर को, उसके माता-पिता को, अन्य सम्बन्धियों को तथा अन्य अभ्यागतों को अनेक उपहार दिए।

कोमल-हृदय, गुणवती, सुलक्खणी भाग्यवती थी कि वह नानक की धर्म-पत्नी हुई। तो भी, जब गुरु जी यात्राओं के लिए जाते थे तब उसे दीर्घ वियोग के कष्ट सहने पड़ते थे। उसके त्याग, एवं कष्ट-सहन के उसके धैर्य, ने उसके चरित्र को उदात्त बना दिया है। पति-वियोग में नानकी का सतत स्नेह उसके लिए महती सान्त्वना का स्रोत था। सुलक्खणी के माता-पिता का स्वभाव कठोर था, और वे अपने जामाता के विषय में अप्रिय बातें करने को सदा प्रस्तुत रहते थे। इससे उसका दुःख और तीव्र हो जाता था। अस्तु। नानक को अभी कुछ वर्ष और सुलतानपुर में रहना पड़ा और उसका घर पत्नी सुलक्खणी की गुणवत्ता एवं बुद्धिमत्ता के कारण सुखी तथा उदार घर के रूप में व्यवस्थित हो गया। रात्रि में नाम-कीर्तन में सम्मिलित होने वालों के लिए भोजन सुलक्खणी ही बनाती थी।

था। अस्तु, भाई मनीसिंह की जनमसाखी के अनुसार नानक का विवाह चौदह वर्ष के वय में हुआ। तेजासिंह और गन्डासिंह (A Short History of Sikhs, p. 4) इसे अठारह कहते हैं, और तेजासिंह (महान् कवि गुरु नानक, पृष्ठ १४) उन्नीस। खुशवन्त सिंह (A History of the Sikhs) मानो दो मतों में सामंजस्य उत्पन्न करता है। वह 'पुरातन' जनमसाखी का मत स्वीकार करके विवाह का वय बारह वर्ष मानता है और कहता है कि जब नानक की पत्नी उसके पास रहने सुलतानपुर आई तब नानक का वय अठारह वर्ष था।

गुरु जी के दोनों पुत्र सुलतानपुर में उत्पन्न हुए—अग्रज श्री चन्द ईसवी सन् १४६४ में, और अनुज लख्मीदास १४६६ में ।[1] श्रीचन्द उग्र स्वभाव का पुरुष था, और वह अपने आपको लौकिक धन्धों से पृथक् रखता था। इतिहासज्ञ उसे 'उदासी' सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक मानते हैं । लख्मीदास गृही बना और उसके सन्तान हुई । उसके वंशधर पंजाब के विभिन्न भागों में रहते हैं ।

जब श्री गुरु नानक सुलतानपुर में रहते थे तब उनके सरल उपासना-मार्ग तथा निश्छल आचार से आकृष्ट होकर कुछ व्यक्ति उनके शिष्य हो गए थे । पुरातन जीवनियों में बहुत नामों का उल्लेख नहीं है, परन्तु अपवाद रूप एक नाम प्रायः सब में वर्णित है : भागीरथ, जो सुलतानपुर के समीप मलसिआँ नामक ग्राम का नि-ासी था । आत्मा की शान्ति प्राप्त करने के लिए उसने अनेक फक़ीरों, साधुओं देवी-देवताओं की सेवा-पूजा की थी । कहा जाता है एक रात्रि शालिग्राम की पूजा करके वह सोया तो उसने एक स्वप्न देखा । उसने एक वाणी सुनी—'सुलतानपुर में गुरु नानक है । वह एक वरिष्ठ आत्मा है । परन्तु उसने अभी तक अपने को पूर्णतया प्रकट नहीं किया है । यदि तुम सुलतानपुर जाकर उसके दर्शन करो तो तुम्हारा इधर-उधर भटकना समाप्त हो जाए ।' विह्वल हुआ भगीरथ जाग उठा, और उसने स्वप्न में संकेतित दिशा में चल पड़ने का निश्चय कर लिया । वह सुलतानपुर में गुरु जी के निवास स्थान पर सन्ध्याकालीन प्रार्थनोपासना में सम्मिलित हुआ और उसने उनके वास्तविक-स्वरूप को पहिचान लिया । उसे अनुभव हुआ कि मैंने इष्ट वस्तु प्राप्त कर ली है । अब वह अपने समय का अधिक भाग सुलतानपुर में 'संगत' में व्यतीत करता, इसी के स।थ प्रार्थनोपासना में सम्मिलित होता, और पारस्परिक दृढ सौहार्द तथा विश्वास का जैसा भाव 'संगत' में था, वैसा ही उसमें भी उत्पन्न हो गया ।

---

१. काह्नसिंह, महान् कोश, पृष्ठ १२८, एवं ७६१ । ऐसा प्रतीत होता है कि 'पुरातन' जनमसाखी तथा मेहरबान जनमसाखी के अनुसार लख्मीदास अग्रज था । परन्तु बाला जनमसाखी और मनीसिंह जनमसाखी में श्रीचन्द स्पष्टतया अग्रज कथित है । गुरुजी के वंशधरों में प्रचलित अनुश्रुति के अनुसार भी श्रीचन्द अग्रज था, और सामान्यतः यही मत सत्य माना जाता है । दो जनमसाखियों में इनके जन्म के समय वर्णित हैं : मेहरबान जनमसाखी के अनुसार प्रथम पुत्र का जन्म तब हुआ जब गुरुजी का वय सत्ताईस वर्ष (१४९६ ई०) था, परन्तु बाला जनमसाखी के अनुसार बाईस (१४९१ ई०) । इस विषय में उत्तर-कालीन अनुश्रुति, जिसका प्रतिपादन तारासिंह नरोतम (गुरतीरथ संग्रह) और काह्नसिंह, के ग्रन्थ में है, सामान्यतः सर्व-स्वीकार्य है । खुशवन्तसिंह का ग्रन्थ A History of the Sikhs, p. 31, भी द्रष्टव्य है ।

मर्दाने की कन्या का विवाह निकट आया तो गुरु जी ने दहेज की वस्तुएँ मोल लेने के लिए भागीरथ को लाहौर भेजा, और वहाँ एक रात्रि से अधिक ठहरने का निषेध किया। लाहौर पहुँचकर भागीरथ एक ऐसी दूकान पर गया जहाँ उसे आशा थी कि दहेज की समस्त वस्तुएँ मिल जाएँगी। उस दूकान के स्वामी का नाम मनसुख था। मनसुख के पास उसे चूड़े के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु मिल गई। चूड़े के विषय में मनसुख ने कहा कि वह सदा एक सप्ताह पूर्व कहकर बनवाया जाता है। भागीरथ ने कहा—कुछ भी हो, मुझे गुरु जी के सम्मान्य आदेश के अनुसार कल अवश्य लौट जाना है। भागीरथ ने अपने 'स्वामी' के सम्बन्ध में मनसुख को जो कुछ बतलाया वह उससे इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने घर से लाकर चूड़ा उसको दे दिया, और गुरु जी के दर्शनों के लिए उसके साथ सुलतानपुर आ गया। उसने शिष्यता स्वीकार कर ली। तदनन्तर उसने सुलतानपुर में दिव्यशक्ति-प्रेरित जो उल्लास देखा उसका भागहारी होने के लिए वह बार-बार लाहौर से सुलतानपुर आने लगा। उसने गुरु जी के कतिपय गीतों को लेख-बद्ध किया—कदाचित् गुरु जी के गीतों को लिखित रूप सर्वप्रथम उसी के द्वारा दिया गया—तथा लाहौर में उनके गाने के लिए, एवं उनमें निर्दिष्ट मार्ग पर चलने के लिए, एक 'संगत' की स्थापना की।

SIKHBOOKCLUB.COM

अब सुलतानपुर में एक लोकवाद प्रसृत हो गया। वहाँ कतिपय पुरुष गुरु जी की वदान्यता, तथा नवाब पर उनके प्रभाव, के कारण उनके द्वेषी हो गए, कतिपय ऐसे भी थे जो समस्त जातियों एवं धर्मों के प्रति गुरु जी के एक-समान व्यवहार को देखकर क्षुब्ध थे। फलतः नवाब के सम्मुख शिकायत होने लगीं कि नानक राजकीय अन्नागारों को लुटा रहा है। यह समाचार जैराम और नानकी के कानों तक पहुँचा तो उनके हृदय को आघात लगा। नानकी ने भाई को अपने घर बुलाया, और जो कुछ सुन रखा था सावधानी से उसे बतला दिया। श्री गुरुनानक ने नवाब से निवेदन किया कि अन्नागारों का निरीक्षण करवाया जाए। 'बाला जनमसाखी' के अनुसार नवाब के कोषाधिकारी जदुराय ने उनका निरीक्षण किया, और उनको तथा लेखा-ग्रन्थों में उनकी प्रविष्टियों को यथावत् पाया। वास्तव में कुछ द्रव्यराशि नानक के नाम चढ़ी हुई थी। उसने यह राशि दान में दिलवा दी थी।

विरोधियों को दिए उत्तर का ज्ञापक एक अन्य वृत्तान्त भी है। एक दिन प्रातः कालिक स्नान के पश्चात् गुरु जी घर नहीं लौटे। उनके वस्त्र वेईं नदी के तट पर रखे मिले तो सब को यही आशंका हुई कि वे नदी में डूब गए हैं। नगर में अवसाद छा गया, और यह देखने के लिए कि क्या हुआ, लोग वेईं के तट पर आने लगे। नवाब दौलत खाँ स्वयं वहाँ आया, और उसने अपने निषादों

से जल में जाल डलवाकर गुरु जी के शरीर का अन्वेषण करवाया; परन्तु सब निष्फल। वह शोक के दीर्घ निःश्वास के साथ घोड़े पर चढ़ा और 'पुरातन जनमसाखी' के शब्दों में, नगर को लौटते हुए उसने पीड़ित स्वर में कहा— 'नानक मेरा अच्छा मन्त्री था।'[१] जैराम तथा शिष्य-मंडली को शोक ने अभिभूत कर लिया। केवल नानकी शान्त रही, तथा बार-बार यही कहती रही कि मेरे भाई की कोई हानि नहीं हो सकती, और वह फिर घर आ जाएगा। उसने यह बात ऐसे दृढ़ विश्वास के साथ कही कि प्रत्येक श्रोता का हृदय एक विशेष प्रकार की गम्भीर मधुर पीड़ा से भर गया।

तीसरे दिन गुरु जी आ ही गए। उनके ये तीन दिन एक दुर्ज्ञेय विलक्षण अनुभूति में व्यतीत हुए। जनमसाखी के अनुसार यह अनुभूति ब्रह्म की साक्षात् अनुभूति थी। "ईश्वर की इच्छा से देवों से अनुगत भक्त नानक ईश्वर के सम्मुख पहुँचा। तब एक अमृत-पूर्ण पात्र नानक को दिया गया। उस समय उसे यह आदेश हुआ—'नानक' यह नामार्चन का पात्र है। इसे पी ले। ...मैं तेरे साथ हूँ, तुझे आशीर्वाद देता हूँ तथा तेरी स्थिति ऊंची करता हूँ। जो तेरा स्मरण करेगा वह मेरी कृपा का भाजन होगा। जा मेरे नाम के आनन्द में मग्न रह, और दूसरों को भी वैसा करने की शिक्षा दे।...मैंने तुझे नाम-दान दिया है। यही तेरा व्यवसाय हो जाए।' नानक नमस्कार करके खड़ा हो गया।[२] उसी क्षण उसके मुख से ईश्वर स्तुति की यह गीति स्वतः प्रवाहित होने लगी :—

कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ ॥
चंद सूरज दुई गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ।
साचा निरंकारु निज थाइ ॥
सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ।
कुसा कटीआ वार वार पीसणि पीसा पाइ।
अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ।
पंखी होइ कै जे भवा सै असमानी जाउ ॥
नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥
नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ ॥

१. पृष्ठ १६।
२. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ १६—१७।

मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ ॥
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥"[1]

उसके अनन्तर उस अभौतिक वाणी ने कहा—"नानक ! तू मेरी इच्छा को समझता है ।" उस समय नानक ने छन्दो-बद्ध शब्दों का पाठ किया जो सिखों की प्रथम प्रार्थना-पुस्तक—जो श्री गुरु नानक के मत का सार है—'जपुजी' की भूमिका बन गए । वे शब्द हैं :—

"१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल-मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।
आदि सचु जुगादि सचु ॥
है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥ "[2]

वही अभौतिक वाणी पुनः सुनी गई : "नानक ! जो तेरी दृष्टि में न्यायवान् होगा वही मेरी दृष्टि में भी । जिस पर तेरी कृपा रहेगी उस पर मेरी भी । मेरा नाम परमेश्वर है । तेरा नाम दिव्य गुरु है ।"

---

१ गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरीरागु, पृष्ठ १४-१५ ।

तात्पर्य—यदि मेरी आयु कोटि-कोटि वर्ष की हो, और मैं केवल वायु को अन्न जल बनाकर रहूँ, किसी ऐसी गुहा में बैठ जाऊँ जहाँ चन्द्र-सूर्य के दर्शन न हों, क्षणमात्र के लिए भी न सोऊँ तो भी आपकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकूंगा, और न आपके नाम का गुणगान कर सकूंगा । निराकार परमात्मा अनन्त है, सत्य का स्थान अन्य वस्तु नहीं ग्रहण कर सकती है। सुनी सुनाई बातों के सहारे भगवान् के वर्णन का प्रयास न करो; यदि वह प्रसन्न होगा तो स्वयं अपने दर्शन करा देगा । यदि मैं अन्न के तुल्य चक्की में पीस लिया जाऊं, अग्नि में जला लिया जाऊँ, भस्म के साथ पानी में घोल लिया जाऊँ, तब भी मैं आपकी महिमा का पार न पा सकूंगा और न आपके नाम का पूर्ण गुणगान कर सकूंगा । यदि मैं पक्षी के समान उड़ता हुआ सौ आकाश के परे चला जाऊँ, यदि मैं ऐसे स्थान पर पहुँच जाऊँ जहाँ किसी भी मनुष्य की दृष्टि मुझ तक न पहुँच सके, और निर्जल एवं निराहार रहूँ, तब भी मैं न आपकी महिमा का अन्त पा सकूंगा, और न आपके नाम का वर्णन कर सकूंगा । नानक कहता है यदि सैंकड़ों मन काग़ज़ हो, मुझ में असंख्य ग्रन्थ लिखने की बुद्धि हो, यदि मेरे पास अक्षय्य मसी-राशि हो, और यदि मैं वायु-वेग से लिखता जाऊँ तो भी मैं आपकी महिमा अथवा नाम का वर्णन नहीं कर पाऊँगा ।

२ तात्पर्य—परमात्मा एक है, वह सत् स्वरूप, सृष्टि-कर्त्ता, सर्वव्यापक, निर्भय, निर्वैर, अमर, अजन्मा, स्वयंभू और गुरु है । उसे वही प्राप्त कर सकता है जिस पर उसकी कृपा हो । वह सृष्टि के आरम्भ में था, वह सब युगों में विद्यमान रहता है, वह सत्यस्वरूप परमात्मा विद्यमान है, विद्यमान था, नानक ! वह विद्यमान रहेगा भी ।

"ईश्वर की सभा से श्री गुरु नानक को एक प्रातिष्ठिक परिधान प्रदान हुआ।[१]"

जनमसाखी में कथित है कि इसके अनन्तर दूतों को आदेश हुआ कि गुरु नानक को पुन: उसी नदी-तट पर ले जाओ। जब तीसरे दिन गुरु नानक जी प्रकट हो गए तो लोग आश्चर्य से एक-दूसरे से पूछते — वह तो नदी में गिर पड़ा था। वह अब कहाँ से आ गया ?

अब श्री गुरु नानक जंगल में वास करने लगे, और पूर्ण मौनी हो गए। जब अगले दिन उन्होंने मौन भंग किया तब सब से पूर्व ये शब्द कहे —'न कोई हिन्दू है, और न कोई मुसलमान।' इसके अतिरिक्त वे प्राय: कुछ नहीं बोले। उनके जन्म के दिन कुल पुरोहित ने भविष्यद्वाणी की थी कि यह प्रत्येक प्राणी को ईश्वर की सृष्टि मानेगा। गुरु जी के पूर्वोक्त सूत्र वचन में उनकी लोक-विषयक दृष्टि तथा सहज समवेदना समवेत है। परन्तु जिन लोगों के विचार से जातियों एवं धर्मों में मानवता का विभाजन स्वाभाविक तथा अपरिहार्य था वे ऐसे सरल अकटु सूत्र-वचन पर भी विवाद खड़ा किए बिना न रह सके। कुछ ने कहा 'बेईं के पानी ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है।' 'कोई हिन्दू और मुसलमान दोनों परस्पर समकक्ष कहे, अथवा यह कहे कि कोई मुसलमान नहीं है' इस बात से शासक जाति के लोग भी कुपित हुए। दोषारोपण नवाब दौलत ख़ाँ के सम्मुख ले जाए गए। परन्तु उसने यह कहकर उन आरोपों को अनसुना कर दिया कि नानक एक फ़क़ीर है और साधारण लोग उसके शब्दों का भाव सुगमता से नहीं समझ सकते। मुस्लिम न्यायाध्यक्ष, क़ाज़ी भी वहाँ उपस्थित था। उसने दोषारोपणकर्त्ताओं का समर्थन किया और साग्रह निवेदन किया कि गुरु नानक को यहाँ बुलाना चाहिए। जब बुलाने के लिए भेजे हुए सिपाहियों के साथ गुरु जी नवाब की सभा में आए तब नवाब ने उन्हें प्रणाम करके तथा उन्हें अपने समीप आसन प्रदान करके उन के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट किया।

अपराह्न हुआ, और फिर मुसलमानों की सायंकालीन नमाज़ का समय आ गया। सब लोग उठे और मसजिद में चले गए। गुरु जी भी उनके साथ रहे। जब क़ाज़ी ने नमाज़ पढ़वाई तब गुरु जी ने घुटने नहीं झुकाए। वे खड़े रहे। इससे क़ाज़ी को उनके विरुद्ध बोलने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने नवाब से कहा—'ख़ान ! आपने अब स्वयं देखा है कि वह नमाज़ में सम्मिलित नहीं हुआ है, यद्यपि वह घोषणा करता है कि हिन्दू और मुसलमान के मध्य कोई अन्तर नहीं है।' गुरु जी ने प्रश्न किया—'मुझ से कौन सी

---

१. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ १८।

नमाज़ में सम्मिलित होने की आशा की जाती थी ? क़ाज़ी जिन शब्दों की आवृत्ति कर रहा था उसका अपना मन उनमें नहीं था। उसकी घोड़ी ने कुछ ही समय पूर्व बछेरा दिया है। मसजिद में आने से पूर्व उसे क़ाज़ी पशुओं के बाड़े में खोल आया था। उसे स्मरण हो रहा था कि बाड़े में एक कुआ है, और वह सोच रहा था कि ऐसा न हो बछेरा कुए में गिर जाए। इस प्रकार उसका मन बार-बार उस बछेरे की ओर जा रहा था।'

क़ाज़ी ने गुरु जी के वचन की सत्यता स्वीकार की। तब गुरु जी ने यह 'शब्द' पढ़ा :—

"मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै ॥
अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकल माना मालु मुसावै ॥
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवन का भरमु चुकावै ॥
रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै ॥
तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै ।"[1]

'पुरातन जनमसाखी' में वर्णित है :—"गुरु जी के इस 'शबद' को सुनकर सय्यद लोग, शैखों के पुत्र, मुफ्ती, नवाब, सरदार लोग, तथा मुखिया सब विस्मित हुए। नवाब ने कहा—'क़ाज़ी ! नानक ने सत्य पा लिया है। अब कुछ और पूछना व्यर्थ होगा।' हिन्दू और मुसलमान सब नवाब से कहने लगे कि नानक के ओठों पर परमात्मा बोलता है।"[2]

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, वार माझ, पृष्ठ १४१।

तात्पर्य—मुसलमान कहलाना कठिन है, यदि कोई है, तो अपने आपको मुसलमान कहला ले। उसे सबसे पूर्व अपने धर्म के सिद्धान्तों को हृदय में बैठाना चाहिए, और अपने आपको गर्व से हीन कर लेना चाहिए। मुसलमान वही कहला सकता है, जो इस्लाम के प्रर्वतक द्वारा प्रदर्शित पथ पर चले, मरण जीवन की भ्रान्ति समाप्त कर दे, परमात्मा की इच्छा को शिरोधार्य करे, परमात्मा में विश्वास रखे, अपने आपको परमेश्वर के अर्पण कर दे, सब प्राणियों के प्रति दया-भाव रखे, नानक ! तब वह मुसलमान कहला सकता है।

२. पृष्ठ २२।

SIKHBOOKCLUB.COM

७

लालो

अब श्री गुरु नानक ने अनुभव किया कि मुझे ईश्वरीय आदेश के अनुसार धर्मोपदेश के लिए घर से निकलना चाहिए। अतः वे विशालतर संसार में प्रवेश के लिए संनद्ध हो गए। निस्सन्देह धर्मोपदेश के कार्य का उपक्रम तलवंडी में ही हो चुका था, तथा ऐहिक कर्तव्यों का पालन करते हुए गुरु जी इसे सुलतानपुर में भी, अतितत्परता से तो नहीं किन्तु सुनिर्धारिततया करते रहते थे। परन्तु अब गार्हस्थिक जीवन के कार्यों से अस्थायितया विरत होकर अपने विशिष्ट व्यवसाय को पूर्ण अध्यवसाय से करने का समय आ गया था। जनमसाखी के अनुसार वस्तुतः भगवदादेश भी ऐसा ही था। अब गुरु जी मसजिद से घर नहीं गए, जंगल की ओर चल दिए। उनसे उस मार्ग को छुड़ाने का यत्न किया गया। 'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार नवाब दौलत खां ने उनसे सुलतानपुर छोड़कर न जाने की प्रार्थना की, और कहा 'मेरा राज्य, मेरी सम्पत्ति एवं मेरा अधिकार' आपको अर्पित है। गुरु जी का उत्तर था—'परमात्मा आपको इसका सुफल दे। परन्तु मैं यहाँ और अधिक काल नहीं ठहर सकता। राज्य, पदार्थ, भवन आपके ही रहेंगे। हमारे लिए सब का त्याग करना और जाना उचित है।'[1]

कष्टदायक उग्र कलह उत्पन्न करके अपने जामाता को विरक्ति के पथ से हटाने का दृढ निश्चय किए हुए मूलचन्द और उसकी पत्नी चन्दोरानी बटाले से सुलतानपुर आए। उनके साथ हुआ वार्तालाप गुरु जी के लिए अधिक आकुलताकारक सिद्ध हुआ। जब देखा कि हमारे मधुर प्रबोधन से नानक के मन में परिवर्तन नहीं हुआ तब उन्होंने आक्षेप आरम्भ कर दिए। चन्दोरानी परुषभाषिणी थी। मूलचन्द की अपेक्षा उसी ने नानक की अधिक भर्त्सना की। 'बालाजनमसाखी' के अनुसार वह विद्युत् के तुल्य कड़की। एक आवेदन-पत्र लेकर

---

१. पृष्ठ २२।

SIKHBOOKCLUB.COM

मूलचन्द नवाब दौलत खा के समीप गया। परन्तु नवाब ने कहा कि नानक-सदृश भक्त के निश्चय में मैं हस्तक्षेप नहीं करूँगा। प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार कलियुग ने गुरु जी के समीप आकर अनेक भौतिक सुखों का लोभ दिखलाया; किन्तु भय अथवा प्रलोभन गुरु जी को अभिभूत नहीं कर सका। वे करुणानिधान भगवान् के स्मरण में स्थिर भाव से मग्न रहे। पदों की एवं चित्रोन्मीलन की दृष्टि से जो आश्चर्यजनक-रूप से भाव-प्रधान है उस 'शबद' में गुरु जी ने कहा :—

"मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ॥
कसतूरी कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाउ ॥
सोहणी मुखी मणी सोहै करे रंगि पसाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ॥
गुपतु परगट होइ बैसा लोकु राखै भाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ ॥
हुकमु हासलु करी बैठा नानक सभ वाउ ॥
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥"[1]

ईसवीय सन् १४९६ की घटना है :[2]

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरी रागु, पृष्ठ १४।

तात्पर्य—यदि मुक्ता-मणि-जटित भवन हों, उन पर कस्तूरी, कुंकुम, अगरु और चन्दन का लेप हो, उनका दर्शन मात्र मन को प्रफुल्ल कर दे, तो भी मुझे आपका नाम विस्मृत न हो। यदि गृह-भूमि तथा पर्यंक रत्न-जटित हो, रत्नों से प्रसाधित सुन्दरी हो, स्वलंकृत नारियाँ परिचारिकाएँ हों तब भी मुझे आपका नाम विस्मृत न हो। यदि मैं ऋद्धियों-सिद्धियों का स्वामी हो जाऊँ, तथा लोक मेरी पूजा करे, तो भी मुझे आपका नाम विस्मृत न हो। यदि मैं विशाल सेना का स्वामी सम्राट हो जाऊँ, सिंहासनासीन रहूँ। मेरा शासन अनुल्लंघनीय हो तब भी मुझे आपका नाम विस्मृत न हो।

२. 'बालाजनमसाखी', पृष्ठ ६८। 'बाला जनमसाखी' के अतिरिक्त केवल 'मेहरबान जनमसाखी' में ही इस प्रसंग में असाधारण वर्णन है। इसके अनुसार पैंतीस वर्ष से ऊपर के वय में गुरु जी तलवंडी से सुलतानपुर आए, और दो वर्ष पश्चात् यात्राओं के लिए चल दिए। इसका अभिप्राय यह है कि गुरु जी १५०८ ई० में सुलतानपुर से यात्राओं के लिए चले। परन्तु यात्रारम्भ के लिए

वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हो चुका था ; पंजाब की नदियों में बाढ़ आ रही थी ; वायु में शीतलता आ रही थी, तथा आकाश सान्द्र-श्याम मेघों से आच्छन्न रहता था। हृदय के उल्लासक, तथा प्रकृति-सम्पत्ति की पुष्कलता के आपादक ऐसे काल में, अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के हेतु, कष्टकर-दीर्घ यात्राओं का प्रारम्भ करने के लिए गुरु जी घर से निकल पड़े। उस समय के भारत में, ऐसे कार्य में आने वाले परीक्षा-तितिक्षा-काल उनके लिए परोक्ष नहीं रहे होंगे ; परन्तु उनका हृदय लोकानुकम्पा से इतना पूर्ण था, तथा वे ईश्वर-भक्ति के अपने, रोगहर, शब्दों को जनता तक पहुँचाने को इतने चिन्ताकुल थे कि वे उस काल की ओर ध्यान दे ही नहीं सकते थे। वे अपनी पत्नी से विदा लेने के लिए नगर में आए। उससे विदा लेकर अपनी बहिन से मिलने गए। उनके प्रति बहिन और बहिनोई का मधुर व्यवहार विह्वल-कारकतया स्नेह-पूर्ण था। उनसे विदा लेते समय गुरु जी का मन अवश्य पीड़ा से अस्थिर हो उठा होगा। बहिन नानकी के लिए उनके मन में एक असामान्य कृपा-भाव था : उन्होंने उसे वचन दिया कि तुम जब अपने मन में मुझे याद करोगी, मैं सुलतानपुर आकर तुम से मिलूँगा। नानकी निःसन्तान थी। सुलक्खणी ने बड़ा पुत्र उसे दे दिया, और छोटे को साथ लेकर अपने माता-पिता के पास रहने के लिए बटाले चली गई।

SIKHBOOKCLUB.COM

अपने जीवनोद्देश्य के कार्य के इस नवीन भाग में प्रवेश के समय श्री गुरु नानक ने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का सूचक एक 'शबद' पढ़ा। उन्होंने कहा—"मैं विनीत चारण निर्व्यवसाय था। परमात्मा धन्य है कि उसने मुझे कार्य के

ईसवीय १५०८ सम्भवनीय नहीं हो सकता। यह सम्भव नहीं कि जब कालु ने उनके भविष्यत् के विषय में बार-बार चिन्ता करनी प्रारम्भ कर दी तब गुरु जी देर तक तलवंडी रह सके हों। परन्तु स्थिति कुछ भी रही हो, कोई जनमसाखी यह नहीं बतलाती कि गुरु जी पैंतीस से ऊपर के वय तक तलवंडी में किस प्रयोजन की पूर्ति के लिए रहे। इस प्रसंग में 'बाला जनमसाखी' का यह कथन कि गुरु जी अठारह वर्ष के वय में सुलतानपुर आए सत्यता के अधिक समीप प्रतीत होता है। बाला का यह कथन कि गुरु जी सत्ताईस वर्ष के वय में, अर्थात् १४९६ ई० में, सुलतानपुर से यात्राओं के लिए प्रस्थित हुए, उत्तर-कालवर्ती कई लेखकों ने स्वीकार किया है। देखिए : तेजासिंह और गन्डासिंह का ग्रन्थ—सिखों का संक्षिप्त इतिहास (A Short History of the Sikhs) पृ० ५। इन्दुभूषण बनर्जी तथा डब्ल्यू० एच० मैक लिओंड (W. H. Mc.Leod) भी इसके समर्थक हैं। देखिए इन्दु भूषण बनर्जी की पुस्तक खालसा पन्थ का विकास (Evolution of the Khalsa), जिल्द १, पृष्ठ ७७ तथा मैक लिओंड की पुस्तक गुरु नानक और सिख धर्म (Guru Nanak and the Sikh Religion), पृष्ठ १४३-४४।

लिए बुलाया। उसका इस चारण के लिए आदेश हुआ है कि प्रतिदिन, प्रातः, सायं सेवा में उपस्थित रहो। स्वामी ने चारण को अपनी सेवा में बुलाकर उसे स्तुति के गीत गाने की शक्ति प्रदान की है।......अब चारण का कार्य है परमात्मा के आदेश का प्रसार करना......।"[1]

श्री गुरु नानक ने आध्यात्मिक दाय का ग्रहण जिस प्रकार किया उसका वर्णन, वर्षों पश्चात्, भाई गुरदास ने छन्दोबद्ध शब्दों में इस प्रकार किया है—

"पहिला बावे पाया बखसु दरि, पिछो दे फिरि घालि कमाई।
रेतु अकु आहारु करि, रोड़ा की गुर करी विछाई।
भारी करी तपसिआ, वडे भागु हरि सिउ बणि आई।
बाबा पैधा सच-खंडि, नउ निधि नामु गरीबी पाई।
बाबा देखै धिआन धरि, जलती सभि प्रिथवी दिसि आई।
बाझहु गुरु गुबार है, है, है कर दी सुणी लुकाई।
बावे भेख बणाइआ उदासी की रीति चलाई।
चड़िआ सोधणि धरति लुकाई।"[2]

अब गुरु जी ने उस समय में प्रचलित समस्त सम्प्रदायों के वेशों से विलक्षण, मिश्रित, वेष धारण किया—जो वास्तव में सभी मतों के अनुयायियों के लिए उनके सामान्य सन्देश का व्यंजक था—और अपने मुसलमान सहचर मर्दाने को साथ लेकर वे उन यात्राओं के लिए प्रस्थित हो गए जिनके प्रसंग से उन्होंने भारतवर्ष के चारों कोनों में तथा उनसे बाहर भी विचरण किया। इन यात्राओं में तेईस वर्ष व्यतीत हुए, और इनमें वे नाना प्रकार के लोगों से मिले। वे साधारण स्थिति के गृहस्थों के अतिथि होते थे, और कभी-कभी मुक्त आकाश के नीचे ही विश्राम किया करते थे। वे अप्रसिद्ध लघु ग्रामों में भी गए, और राजधानियों एवं महा-नगरियों में भी। वे सरल-स्वभाव, निरक्षर लोगों के मध्य में भी रहे, और उन्होंने बहुश्रुतों से भी वार्तालाप किया। वे मेलों में, उत्सवों में, देवालयों में, मसजिदों में, मठों में खानक़ाहों में, सर्वत्र, पहुँचे। उन्होंने दैनिक कार्य-व्यवहार में लग्न एक-एक व्यक्ति को भी उपदेश

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, वार माझ, पृष्ठ १५०।

२. वार १।२४।

तात्पर्य—प्रथम उसके लिए ईश्वरीय कृपा का द्वार खुल गया, और वह घोर तपस्या में लीन हो गया। उस पर परमात्मा प्रसन्न हो गया। और उसे सत्य के जगत् में प्रवेश की अनुमति मिल गई। वहाँ उसे भक्ति एवं नम्रता का दाय मिला। तब उसने संसार की दशा पर दृष्टि-पात किया, और देखा कि समस्त संसार दुःखों की ज्वाला में जल रहा है। उसने धर्म का वेश धारण किया और संसार तथा मानवता को मुक्ति दिलाने के लिए चल पड़ा।

दिया, और प्राचीन तीर्थादि स्थानों पर समागत जन-समवाय को भी। उनके प्रेम और विश्वास-भरे मृदु शब्दों से बहुत लोगों ने शान्ति प्राप्त की, और उनकी सरल शिक्षा का मार्ग ग्रहण कर लिया। गुरु जी ने दया एवं अनुकम्पा के भी अनेक कार्य किए। दृढ मन से की हुई अनेक देश-देशान्तरों की इन कठिन यात्राओं का फल यह हुआ कि एक अभिनव आध्यात्मिक एवं सामाजिक सर्जनशक्ति के तत्त्व जनता के जीवन में प्रकट होने लगे।

यात्रा के कष्टों के मध्य विश्रान्ति एवं शान्ति के भी अवसर आ जाते थे। ये अवसर वे थे जब गुरु जी दिव्य शक्ति के प्रेरणा से पवित्र काव्य की रचना किया करते थे, और जब उनका सहयात्री मर्दाना किसी प्यारी भूल के कारण प्रायः कोई विनोदमयी स्थिति उत्पन्न कर देता था। शरीर की आवश्यकताओं के विषय में उसका मन दुर्बल था। अतः जब कभी भोजन की प्राप्ति सन्दिग्ध हो जाती थी तब वह व्याकुल हो उठता था। यदि उसे समझाते हुए गुरु जी कहते कि धैर्य धारण करो और विश्वास रखो कि कोई न कोई वस्तु आ जाएगी, तो वह सुगमता से आश्वस्त न होता, और सर्वदा यही चाहता कि भोजन-काल से पूर्व ही भोजन-सामग्री हमें मिल जाए।

गुरु जी और मर्दाना सुलतानपुर से थोड़ी दूर ही चले थे कि मर्दाना कहने लगा—मुझे तो बड़ी भूख लग रही है, खाने के लिए कुछ इसी क्षण मिलना चाहिए। गुरु जी ने उस ग्राम की ओर संकेत किया जिसको वे पीछे छोड़ आए थे, और कहा यदि तुम वहाँ जाओ तो वहाँ के उप्पलों[1] से तुम्हें खाने को कुछ मिल जाएगा। मर्दाना ग्राम में गया, और उसने देखा कि वहाँ के सब लोग बड़े ही अतिथि-सेवी हैं। वहाँ मर्दाने को खाने को उत्तमोत्तम पदार्थ दिए गए, और पुष्कल भिक्षा दी गई। 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है कि जब गुरु जी ने उसको भिक्षा से लदा हुआ आता देखा तो वे हँसी से लोट-पोट हो गए। मर्दाना अपनी भूल को समझ गया, किन्तु उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं जो कुछ ले आया हूँ उसका क्या करूँ? गुरु जी को उसे समझाना पड़ा कि हमें दान स्वीकार नहीं करना चाहिए।

व्यास नदी को पार करके गुरु जी एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक अकृत्रिम झील थी, जिसके चतुर्दिक् वृष्टि से धुले वृक्षों के कुंज थे। उस रमणीय स्थान ने गुरु जी का मन आकृष्ट कर लिया।[2] वे वहीं बैठ गए और

१. क्षत्रियों की एक उपजाति।

२. चतुर्थ नानक, श्री गुरु रामदास ने १५७७ ई० में इस स्थान पर एक सरोवर बनवाया, और अमृतसर नगर का शिलान्यास किया। उनके उत्तरवर्ती श्री गुरु अर्जुन ने १५८९ ई० में उस सरोवर में गुरुद्वारा बनवाया। उसके पश्चात् इसका पुर्ननिर्माण हुआ और यह सुवर्ण मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् की महिमा का ध्यान करने लग गए। गुरु जी जिसके नीचे बैठे थे वह बेरी का वृक्ष—यद्यपि अब वह शुष्क है तथापि फल देता है—अमृतसर में पवित्र सरोवर के उत्तर में अभी तक विद्यमान है। उस स्थान से तीस मील पश्चिम में लाहौर है। इस यात्रा में गुरु जी वहाँ स्वल्प काल के लिए ठहरे। एक विवरण[1] के अनुसार गुरु जी वहाँ सत्रह दिन ठहरे थे। वे जिस स्थान पर ठहरे थे वहाँ एक गुरद्वारा बना हुआ है। लाहौर से चलकर गुरु जी तलवंडी पहुँचे। उनको विरक्त वेष में देखकर उनके माता-पिता बड़े दुःखी हुए। अब कालू वृद्ध हो रहा था। उसने पुत्र के सम्मुख युक्ति-प्रयोग उचित नहीं समझा, और न उसके अभीष्ट लक्ष्य से उसका चित्त हटाने का यत्न किया। वस्तुतः उसने एवं माता तृप्ता ने मन में परमात्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की कि हमें फिर पुत्र से मिलने का अवसर मिला। चिर-अतीत वर्षों के समान अब फिर पुत्र को अपने हाथ का बनाया भोजन खिलाकर माता तृप्ता विशेषतः परि-तुष्ट हुई। राय बुलार, जो सबसे पूर्व गुरु जी का प्रशंसक बना था, और जो सदा उनकी संगति का इच्छुक रहता था, उनसे मिलकर अपने आपको सौभाग्य-शाली मानने लगा। तलवंडी में गुरु जी के आगमन को राय ने अपने ऊपर उनकी कृपा का कार्य समझा। मर्दाना अपने परिवार में ठहरा। उसके पुराने मित्र एवं सहचर उत्सुकता से उससे मिलने आते रहे।

गुरु जी ने अपने माता-पिता तथा राय बुलार से कहा कि मुझे भगवान् के आदेश का पालन करने के लिए भ्रमण करना ही चाहिए; और वे कुछ दिन ही तलवंडी में ठहरकर फिर यात्रा के लिए चल पड़े। ग्राम से बाहर आकर गुरु जी ने मर्दाने से पूछा—हमें किस दिशा में चलना चाहिए? मर्दाने ने उत्तर दिया—'स्वामी! मैं क्या जानूं? नेता आप हैं। मैं तो अनुगामी हूँ।'

तलवंडी से उत्तर-पूर्व की दिशा में लगभग साठ मील चलकर गुरु जी सैदपुर नामक नगर में पहुँचे।[1] इसे ही सैदपुर संडिआलो भी कहते हैं। संडि-आली शब्द प्राचीन ऋषि शाण्डिल्य के नाम के विकृत रूप से व्युत्पन्न है, और सैदपुर नाम मुसलमानों के आगमन के पश्चात् प्रसिद्ध हुआ है। गुरु जी सीधे लालो नामक एक बढ़ई के घर चले गए। उस समय लालो अपने आँगन में बैठा हुआ लकड़ी की खूँटियाँ बना रहा था। गुरु जी ने उसका नाम लेकर

१. गिआनी गिआन सिंह त्वारीख़ गुरु खालसा, भाग १, पृ० १२७-२८।

१. वर्तमान काल में यह नगर ऐमिनाबाद के नाम से प्रसिद्ध है, और पाकिस्तान में गुजरांवाला जिले में स्थित है। बाबर ने इस नगर को १५२० ई० में लूटा था। किंवदन्ती के अनुसार ऐमा नामक एक धीवरी ने चने भूनकर खाने के लिए बाबर को दिए थे। उसी धीवरी के नाम को लेकर बाबर ने इसका नाम ऐमिनाबाद रख दिया था।

उसे नमस्कार किया, मानो वे उसे पहले से जानते थे, और कहा—'लालो ! क्या तुम समस्त आयु खूँटियाँ ही बनाते रहोगे ?'

लालो अर्धसुप्त अवस्था से चौंक पड़ा और उसने कार्य करने से कठोर हुए हाथों को जोड़कर गुरु जी को नमस्कार किया। अपरिचित आगन्तुक के प्रश्न ने उसके हृत्तल को चंचल कर दिया। परन्तु वह कृतज्ञतापूर्ण कतिपय शब्दों में गुरु जी का स्वागत तो कर सका, अधिक नहीं बोल सका। उसने कार्यार्थियों के बैठने के लिए सहज स्वभाव जो तिपाइयाँ बना रखी थीं उनमें से दो अपने अतिथियों को दीं, और उनके खाने के लिए भोजन बनाने के लिए घर में चला गया। गुरु जी का आचरण मर्दाने की समझ में नहीं आ रहा था, और उसे देखकर उसका मन आश्चर्य और जिज्ञासा से भर रहा था। वह सोच रहा था—'नगर में धनवान् घर भी हैं। उनको छोड़कर ये अत्यन्त निर्धन के घर क्यों आए ?' उसने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने का यत्न किया, परन्तु व्यर्थ। जो भोजन आया उसे देखकर तो वह काँप उठा—मोटे अनाज की एक मोटी रोटी, और उबला हुआ पालक। गुरु जी ने यह घटिया से घटिया भोजन बड़े स्वाद से खाया। खाते हुए वे अपनी कोमल और मोहक रीति से लालो के साथ बातें भी करते रहे। लालो अपने मन में बढ़ते हुए सन्तोष का अनुभव कर रहा था। अब वह गुरु जी के पूछे प्रश्न का तात्पर्य समझ गया। उसके मन में ज्ञान का उदय हो गया, और उसे ज्ञात हो गया कि निश्छल परिश्रम से जीविकोपार्जन करने वाले मनुष्य के जीवन को भगवन्नाम का स्मरण कई गुना सुन्दर बना देता है।

लालो का अनुरोध स्वीकार करके गुरु जी सैदपुर में कुछ अधिक दिन ठहरे रहे। परन्तु रूढ़िवाद के अनुसार, लालो के घर ठहर कर गुरु जी प्राचीन नियम का उल्लंघन कर रहे थे। शीघ्र ही हिन्दू घरों में यह चर्चा होने लगी कि एक कुलीन क्षत्रिय युवक लालो बढ़ई के घर ठहरा हुआ है, और एक मुसलमान सहचर को साथ लिए इधर-उधर घूमता रहता है। नगर की कर्कश स्त्रियों ने गुरु जी का नाम भ्रान्त नानक रख दिया।

सैदपुर के मुसलमान सामन्त की सम्पत्ति का प्रबन्धक एक हिन्दू था। सिख-इतिहास लेखक उसका नाम मलिक भागो लिखते हैं। उच्च स्थिति के लोग दान एवं प्रतिष्ठा के विचार से उत्तम और विशाल भोज दिया करते थे। मलिक भागो ने भी एक दिन ऐसे भोज की घोषणा की। नगर के प्रत्येक सवर्ण हिन्दू को तथा नगर में और उसके समीप कहीं भी जो साधु और फ़क़ीर था सबको निमन्त्रण दिया गया। भोज के दिन मलिक भागो के घर महान् जन-सम्मर्द हो गया, किन्तु भोजन खिलाने और वितरण की व्यवस्था पूर्ण सन्तोष जनक थी। यह देखकर भागो का मन हर्ष और गर्व से उछल रहा था कि सभी

निमन्त्रित लोग भोज में आ गए, और ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिसे यथारुचि भोजन न मिला हो। परन्तु किसी ने भागो से कहा कि आजकल नगर में एक साधु ठहरा हुआ है ; उसका नाम नानक है और वह समीप के एक ज़िले का क्षत्रिय-पुत्र है। वह भोजन करने नहीं आया है। भागो ने तत्क्षण गुरु जी को बुला लाने के लिए पुरुष भेजे। जब गुरु जी आए तब भागो ने रूक्ष स्वर में उनसे कहा—'आज समस्त नगर मेरे घर भोजन कर रहा है। आपने मेरे निमन्त्रण की उपेक्षा क्यों कर दी ? क्या आप जिस निर्वर्ण के घर ठहरे हैं वह आपको जो भोजन देता है वह मेरे भोजन से अच्छा है ?'

गुरु जी ने कहा—'भगवान् जो भेज देता है मैं खा लेता हूँ। भगवान् की दृष्टि में जाति-भेद नहीं है।'

'तब इस घर में जो मिले आपको वह भी खा लेना चाहिए।' भागो बोला।

भागो ने पाकशाला से वह बढ़िया भोजन मँगवाया जो बहुत से निमन्त्रित लोगों को खिलाया गया था। उसी समय गुरु जी ने लालो के घर से भी भोजन मँगवाने के लिए कहा। 'बाला जनमसाखी' के अनुसार, गुरु जी ने लालो की मोटे अनाज की रोटी दाहिने हाथ में ली, और मलिक भागो का बढ़िया भोजन बाएँ में। उन्होंने जब दोनों को मुट्ठियों में दबाया तब लालो की रोटी में से दूध, और भागो के भोजन में से खून निकला। यह देख कर समस्त दर्शक-मंडली आश्चर्य से स्तब्ध हो गई।[1]

गुरु जी का उपदेश स्पष्ट था। धनवान् की सम्पत्ति अन्यों को हानि पहुँचा कर स्वार्थ भाव से संचित की जाती है, और उसका दान शुद्ध धर्म-भावना से नहीं किया जाता। निर्धन पुरुष निश्छल परिश्रम से साधारण जीविकोपार्जन करता है, और अपने अन्न में से पड़ोसी को देने को प्रस्तुत रहता है। उसी का दान सात्विक है।

लालो का साधारण घर गुरु जी का उपदेश सुनने के लिए आने वाले भक्तों का संगत-घर बन गया, और गुरु जी के सैदपुर से चले जाने के पश्चात् भी वैसा ही बना रहा। गुरु जी के भक्तों की मंडली की ओर ध्यान देना लालो का कर्तव्य रहा। अतएव कतिपय इतिहासकारों ने लालो को सिख धर्म का प्रथम प्रचारक कहा है। सैदपुर में गुरु जी प्रातःकाल नगर से बाहर जाकर जहाँ ध्यान लगाकर बैठा करते थे वह भी तीर्थ-स्थान समझा जाने लगा, और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही वहाँ जाने लगे। हिन्दू गुरु जी को तपस्वी, और मुसलमान पीर कहते थे।

---

१. पृष्ठ ८१।

गुरु जी अभी सैदपुर में ही थे कि वहाँ के मुसलमान सामन्त का पुत्र रुग्ण हो गया। रोग गम्भीर था। बहुत उपचार करने पर भी उसकी अवस्था प्रति-दिन अधिकाधिक चिन्ताजनक होती गई। जब उसके नीरोग होने की आशा बहुत क्षीण हो गई तब मलिक भागो ने सामन्त को सुझाव दिया कि किसी पूर्ण महात्मा का आशीर्वाद प्राप्त किया जाए। नवाब ने अपने भृत्यों को आदेश दिया कि जिले में जितने सन्त महात्मा हैं सबको बुलाकर मेरे महल में ले आओ। उनके आ जाने पर नवाब ने उनसे अभ्यर्थना की—'मेरे पुत्र के नीरोग हो जाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना कीजिए।' वहाँ उपस्थित सन्तों में श्री गुरु नानक भी थे। उन्होंने कहा—'क्या आपने कभी कीकर पर अंगूर लगते देखे हैं? क्या विषैले आक के पौदे से मधु निकाला जा सकता है? आप अपने अथवा अपने रुग्ण पुत्र के हेतु ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए किसी को विवश कैसे कर सकते हैं?' नवाब ने अपने आचरण के दोष का अनुभव किया, और अपनी भूल के प्रायश्चित्त के रूप में क्षमा की प्रार्थना की। जब नवाब अन्य निरुद्ध लोगों के साथ वहाँ से जाने को उद्यत हुआ तब गुरु जी ने कहा—'यदि आपका पुत्र किसी पुण्यात्मा के घर की रोटी के टुकड़े खाए तो नीरोग हो सकता है।' उसी समय लालो के घर से एक रोटी मँगाई गई और खाने के लिए नवाब के पुत्र को दी गई। उस दिन से उसका रोग शान्त होने लगा और वह कुछ काल में पूर्ण स्वस्थ हो गया।

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

८

सज्जन का कुमार्ग-त्याग

सैदपुर और लालो उन स्थानों तथा पुरुषों में हैं जो श्री गुरु नानक की यात्राओं के वर्षों में पाठकों के ध्यान में अपेक्षाकृत अधिक ऊपर स्थित रहते हैं। गुरु जी सैदपुर कई बार गए, और कई बार लालो के घर ठहरे। यदि उनकी अपनी रचना में उनके जीवन की घटनाओं से सम्बद्ध किसी स्थान और पुरुष के नाम का उल्लेख है तो केवल इन दो का।[1] सैदपुर की घटना उस रीति को सूचित करती है जिससे गुरु जी अपना सन्देश नर-नारियों को सुनाते और उनके जीवन में परिवर्तन करते थे। गुरु जी का प्रचार-कार्य तथा भक्त मण्डल, इस प्रकार, प्रगति करता रहा तथा पुष्ट होता गया। सैदपुर से चल कर कई मास तक की गई यात्रा के विषय में जनमसाखियों में कुछ नहीं कहा गया है। सैदपुर के पश्चात् गुरु जी के दर्शन दक्षिण-पश्चमीय पंजाब में हरप्पा से परे तुलम्बा नगर के समीप एक स्थान में होते हैं।

यहाँ पर राजमार्ग के समीप शैख़ सज्जन नाम से प्रसिद्ध एक धनवान् पुरुष रहता था। बाहर से देखने में वह महाधर्मात्मा प्रतीत होता था। यात्रियों के रात्रि-विश्राम के निमित्त उसने एक मसजिद और एक मन्दिर बनवा रखा था। मसजिद मुसलमानों के लिए, मन्दिर हिन्दुओं के लिए। वह प्रत्येक विश्रामार्थी का अभिनन्दन और उसके भोजन की व्यवस्था करता। दिनभर यात्रा के अनन्तर सायंकाल में ऐसे विश्राम-गृह में पहुँच कर अनेक पथिक सुस्थ और कृतज्ञ होते। परन्तु सज्जन अपने साथी ठगों की सहायता से सुप्त पथिकों

---

१. सैदपुर अथवा ऐमिनाबाद का नाम साक्षात् रीति से नहीं लिया गया है। एक 'शबद'-वर्ग 'बाबर-बाणी' के नाम से अभिहित है। उसमें बाबर की सेना के अत्याचारों का वर्णन है। नि:संकोचतया यह अनुमान किया जाता है कि बाबर ने १५२० ई० में इस नगर पर जो आक्रमण किया था यह 'बाणी' उसकी ओर संकेत करती है।

की हत्या कर डालता, तथा उनकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेता। पथिकों को परलोक भेजकर प्रातःकाल में अपने साथियों को तीर्थयात्रियों के से वस्त्र पहिना कर और स्वयं हाथ में माला लेकर बाहर आता तथा एक क़ालीन बिछवा कर उस पर नमाज़ पढ़ने लग जाता।

दीर्घ-दृष्टि सज्जन ने गुरु जी के भास्वर मुख-मण्डल को देखा तो उसे उसमें धनाढ्यता के लक्षण दिखाई दिये। अतः अभ्यागत और भी अधिक अभिनन्दनीय तथा मधुरतर व्यवहार का अधिकारी हुआ। परन्तु गुरु जी रात्रि में बहुत देर तक जागते रहे। जब प्रतीक्षा करके सज्जन अधीर हो उठा तब वह कमरे के अन्दर दृष्टि डालने के लिए द्वार पर आया। मर्दाना रबाब बजा रहा था, प्रभु प्रेम में मग्न हुए गुरु जी एक 'शबद' गा रहे थे। उस दृश्य ने सज्जन का हृदय पकड़ लिया; मधुर संगीत ने उसके अन्तराल को तरंगित कर दिया। उसके हृदय की अशान्ति शान्त हो गई और उसने अपने अभ्यन्तर में उदित होती हुई एक नवीन चेतना का अनुभव किया। अब वह गुरु जी के चरणों में जा गिरा और उसने अपने पापों को सशोक स्वीकार किया। उसे विश्वास दिलाते हुए गुरु जी ने कहा कि यदि तुम भगवान् के सम्मुख अपने दोषों को मानो तथा पश्चात्ताप करो तो तुम भगवान् की कृपा एवं क्षमा की आशा कर सकते हो। सज्जन ने पुनः अपने पापों को अंगीकार किया और गुरु जी से क्षमा की प्रार्थना की। गुरु जी ने उसके सम्मुख एक शर्त रखी: अधर्म द्वारा संचित समस्त सम्पत्ति का वितरण। 'पुरातन' जनमसाखी के अनुसार, 'तब सज्जन ने गुरु जी के आदेश का पालन किया। वह अपना सर्वस्व ले आया और उसने उसे भगवान् के नाम पर वितीर्ण कर दिया।'[1] उसने अपने घर को एक 'धरमसाला,'[2] बना दिया और गुरु जी की शिक्षाओं का उत्साही प्रचारक बन गया।

जहाँ सज्जन रहा करता था वह स्थान अब पाकिस्तान में है, और वहीं मखदूमपुर नगर के समीप सज्जन का मक़बरा है। उसी के समीप एक ध्वंसावशेषीभूत टीला सज्जन का टीला कहलाता है।

'और बाबा अर्थात् गुरु जी ने अपना मार्ग ग्रहण किया।'

'पुरातन' जनमसाखी में उक्त वाक्य के अर्थ का बोधक एक वाक्य पुनः पुनः प्रयुक्त है। उसका अभिप्राय है कि गुरु जी एक स्थान से अन्य के लिए

१. पृष्ठ २६।

२. गुरु जी के समय में यह उस स्थान का नाम था जहाँ भक्त मण्डली पूजा के लिए इकट्ठी होती थी। 'सिक्ख' शब्द के समान 'गुरद्वारा' (सिक्ख धर्म मन्दिर) शब्द उत्तरकाल में प्रचलित हुआ है। पंजाब में अब तक 'गुरद्वारा' और 'धरमसाला' दोनों शब्द समानार्थकतया प्रयुक्त होते हैं।

चल दिए, अथवा तदनन्तर गुरु जी ने एक दीर्घ यात्रा की। सज्जन को छोड़ कर गुरु जी पूर्व दिशा में प्रस्थित हुए और पंजाब के दूसरे किनारे पर, महाभारत-प्रसिद्ध, कुरुक्षेत्र पहुँचे। किसी जनमसाखी में इस दीर्घ यात्रा की कोई घटना वर्णित नहीं। 'बाला जनमसाखी' के अनुसार यहाँ गुरु जी का कोई शिष्य उनके लिए एक हरिण लाया और गुरु जी ने उसे पकवाया। इससे कुरुक्षेत्र के ब्राह्मण भक्त बहुत कुपित हुए।[1] उन्होंने इसे तीर्थ को बहुत ही अपवित्र करने का कार्य कहा, और क्रोध में भरकर इसका प्रतिशोध करने को उद्यत हो गए। परन्तु गुरु जी शान्तभाव से उनसे वार्तालाप करते रहे जिससे वे भी ध्यानपूर्वक उनके विचारों को सुनते रहे। गुरु जी ने कहा—'मांसाशी और अमांसाशी में से कौन पापी है ? इस प्रश्न का समाधान कठिन है। जो लोग मांस नहीं खाते हैं और मांस को देखकर नाक पकड़ लेते हैं, वे कदाचित् अन्धकार में अपने साथियों को हड़प कर जाने में संकोच नहीं करेंगे। जिन्होंने सत्य के विषय में यथावत् शिक्षा प्राप्त नहीं की है वे अभक्ष्य का भक्षण करते हैं और भक्ष्य का त्याग।'[2]

गुरु जी कुरुक्षेत्र से दक्षिण-पूर्व को चलते हुए दिल्ली पहुँचे। मार्ग में वे पानीपत ठहरे। पानीपत अब्बू अली क़लन्दर द्वारा प्रवर्तित सूफ़ी मत का केन्द्र था। क़लन्दर ही शाह शरफ़ के नाम से भी प्रसिद्ध है।[3] गुरुजी और मर्दाना एक दीवार के समीप विश्राम कर रहे थे कि शाह शरफ़ की गद्दी पर आसीन शैख़ का एक शिष्य अपने गुरु के लिए पानी लेने आया। गुरु जी के वस्त्रों को देखकर उसने उनको फ़ारस का दर्वेश समझा, और नमस्कार के लिए कहा—अस् सलामालेकम्' गुरु जी ने प्रतिनमस्कार के लिए कहा—वालेकम् सलाम्'। शैख़ के शिष्य ने मुसलमानी नमस्कार के उत्तर में इस प्रकार के नमस्कार के शब्द इससे पूर्व कभी नहीं सुने थे। वह इस विलक्षण दर्वेश का समाचार सुनाने के लिए शैख़ के समीप गया। शैख़ उसके साथ वहाँ आ गया जहाँ गुरु जी विश्राम कर रहे। आते ही शैख़ ने गुरु जी से उनके

---

१. पृष्ठ ४२८-३०।

२. गुरु ग्रन्थ साहिब, वार मलार, पृष्ठ १२८९।

३. महरबान जनम साखी के अतिरिक्त, सब जनमसाखियों में वर्णित है कि श्री गुरुनानक पानीपत के शाह शरफ़ से मिले थे। अबू अली क़न्दर ने, जो शाह शरफ़ के नाम से प्रसिद्ध है, १३२४ ई० में शरीर-त्याग किया। सम्भव है उसका प्रसिद्ध नाम उसके मठ के लिए भी प्रसिद्ध हो गया हो। प्रतीत होता है इस औपचारिक नाम की वास्तविकता की ओर ध्यान न देकर ही इतिहासकारों ने गुरु जी के समानकालभव, पानीपत के सूफ़ी शैख़ का नाम शाह शरफ़ लिख दिया।

वेष, मन्तव्य एवं सम्प्रदाय के विषय में प्रश्न आरम्भ कर दिए। 'पुरातन जनम साखी' में ये प्रश्न फारसी में, और गुरु जी द्वारा दिए गए उनके उत्तर पंजाबी भाषा में रचित दीर्घ पद्यों में हैं। शैख का एक प्रश्न था—'वास्तव में दर्वेश (फ़क़ीर) कौन है ?' गुरु जी ने उत्तर दिया—

"जो मनुष्य अपने प्रेम-पात्र के लिए जीवन्मृत हो जाता है, जाग्रत्-अवस्था में आत्म-विस्मृत रहता है, अपने आपको अकिंचन बना लेता है, तथा पूर्ण आत्म-समर्पण करके प्रेम-पात्र को प्राप्त करता है वही वास्तविक दर्वेश है। इस श्रेणी के दर्वेश केवल एक स्वामी की सेवा करते हैं। वे हर्ष-शोक से अभिभूत नहीं होते हैं, न उनके मन में क्रोध, गर्व अथवा लोभ होता है। लोक के वैभव उनके हृदय का हरण नहीं करते हैं। वे यथार्थ एवं विहित को पहचानते हैं। वे भगवान् के ही आदेश को सादर स्वीकार करते हैं, किसी अन्य के आदेश को नहीं। वे सदा भगवान् की महिमा के गान में प्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार के सन्तों के गुणों की इयत्ता का परिच्छेद वेद अथवा क़ुरान कोई ग्रन्थ नहीं कर सकता है।"[1]

शैख गुरु जी के प्रतिवचनों से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने शिष्य से कहा—'आश्चर्य! वस्तुतः आश्चर्य!! जिसने स्वयं परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है उससे अन्य क्या प्रमाण उपस्थित करने को कहा जाए! ऐसे व्यक्ति के दर्शन ही पर्याप्त हैं।'[2]

'मेहरबान जनमसाखी' का कथन है कि 'गुरु जी के दिल्ली पहुँचते ही जनता का हृदय भक्ति-भाव-मिश्रित महोल्लास से विह्वल हो उठा कि गुरु जी आ गए हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के दर्शक एवं धर्म-पिपासु अपने

---

१. 'पुरातन जनमसाखी' के शब्द हैं, पृष्ठ ५६।

"जीवता मरे जागत फुनि सोवे ॥
जानत आपु सुमावै ॥
सफन सफा होइ मिलै खालक कउ तउ दरवेसु कहावै ॥
तेरा जनु है को ऐसा दिलि दरवेसु ॥
सादी गमी तमक नही गुसा बुदी हिरसु नहीं इसु ॥
कंचनु खाकु बराबरि देखै हकु हलालु पछाणै ॥
आई तलब साहिब की माने अवरु तलब नाही जानै ॥
गगन मंडल महि आसणि बैठे अनहदु नाद वजावै ॥
कहु नानक साध की महमा बेद कुरानु न पावै।"
(यह 'शबद' गुरु ग्रन्थ साहिब में नहीं है।)

२. 'पुरातन जनमसाखी' पृष्ठ २८।

नगर में आए महान् साधु के दर्शनों के लिए घरों से निकल पड़े।"[1] 'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार उस अवसर पर सुल्तान की सवारी का एक हाथी मर गया। उस कारण से महावत रोने लग गए। उसका रोना सुनकर गुरु जी ने उस हाथी को जीवित कर दिया। उसी हाथी पर सवार होकर दिल्ली का सुल्तान श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए गुरु जी की सेवा में उपस्थित हुआ।

दिल्ली से लौटते हुए गुरुजी तथा मर्दाना मार्ग में एक सूफ़ी शैख से मिले। 'पुरातन जनमसाखी' में उसका नाम वजीद दिया गया है। शैख एक पालकी में सानन्द लेटा था, और छै सेवक उस पालकी को उठाकर चल रहे थे। जब एक छाया-शीतल स्थान में पहुँचकर सेवकों ने पालकी भूमि पर रखी तब शैख उससे बाहर आया। सेवकों ने भूमि पर गद्दा बिछा दिया। शैख उस पर बैठ गया, और सेवक उसे पंखा करने लगे तथा उसके अंग दबाने और मलने लगे। यह दृश्य मर्दाने को मनोरंजनकारी प्रतीत हुआ और उसने गुरु जी से प्रश्न किया—'महाराज ! परमात्मा एक है अथवा दो हैं ?' गुरु जी ने उत्तर दिया—'क्यों ? परमात्मा एक ही है।'

मर्दाने ने पुनः प्रश्न किया—'तब एक ओर इस पुरुष को देखिए, जो पालकी में यात्रा कर रहा है, और इसके अन्दर गद्दों के ऊपर लेटा भी श्रांत हो रहा है ; तथा दूसरी ओर इन छै पुरुषों को देखिए जिनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं, और जो इस पुरुष की पालकी को उठाकर दौड़ रहे थे, और अब इसके अंग दबा रहे हैं तथा इसे पंखे से हवा कर रहे हैं। इस पुरुष का, और इन सेवकों का स्रष्टा एक है अथवा पृथक्-पृथक् ?'

मर्दाने के मन का समाधान करते हुए गुरु जी ने कहा—'परमात्मा के कार्य मनुष्य की बुद्धि में नहीं आ सकते हैं। अकिंचनता में आढ्यता, और आढ्यता में अकिंचनता का कण्टक हो सकता है। जिस पर उसकी कृपा हो वही उसकी माया को कुछ समझ सकता है।'

हरिद्वार में गुरु जी, अन्य तीर्थ यात्रियों की भीड़ में, ब्रह्म कुण्ड के तट पर खड़े हुए। स्नान कर करके यात्री लोग पूर्वाभिमुख हो, अंजलि में जल भरते और उदीयमान सूर्य को लक्ष्य करके उसे जलधारा में छोड़ देते। गुरु जी ने पश्चिमाभिमुख होकर अंजलि भर-भर कर जल जलधारा में डालना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर लोग विस्मित हुए और सोचने लगे क्या कोई मनुष्य ऐसा भ्रष्ट कार्य भी कर सकता है। कुछ ने गुरु जी को उन्मत्त तथा कुछ ने मुसलमान समझा। शीघ्र ही उनके समीप एक भीड़ इकट्ठी हो गई और और लोग उनसे पूछने लगे—'तुम हिन्दू हो अथवा मुसलमान ? तुम पश्चिम

---

१. पृष्ठ ११४।

की ओर मुख करके अंजलि से जल-दान क्यों कर रहे हो? यह जल किसे मिलेगा?'

गुरु जी ने प्रतिप्रश्न किया—'तुम्हारे जल से किसका उपकार होगा?'

लोगों ने उत्तर दिया—'हम तो अपने पितरों को जल दे रहे हैं। यह पितृ-तर्पण है।' इस उत्तर को सुन कर गुरु जी और भी अधिक उत्साह से अपना पूर्वोत्तम कार्य करने लगे। व्यामुग्ध होकर यात्रियों ने प्रश्न किया—'पश्चिम दिशा में जल क्यों छोड़ रहे हो?' गुरु जी ने उत्तर दिया—'लाहौर के समीप मेरे खेत हैं। उनको पानी दे रहा हूँ।' इस उत्तर ने श्रोताओं का तनिक मनोरंजन किया, और उन्होंने पूछा—'इतने कोस दूर पानी कैसे पहुँचाया जा सकता है?'

गुरु जी ने जिज्ञासा प्रकट की—'हमारे पितर यहाँ से कितनी दूर होंगे? मेरे पानी को सरहिन्द पार करने की देर है। लाहौर सरहिन्द के समीप ही है; सरहिन्द से पानी बहकर सीधा लाहौर पहुँच जाएगा।'[1] अब लोगों को अनुभव हुआ कि यह साधारण मनुष्य नहीं है, और अब वे गुरु जी की बात सुनने के इच्छुक हो गए। गुरु जी ने उन्हें समझाया कि कोरा-धर्मात्मापन लाभदायक नहीं; परमात्मा का प्रेम सच्चा धर्म है।

आने-जाने वाले हीन जाति के लोगों की छाया से बचने के प्रयोजन से कुछ यात्रियों ने रसोई के स्थान के चारों ओर भूमि पर सीमा-चिह्न बना रखे थे। उनको देखकर गुरु जी ने एक 'शबद' पढ़ा। उन्होंने कहा अपवित्रता अन्दर से आती है, बाहर से नहीं। उन्होंने कहा—'वास्तविक नीच तो हमारे कुविचार, क्रौर्य, लोकापवाद और क्रोध हैं। यदि चारों नीच मन के अभ्यन्तर में बैठे हों तो शरीर के चतुर्दिक् सीमा-रेखाएँ बनाने का कोई लाभ नहीं। सत्य, संयम, सत्कर्मों की परिधि-रेखाएँ खींचो और भगवन्नाम के भजन को स्नान बनाओ। जिनके चरण पाप के मार्ग पर नहीं पड़ते हैं केवल वे ही पुण्यात्मा और पवित्र समझे जाएँगे।'[2]

हिमाचल की उपत्यका में, पूर्व दिशा में, चलते हुए गुरु जी तान्त्रिकों के प्रदेश में से निकले। कुमायूँ खण्ड में, अलमोड़े का राजा अपनी इष्ट देवी की प्रसन्नता के हेतु मानव-बलि दिया करता था। इस खण्ड में गुरु जी ने एकेश्वर पूजा के सिद्धान्त का उपदेश दिया, तथा वहाँ के राजा के धार्मिक विश्वासों में परिवर्तन किया। वहाँ से थोड़ी दूर, जंगल में नाथ योगी अथवा सिद्ध रहते थे। वे लोग शरीर को कष्ट देकर रहस्यात्मक अनुभूति तथा ऐन्द्रजालिक शक्ति

१. 'इका एहु सीरंदि लंघणी है, परै आपै जाइ पड़ैगा।'
—मेहरवान जनम साखी, पृष्ठ ११८।

२. गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरी रागु, पृष्ठ ९१।

प्राप्त करने की चिन्ता में साधारण सांसारिक जीवन से दूर रहकर तपस्या किया करते थे। वे एक ऐसे सम्प्रदाय के अनुयायी थे जिसमें बौद्ध, वज्रयान और हिन्दू भक्ति-काण्ड का योग था। साधारण जनता में उनके सम्प्रदाय के प्रति अच्छी श्रद्धा थी। नाथ योगी गोरखनाथ को अपना परम गुरु मानते थे। अतएव उनका निवास-स्थान गोरख मता (मठ) कहलाता था। उनका अरण्य-वास-स्थान एक प्रकार का दुर्ग था जिसमें प्रायः सम्प्रदायान्तर के अनुयायी का प्रवेश असम्भव था। वास्तव में, नाथ योगियों के विचित्र आचार एवं अनिश्चित मनोभाव से भीत अन्य मतावलम्बी पुरुष उनके वास-स्थान के समीप नहीं जाते थे। नाथों के ऐसे पीठ भारत वर्ष के अन्य भागों में भी थे।

पूर्वोक्त 'गोरखमते' के समीप पहुँचकर गुरु जी ने कहा 'सत् कर्तार' (संसार का श्रष्टा सत् है), और गुरु जी तथा मर्दाना एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। कुछ क्षण के अनन्तर उन्होंने सोचा शीत ऋतु की रात्रि को उष्ण रखने के लिए अग्नि लानी चाहिए। मर्दाना अग्नि लाने के लिए एक सिद्ध के समीप पहुँचा, जो धूनी के समीप सीधा बैठा था। उस सिद्ध ने मर्दाने को कठोर शब्द कहे और अग्नि नहीं लेने दी। अति विषण्ण मर्दाना रिक्त-हस्त लौटा तो गुरु जी ने सान्त्वना के वचन कहकर उसका मन शान्त किया। 'पुरातन जनम-साखी' के अनुसार गुरु जी जिस प्राचीन, शुष्क, वृक्ष के नीचे बैठे थे, वह पल्लवित हो गया। इस अद्भुत घटना को देखकर नाथ योगी विस्मित हो गए, और उनकी एक मण्डली वार्तालाप के लिए गुरु जी के समीप आई।

'युवक! तेरा गुरु कौन है? और, तूने किससे शिक्षा प्राप्त की है?' नाथ-मण्डली ने प्रश्न किया।

उसी समय गुरु जी ने एक 'शबद' पढ़ा। उसमें कहा गया था कि मेरा सेव्य गुरु अवर्णनीय है। 'उस परमात्मा के अतिरिक्त कौन गुरु अथवा शिक्षक हो सकता है! उस परमात्मा के गुणों का निरूपण कौन कर सकता है। मेरे प्रिय (प्रभु)! मैं तेरा अन्त नहीं प्राप्त कर सकता हूँ।'

सिद्धों को भासित हुआ कि हमें एक निर्व्याज योगार्थी मिल गया है। उन्होंने गुरु जी से नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने के लिए कहा—'योगी बन जाओ, और हमारे मत का वेष धारण कर लो। इस प्रकार तुम्हें सच्चा धर्म मिल जाएगा।' गुरु जी ने उत्तर में निम्नलिखित 'शबद' सुनाया—

"जोगु ना खिथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाई ऐ॥
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिङी वाईए॥
अंजन माहि निरंजन रहीऐ जोगु जुगति इव पाईऐ॥
गली जोगु न होई॥

एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहिऐ सोई ।।
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोग न ताड़ी लाईए ।।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाईऐ ।।
अंजन माहि निरंजन रहीऐ जोगु जुगति इव पाईऐ ।।"[१]

नाथ श्रद्धा से गुरु जी के सम्मुख नत-मस्तक हुए ।

इस भूखण्ड में गुरु जी के उपदेशों से बहुत लोगों के अन्ध-विश्वास नष्ट हो गए। उधर अभी तक कुछ लोग गुरु जी के अनुयायी हैं, और वे नानक पन्थी कहलाते हैं । ये लोग उन लोगों के वंशज हैं जो गुरु जी के जीवन-काल में उनके शिष्य हुए थे, यद्यपि इन लोगों के सिख सम्प्रदाय में श्री गुरु नानक के पश्चात् होने वाले विकास का ज्ञान नहीं है। कुमायूं का 'गोरखमता' 'नानकमता' के नाम से प्रसिद्ध हो चुका है, और यह स्थान उत्तर प्रदेश में पीलीभीत से पन्द्रह मील उत्तर-पश्चिम में है ।

'नानकमते' से चालीस मील पूर्व में एक अन्य स्थान गुरु जी के सम्बन्ध से तीर्थों की श्रेणी के अन्तर्गत है । जनमसाखियों से अर्वाचीन एक जनश्रुति है कि गुरु जी ने रीठा (संस्कृत, अरिष्ट)—वृक्ष के कटु फलों को मधुर बना दिया था : एक बार गुरु और मर्दाना जंगल में होकर जाने वाले मार्ग से जारहे थे। मर्दाने ने कहा—'मुझे भूख लग रही है।' गुरु जी ने कहा—'तुम्हारे सिर के ऊपर जो वृक्ष है उसकी शाखा हिलाओ।' मर्दाने ने शाखा हिलाई तो जो फल गिरे वे मधुर एवं अशनार्ह थे। वह वृक्ष अभी तक विद्यमान है, और तीर्थयात्री समस्त वर्ष उस स्थान की यात्रा करते, और उस वृक्ष के दर्शन करते, रहते हैं। उस वृक्ष की कतिपय शाखाओं के फल मधुर, किन्तु, वृक्ष की जाति के अनुसार, शेष शाखाओं के फल कटु होते हैं। श्रद्धालु तीर्थयात्री मधुर फल घर लाते हैं, तथा इनके खण्ड अपने सम्बधियों एवं मित्रों में प्रसाद रूप में वितीर्ण करते हैं। इस प्रकार, कदाचित् गुरुजी का प्रत्येक श्रद्धालु भक्त किसी न किसी समय उस दूरस्थ वृक्ष से अंशत: सिख संस्कार ग्रहण करने का अवसर प्राप्त करता है।

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, रागु सूही, पृष्ठ ७३० ।

९

सूली छोटी होकर काँटा बन गई

हिमगिरि के अंचल में पर्वतीय वन-भूमि से शनैः-शनैः नीचे उतरते हुए श्री गुरु नानक एवं मर्दाना भागीरथी के समतल प्रदेश की ओर अग्रसर हुए। 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है कि वर्षाऋतु का आगमन हो जाने से वे एक ग्राम में ठहर गए। गुरु जी का आगमन सुनकर समीप के नगर का एक आपणिक उनके दर्शनों के लिए आया। उसके अनन्तर तो वह सेवार्थ निरन्तर आता रहा। उसने व्रत ग्रहण कर लिया कि प्रतिदिन प्रातःकाल गुरु जी के दर्शन करके और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके ही भोजन करूँगा, अन्यथा नहीं।

उस गुरु-भक्त आपणिक के एक प्रतिवेशी अन्य आपणिक ने एक दिन उससे प्रश्न किया—'सुनिए बन्धु, आप प्रतिदिन उस ग्राम में क्यों जाते हैं? किस मित्र का आकर्षण आपको उधर ले जाता है? इससे पूर्व तो आप उस ग्राम में कभी-कभी ही जाते थे।' गुरु-भक्त ने उत्तर दिया—'वहाँ एक महात्मा जी पधारे हुए हैं। उनके दर्शनों से युगों के पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं। मैं प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व उनके दर्शनार्थ वहाँ जाता हूँ।' द्वितीय आपणिक ने कहा—'तब, मैं भी किसी दिन आपके साथ वहाँ चलूँगा।'

एक दिन दोनों आपणिक साथ-साथ गुरु जी के दर्शनों के लिए प्रस्थित हुए। किन्तु, द्वितीय आपणिक ने मार्ग में एक दासी-कन्या देखी, और उसके प्रेम में गुरु जी के दर्शन भूल गया। तदनन्तर वे दोनों प्रतिदिन नगर से साथ-साथ चलते; एक प्रेमिका से मिलने, अन्य गुरु-दर्शनार्थ। द्वितीय आपणिक को असन्दिग्धतया यह विदित नहीं था कि मेरा जीवन मेरे संगी के जीवन से कितना अधिक कलुषित है। उसने एक दिन जिज्ञासु-भाव से कहा—'बन्धु, मैं प्रतिदिन पापार्जनार्थ जाता हूँ, तू पुण्यार्जनार्थ। ईश्वर जाने मुझे क्या और तुझे क्या फल मिलेगा। अच्छा, आज हमारे जीवनों में जो घटनाएँ घटित हों

हम उनसे भावी सुफल-कुफल का अनुमान करें। यदि गुरु-दर्शन करके आप पहले लौट आएँ तो आप यहाँ ठहर कर मेरी प्रतीक्षा करें, और यदि प्रेमिका से मिलकर मैं पहले लौट आया तो मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा।'

'यथावत्' कह कर दोनों पृथक् हुए। द्वितीय आपणिक की प्रेमिका उस दिन घर नहीं थी। अतः वह शीघ्र नियत मिलन-स्थान पर आ गया। विषाद की दशा में उसने एक कंकर उठाई और उससे भूमि कुरेदने लगा। कुरेदते-कुरेदते उसे एक सुवर्ण मुद्रा मिल गई। तब उसने जेब में से चाकू निकाला, और कुछ अधिक गहरा खोदा। ऐसा करने से उसे एक घड़ा मिल गया, किन्तु यह कोयलों से भरा था।

इसी अन्तर में प्रथम आपणिक वहाँ आ पहुँचा। उसने एक पैर में जूता पहन रखा था, और एक जूता हाथ में ले रखा था।

'बन्धु, आपने एक जूता उतार क्यों रखा है? इसे पहन क्यों नहीं लेते?' द्वितीय आपणिक ने पूछा।

प्रथम आपणिक ने उत्तर दिया—'गुरु जी के दर्शन करके लौटते हुए मेरे पैर में काँटा चुभ गया। मुझे इस पर पट्टी बाँधनी पड़ी। अतएव इस पैर का जूता हाथ में ला रहा हूँ।'

विस्मित होकर द्वितीय आपणिक ने कहा कि मुझ पापी को आज एक सुवर्णमुद्रा मिल गई, और आप धर्मात्मा के पैर में काँटा चुभ गया! चलो, इसका कारण महात्मा जी से पूछें।

दोनों गुरु जी के समीप पहुँचे। उनका प्रश्न सुन कर गुरु जी ने कहा—'परमात्मा के कार्यों में कार्य-कारण की व्याख्या सरल नहीं है। कदाचित् एक के लिए सुवर्ण मुद्राओं का कोष कोयलों का घड़ा बन गया, और अन्य के लिए सूली काँटा बन गई। मनुष्य का कर्म चर्म-पट है और मन लेखनी। पुण्य और पाप उस पर अंकित होते रहते हैं। मनुष्य के कर्म उसके जीवन का निर्माण करते हैं। परन्तु परमात्मा की करुणा अनन्त है जो सब पदार्थों के रूप-गुण-आदि में परिवर्तन कर सकती है।'[1]

वर्षा ऋतु के अन्त पर गुरु जी उस ग्राम से चल दिए। मार्ग में उन्हें लुटेरों की एक टोली मिल गई। लुटेरों ने सोचा—'जिसके मुख-मण्डल पर ऐसी कान्ति है वह श्रीहीन नहीं हो सकता है। उसके बटुए में अवश्य विपुल धन-राशि होगी।' उन्होंने गुरु जी तथा मर्दाने को घेर लिया। परन्तु जब उन्होंने गुरु जी को ध्यान से देखा तब उनका साहस भग्न हो गया। गुरु जी ने उनसे पूछा—'तुम कौन हो?' उन्होंने उत्तर दिया—'हम ठग हैं। हम

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, मारू राग, पृष्ठ ९९०।

पथिकों को लूटकर मार डालते हैं।' गुरु जी ने कहा—'तब, जाओ, जहाँ वह धुआँ उठ रहा है वहाँ से अपने मारे हुए पथिकों को जलाने के लिए आग ले आओ।'

ठगों ने इससे पूर्व कभी किसी पथिक के मुख से ऐसे शब्द नहीं सुने थे। वे गुरु जी के उन शब्दों को सुनकर स्तब्ध हो गए। उनके मन ने कहा—'तुम्हें तुम्हारा मोक्षदाता मिल गया है।' उन्होंने गुरु जी के चरणों पर नत होकर सविनय प्रार्थना की—'महाराज हमारे दुष्कर्मों को क्षमा कीजिए। हम महापापी हैं।'

गुरु जी का हृदय दया से आर्द्र हो गया। उन्होंने कहा—'यदि तुम अपने इस जीविका-व्यवसाय का परित्याग कर दो तो तुम्हारे पाप क्षमा कर दिए जाएँगे। जाओ, तुमने लूट-लूट कर जो धन संचित किया है उसे दान कर दो। कृषिजीवी बनकर धर्मवृत्ति से जीवन यापन करो।'[1] गुरु जी के उपदेश से ठगों ने पश्चात्ताप किया और दुर्व्यवसाय को त्याग करके वे अपने-अपने घरों को चले गए।

शरद् ऋतु के प्रारम्भ में गुरु जी, हिन्दुओं में विष्णु भगवान् के अवतार के रूप में पूज्य, श्री रामचन्द्र की जन्मभूमि अयोध्या नगरी में पहुँचे।

चौदह वर्ष के बनवास की समाप्ति पर श्री रामचन्द्र के अयोध्या-प्रत्यागमन के उपलक्ष्य में जो उत्सव प्रतिवर्ष अत्यन्त प्राचीन काल से मनाया जाता है उस समय वहाँ उसी के मनाने की व्यवस्था हो रही थी। अन्य वर्षों के समान उस वर्ष भी वैष्णव साधु, 'वैरागी', देश के कोने-कोने से वहाँ आ रहे थे। अपनी भक्त-मण्डली के मध्य आसीन गुरु जी पर-ब्रह्म की स्तुति के 'शबद' गा रहे थे, और उपदेश दे रहे थे कि पड़ौसी के साथ प्रेम, तथा यथावसर उसकी सेवा, करने से ऐहिक कर्मों की शोभा बढ़ती है। उन कर्मों को करता हुआ ही मनुष्य पुण्यार्जन कर सकता है।

अयोध्या से दक्षिण में, गंगा-यमुना के संगम पर, हिन्दू-तीर्थ प्रयाग, वर्तमान इलाहाबाद, है। वहाँ संगम में स्नान महाशुभफलदायक माना जाता है। एक विशेष पर्व था, अतः वहाँ यात्रियों का सम्मर्द असामान्य था। उसी अवसर पर गुरु जी वहाँ आ पहुँचे। व्यवस्था तथा अवस्था गुरु जी की उपदेश-शैली के सर्वथा अनुरूप थी। यद्यपि भीड़ इतनी थी कि कन्धे से कन्धा छिल रहा था, तथापि गुरु जी उसी भीड़ में नदी-तट पर शान्ति से बैठ गए, और ईश्वर-स्तुति के 'शबद' गाने लगे। मर्दाना साथ में रबाब बजाता रहा। ज्योंही उनके होठों से एक मधुर स्वर-धारा प्रवाहित हुई त्योंही कई तीर्थ-यात्री

---

१ 'पुरातन जनमसाखी,' पृष्ठ ३८।

मन्त्र-मुग्ध से होकर वहाँ रुक गए। गुरु जी के वहाँ पहुँचने के क्षण से ही एक पण्डे की दृष्टि उन पर थी। चिल्लाता हुआ वह गुरु जी के समीप आया—'स्नान-काल व्यतीत हुआ जा रहा है। मैं देख रहा हूँ तुमने स्नान नहीं किया है। पाप-मार्जन का ऐसा सुअवसर तुम्हें जीवन में पुनः कभी प्राप्त नहीं होगा।'

गुरु जी ने पूछा—'क्या नदी में शरीर के धोने से मनुष्य के पाप धुल जाते हैं ? नदी-स्नान से मन का मैल कैसे दूर होगा ?' इतना कहकर गुरु जी एक अन्य 'शबद' गाने लगे। उसमें कहा गया—'शरीर के धोने से शुद्ध कौन हो सकता है ? वास्तव में शुद्ध वे हैं जिनके हृदय में भगवान् का वास है...।'

प्रयाग से पैंसठ मील पूर्व में वाराणसी है, जो हिन्दू-धर्म-शास्त्रों के अध्ययन का प्रसिद्ध केन्द्र है। प्रयाग से चलकर गुरु जी वहाँ पहुँचे। 'मेहरबान जनम-साखी' के अनुसार गुरु जी ने वहाँ सर्वत्र पण्डितों को धर्मशास्त्रों के अध्ययन में मग्न देखा। गुरु के सम्मुख भूमि पर बैठे शिष्य शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। वहाँ पाषाण-प्रतिमा-पूजक वैष्णव भी थे, तथा निर्वस्त्र होकर तपस्या में लीन साधु भी। कुछ लोग नगर से बाहर श्मशान भूमि में ध्यानस्थ अवस्था में बैठे थे...।"[1]

गुरु जी का वेष न तो गृहस्थ का था, न गृहत्यागी का। उससे लोगों का ध्यान उनकी ओर गया। चतुरदास नामक एक पण्डित-प्रवर आया और गुरु जी से पूछने लगा—'तुम किस धर्म को मानते हो ? तुम्हारे पास शालिग्राम जी भी नहीं हैं, और गले में तुलसी की माला भी नहीं है। न तुम्हारे पास जप-माला है, और न मस्तक पर पाण्डुर-तिलक। तुम किसकी भक्ति करते हो ?'

गुरु जी ने मर्दाने को रबाब बजाने का आदेश किया, और स्वयं एक 'शबद' की रचना की :—

"सालग्राम बिप पूजि मनावहु सुक्रितु तुलसी माला ॥
राम नामु जपि बेड़ा बांधहु दइआ करहु दइआला ॥
काहे कलरा सिंचहु जनमु गवावहु ॥
काची ढहगि दिवाल काहे गचु लावहु ॥
कर हरिहट माल टिंड परोवहु तिसु भीतरि मन जोवहु ॥
अंम्रितु सिंचहु भरहु किआरे तउ माली के होवहु ॥"[2]

---

१. पृष्ठ १३६।

२. गुरु ग्रन्थ साहिब, बसन्त हिण्डोल, पृष्ठ ११७१।

तात्पर्य—परमात्मा के नाम को अपना इष्टदेव शालिग्राम बनाओ, सत्कर्मों

चतुरदास को अपनी विद्या का गर्व था। उसने गुरु जी को काशी में कुछ काल ठहरने और विविध शास्त्रों का अध्ययन करने का आमन्त्रण दिया। उसने कहा—'इस नगर की विशिष्टता का कुछ अंश तो ग्रहण करो। यहाँ पर चतुर्दश विद्याओं का, अर्थात् वर्ण-शिक्षा, ज्योतिष, रासायनिकी, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, व्याकरण, कामतन्त्र, संगीत, गान, षड्राग, एवं उनकी रागनियाँ, अश्वारोहण, तरण, नृत्य, पुरातत्त्व तथा राजनय का अध्यापन होता है।' गुरु जी ने कहा—'मेरे लिए तो केवल एक शब्द ही वास्तविक मूल्य की वस्तु है। मैं तो उसी को वास्तविक पण्डित मानता हूँ जो लोक-सेवा में निरत रहता है।'

'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार गुरु जी ने 'दखनी ओंकार' नामक 'शबद' की रचना वाराणसी में ही की। यह चौवन पद्यों का एक लम्बा 'शबद' है, और इसमें 'सत्' भगवान् तथा उसकी सृष्टि के स्वरूप का निरूपण है। गुरु जी के प्रताप से पण्डित चतुरदास के हृदय में एक नवीन ज्ञान का उदय हुआ। वह गुरु जी के चरणों में लोट गया और उनका शिष्य हो गया। शनैः-शनैः गुरु जी की शिक्षाओं के प्रेमियों का एक वर्ग पण्डित चतुरदास का श्रोतृ-वर्ग हो गया।

जनमसाखी कहती है 'और बाबा ने अपना मार्ग लिया।'[1]

को तुलसी की माला। भगवान् की दया बेड़ा हो। अनुर्वर भूमि में पानी दे कर क्यों जन्म व्यर्थ खोते हो? कच्ची दीवार तो अवश्य गिरेगी। उस पर लेप निरर्थक है। सत्कर्मों की टिंड-माल बनाओ, और पहिए के साथ बैल के स्थान पर मन को जोड़ो। अमृत निकालो और इससे भूमि सींचो। तब वह माली (ईश्वर) तुम्हें अपना मानेगा।

१. मेहरबान जनमसाखी के अनुसार जब गुरु जी काशी में ठहरे हुए थे तब कबीरदास उनसे मिले थे। यद्यपि ऐसा होना ऐतिहासिक-काल-दृष्टि से असम्भव नहीं, तथापि उक्त दोनों सन्तों के पारस्परिक साक्षात्कार का समर्थक साक्ष्य सुलभ नहीं है। कबीरदास के आविर्भाव-काल के विषय में नाना मत हैं। एक मत के अनुसार कबीरदास ने १४४८ ई० में देह-त्याग किया। यह तिथि श्री गुरु नानक की जन्मतिथि से भी पूर्ववर्ती है। किन्तु यदि कबीरदास के देह-त्याग का एक अन्य प्रसिद्ध समय, १५१८ ई०, भी स्वीकार कर लिया जाए तब भी कोई ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है जो यह सिद्ध कर सके कि श्री गुरु नानक कबीरदास से मिले थे, अथवा उनको उत्तरोक्त की कृतियों का ज्ञान था। ग्रन्थसाहिब में कबीरदास की वाणी का समावेश पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन द्वारा किया गया था। किन्तु अन्य भक्तों की भी जो वाणियाँ श्री गुरु नानक की शिक्षाओं की भावना के अनुकूल थीं उन्हें भी गुरुग्रन्थसाहिब में स्थान मिला है। इन भक्तों में एक फ़रीद था जो कबीरदास से पूर्व हुआ, अन्य कबीरदास का समकालवर्ती रविदास, एवं तृतीय कबीरदास से उत्तरकाल में वर्तमान सूरदास था।

वाराणसी से पूर्व दिशा में चल कर गुरु जी फल्गुनदी के वाम-तट पर स्थित गया पुरी में पहुँचे। गया में ही सिद्धार्थ को 'बोध' की प्राप्ति हुई थी, परन्तु गुरु जी के समय में गया में हिन्दू धर्म का प्राधान्य था। हिन्दू लोग पितरों का श्राद्ध करने के लिए, विशेष रूप से, गया जाते हैं, और कदाचित् वे साथ ही साथ बुद्धधर्म का भी श्राद्ध कर डालते हैं;—बुद्धधर्म, जिसे हिन्दू धर्म ने उसकी अपनी जन्म-भूमि से निर्वासित कर दिया है। विश्वास किया जाता है कि गया में पैंतालीस स्थानों में से किसी एक पर भरे पिंड पितृलोक में पितरों की क्षुधा निवृत्त कर देते हैं, तथा वहाँ जलाए दीप उस लोक में उनके मार्ग में प्रकाश कर देते हैं।

गया में पंडों ने गुरु जी और मर्दाने को घेर लिया, और उनमें से प्रत्येक कहने लगा—'हमसे श्राद्ध करवाओ।' गुरु जी ने यह कह कर पितृ-श्राद्ध करना अस्वीकृत कर दिया कि परलोक में मनुष्य को इस लोक में किए कर्मों का फल-मात्र मिलता है। उनके नाम से दी हुई कोई वस्तु परलोकगतों को भोजनदायक अथवा तृप्तिकारक नहीं हो सकती है। उनका कथन है :—

"पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिआ सचु नामु करतारु ॥
ऐथे ओथै आगै पाछै एहु मेरा आधारु ॥"[१]

गया में जो लोग गुरु जी के भक्त हो गए उनमें अन्यतम बुद्ध गया का प्रधान पुरोहित देवगिर था। जब गुरु जी गया से अन्यत्र चले गए तब वही 'संगत' की आयोजना करता रहा, और गुरु जी का सन्देश जनता को सुनाता रहा। कहा जाता है कि देवगिर के शिष्य का शिष्य भगवान् गिर सप्तम गुरु श्री गुरु हर राय जी (पीठकाल १६४४-६१ ई०) से मिला था और उसने उनसे उपदेश लिया था।[२] गया जिले में धनर्जी के वाम तट पर स्थित राजौली भी गुरु जी की यात्रा के प्रसंग में उल्लेखनीय है। राजौली नगर में कल्हनशाह नामक एक फ़क़ीर रहता था। वह पवित्र जीवन तथा घोर तपस्या के कारण विख्यात था। गुरु जी से मिलकर उसने शान्ति प्राप्त की, तथा उनकी शिक्षाओं को हृदयंगम किया। राजौली में दोनों महात्माओं के दो स्मारक एक दूसरे के समीप विद्यमान हैं। कल्हनशाह का स्मारक 'छोटी संगत' कहलाता है। इसकी देख-रेख एक मुसलमान पीर करता है, और यहाँ पर एक धूनी

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा रागु, पृष्ठ ३५८।

तात्पर्य—मैं भगवान् ही को पिंड और भगवान् ही को पत्तल मानता हूँ। जगत्-कर्ता का सत्य नाम ही मेरे लिए मोक्षदायिनी क्रिया है। इस लोक में, पर-लोक में, आगे-पीछे, भगवान् का नाम ही मेरा आधार है।

२. भाई सन्तोखसिंह: श्री गुरु परताप सूरज ग्रन्थ, भाग ६, पृष्ठ ३५७२-७६।

कल्हनशाह के समय से अहर्निश प्रज्वलित रहती है। श्री गुरु नानक का स्मारक 'बड़ी संगत' के नाम से प्रसिद्ध है, और एक उदासी साधु इसका अधिष्ठाता है।

अब उत्तर-पूर्व को चल कर गुरु जी और मर्दाना, गंगातट पर स्थित, पाटलिपुत्र, वर्तमान पटना, पहुँचे। मर्दाने ने कहा—'मैं थक गया हूँ, और भूखा हूँ।' गुरु जी ने उसे एक छोटा सा पत्थर दिया, जो उन्होंने जंगल में उठा लिया था, और कहा—'नगर में जाकर तुम्हें जो चाहिए इससे मोल ले आओ।' मर्दाने ने वह पत्थर बहुत दुकानदारों को दिखाया, परन्तु सब ने अनादरपूर्वक उसे लौटा दिया। अन्त में मर्दाना सालिस राय नामक एक रत्न-वणिक् के समीप पहुँचा। सालिस राय ने उस पत्थर को परख कर देखा कि उस पर किसी ने जादू कर रखा है। उसने पत्थर मर्दाने को लौटाते हुए कहा कि मैं इस अमूल्य पत्थर के स्वामी से मिलना चाहता हूँ। इतना कहकर उसने अपने सेवक अधरक्के को आदेश देकर कुछ फल एवं उपहार की अन्य वस्तुएँ मँगवाईं और वह मर्दाने के साथ गुरु जी की सेवा में उपस्थित हुआ। वह एवं उसका सेवक अधरक्का दोनों गुरु जी के शिष्य, और उनके उपदेश तथा कार्य के समर्थक, हो गए। अधरक्के की सेवा भी उतनी ही मूल्यवती समझी गई है जितनी सालिस राय की। जब गुरु जी पटने से प्रस्थित हो गए तब ये गुरु जी के भक्तों के मण्डल के संयुक्त संचालक रहे। अधरक्के के वंशधर गुलाब राय और घनश्यामदास, पटने में जन्म ग्रहण करने वाले श्री गुरु गोविन्द सिंह के समय में वहाँ के धर्माधिकारी थे। सालिस राय का वंशज फ़तेह चन्द मैनी श्री गुरु गोविन्द सिंह का एक प्रिय शिष्य था।"[1]

बंगाल में से होकर गुरु जी कौरु अर्थात् कामरूप (असम) पहुँचे। यह उस समय जादू का देश कहलाता था। 'पुरातन जनमसाखी' में एक जादूगरनी द्वारा मर्दाने के ऊपर किए गए जादू की कथा वर्णित है: क्षुधा से पीड़ित होकर मर्दाने ने गुरु जी से निवेदन किया—'आज्ञा दीजिए, नगर से कुछ खाने के लिए ले आऊँ।' गुरु जी ने कहा—'तुम्हें जाना ही है तो अवश्य जाओ। परन्तु भूल न जाना यह कौरु देश है और यहाँ स्त्रियों का शासन है।'

जब मर्दाना एक गली में जा रहा था, तब अपने घर के द्वार पर खड़ी एक स्त्री उसे बुलाकर घर के अन्दर ले गई। ज्यों ही मर्दाने ने ड्योढ़ी के अन्दर पैर रखा, त्योंही वह मेष बना दिया गया और रस्सी से बाँध दिया गया। उसका अन्वेषण करने के लिए गुरु जी नगर आए और उसी घर में गए जहाँ मर्दाना मेष बना बँधा खड़ा था। उन्होंने जादूगरनी से कहा कि यह

---

१. गिआनी ग्यान सिंह : त्वारीख गुरु खालसा, पृष्ठ १६५ (पादटिप्पण)।

SIKHBOOKCLUB.COM

मेरा साथी है, इसे मुझे दे दो। जादूगरनी ने गुरु पर भी जादू चलाने का यत्न किया। जब उसने देखा कि मेरा जादू नहीं चल रहा है तब उसने मन्त्रबल से जादूगरनियों को बुलाते हुए कहा—'जहाँ हो तत्काल आ जाओ।' 'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार 'वे अपना-अपना जादू लेकर आ गईं। एक वृक्ष पर चढ़ कर आई, अन्य हरिण के चर्म पर, कुछ चन्द्रमा पर, अन्य भित्ति पर, अन्य अपने साथ सिंह लाईं। अन्य ढोल बजाती आई।"[१] अब, वे अपने साथ जो धागा लाई थीं उसमें ग्रन्थि लगाकर अपना जादू चलाने का प्रयास करने लगीं, परन्तु व्यर्थ। गुरु जीने मर्दाने केऊपर दृष्टिपात किया, और जादू टूट गया।

सबके अन्त में जादूगरनियों की रानी, नूरशाह, अपनी परिचारिकाओं को साथ लेकर आई। उसने अपना समस्त जादू चलाया, किन्तु सब निष्फल। तब उसने अपने साथ की स्त्रियों से कहा कि अत्यन्त मोहक रीति से नाचो तथा गाओ। वह मोतियों, मणियों, रत्नों, सोने, चाँदी, मूंगे, कपूर और चित्रमय रेशमी कपड़ों की विपुल राशियाँ लिवाकर अपने साथ लाई थी। उसने उन सब को गुरु जी के सम्मुख खोल कर रख दिया। तब गुरु जी ने एक 'शवद' की रचना की :—

> "आपु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अउरु कैसी चतुराई ॥
> सहु नदरि करि देखै सो दिनु लेखै कामणि नउ निधि पाई ॥
> आपणे कन्त पिआरी सा सोहागणि नानक सा सभराई ॥
> ऐसै रंगि राती सहज की माती अहिनिसि भाइ समाणी ॥
> सुंदरि साइ स्वरूप बिचखणी कहीऐ सा सिआणी ॥"[२]

पश्चात्ताप सूचित करने के लिए नूरशाह ने अपना रूमाल अपने गले पर लपेट लिया, और नत होकर गुरु जी को प्रणाम किया। उसने जादूगरनी का कार्य छोड़ दिया, और अपनी परिचारिकाओं के साथ गुरु जी की शिक्षाओं की अनुयायिनी हो गई।

'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार कलियुग ने भी गुरु जी के मनोबल की परीक्षा की थी : जब एक दिन गुरु जी तथा मर्दाना एक अन्य-मार्ग पर चल रहे थे, कलियुग ने इतनी प्रबल झंझावत प्रवाहित कर दी कि वृक्ष भी उड़ने

---

१. पृष्ठ ४०।

२. गुरु ग्रन्थ साहिब, तिलंग रागु, पृष्ठ ७२२।

तात्पर्य—अपने आपको मिटाया जाए तब वह (पति) मिलता है, चतुराई का क्या काम। जिस दिन वह (पति) कृपा की दृष्टि से देखता है उसी दिन मानो कामिनी नवनिधि प्राप्त कर लेती है। नानक! जो अपने कान्त की प्रिया है वही सौभाग्यवती, शुभ्रा, अहर्निश आमोद-प्रमोद में लीन है; वही सुन्दरी, सुरूपा, विचक्षणा है, उसी को ज्ञानवती कहना चाहिए।

लग गए। जनमसाखी का कथन है कि मर्दाना तो भय से पाषाण हो गया, और उसने गुरु जी से कहा—"सच्चे बादशाह, ! आप तो मुझे मरवाने के लिए इस निर्जन वन में लाए हैं। यहाँ तो मुझे कफन अथवा क़ब्र भी नहीं मिलेगी।"

गुरु जी ने समझाया—'शान्त रहो, व्याकुल न हो।' मर्दाना बोला—'अपने जीवन में आज तक मैंने कभी ऐसी विपत्ति नहीं देखी है। न जाने आज मेरी इस दुर्बल देह को क्या दुःख सहना पड़ेगा!' तब अग्नि-काण्ड का प्रदर्शन हुआ। चारों दिशाओं में धुँआ उठने लगा, और चारों दिशाएँ विद्युत्-तुल्य ज्वाला-मालाओं से व्याप्त हो गईं। 'अब कौन जीवित रहेगा?' कह कर मर्दाना मुंह ढककर भूमि पर लेट गया। अब प्रलय की सृष्टि हुई: गगन निबिड मेघों से आच्छन्न हो गया, और मुसलाकार जलधाराएँ पृथ्वी को प्रताडित करने लगीं। परन्तु वर्षा का जल गुरु जी से कुछ दूर गिरा।

'मर्दाने! सिर उठा।' गुरु जी ने कहा, 'उठ और रबाब बजा।' मर्दाने ने उठ कर रबाब के तारों को झंकृत किया। उस समय गुरु जी ने गौड़ी राग में निम्नलिखित 'शबद' गाया:—

"डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ॥
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ॥
तुधु बिनु दूजी नाहीं जाइ॥
जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु॥
डरि डरि डरणा मन का सोरु॥
ना जीउ मरै न डूबै तरै॥
जिनि किछु कीआ सो किछु करै॥
हुकमे आवै हुकमे जाइ॥
आगै पाछै हुकमि समाइ॥"

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, गउड़ी रागु, पृष्ठ १५१।

तात्पर्य—यदि भगवान् का भय हृदय में है तो अन्य समस्त भय भाग जाते हैं। यदि मनुष्य लौकिक भय में रहेगा तो उसका मन परमात्मा के भय से शून्य रहेगा। भगवान्! मेरे लिए आपके विना अन्य शरणस्थल नहीं है। संसार में जो कुछ होता है आपकी ही इच्छा से होता है। यदि ईश्वर के भय के अतिरिक्त कोई अन्य भय हैं तो भीत होते रहो। भय का जीवन अशान्ति का जीवन है। आत्मा अमर है, वह डूबती भी नहीं है। यह भगवान् की कृपा से भवसागर से तर जाती हैं। जिसने इस जगत् का निर्माण किया है, वही सब कुछ कर रहा है। सब उसी के आदेश से उत्पन्न होते हैं। उसी के आदेश से मृत। उसी का आदेश सर्वत्र व्याप्त है।

जनमसाखी कहती है कि तब कलियुग अभ्रङ्कषशरीरधारी घोर दैत्य बन कर वहाँ आया। किन्तु वह ज्यों-ज्यों गुरु जी के समीप आता गया त्यों-त्यों उस का शरीर लघु होता गया। गुरु जी के सम्मुख पहुँचकर वह पूर्णतया मानवाकार हो गया। वह बद्धांजलि होकर खड़ा हो गया और बोला—'तू स्वयं लोक-स्रष्टा का दूत है। तुझे मेरा नमस्कार है।'[1] अब मर्दाने को विदित हुआ कि मेरा भय निर्मूल था, और समापतन्ती विपत्ति दूर से अतिदीर्घ प्रतीत होती थी।

असम के निवासी तन्त्र-मार्गी थे, और ऐन्द्रजालिक कर्मों में उनका गहरा विश्वास था। गुरु जी ने दूर-दूर तक भ्रमण करके वहाँ के निवासियों को सदुपदेश दिया। वहाँ उनकी यात्रा के कई स्मारक हैं। उनमें प्रसिद्धतम, ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तट पर, धुबरी का गुरद्वारा है। वहाँ गुरु जी अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय तक ठहरे थे और कहा जाता है, वैष्णव समाज-संशोधक शंकरदेव से मिले थे। भारत के पूर्वीय खण्ड में यात्रा करते हुए स्वयं श्री गुरु तेगबहादुर ने, १६६७ ई० में, इस स्थान का अनुसन्धान किया था। उन्होंने श्री गुरु नानक की चरण-धूलि से उज्ज्वलीकृत इस स्थान का पता लगाकर गुरु जी का स्मारक एक चत्वर बनवा दिया था। श्री गुरु नानक धुबरी से पूर्व दिशा में चलकर गौहाटी, तथा वहाँ से मनीपुर पहुँचे। यहाँ[2] पर गुरु जी तथा मर्दाना दोनों के प्रति विलक्षण तिरस्कार-भावना अभिव्यक्त की गई। यहाँ के निवासियों ने गुरु जी के उपदेशों की ओर अतिन्यून ध्यान दिया। 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है कि गुरु जी और मर्दाना जहाँ बैठते थे, उनके उठ जाने के पश्चात् 'बिसिअर' के निवासी उस स्थान को धोते थे। कारण, उनका विश्वास था कि अपरिचित आगन्तुकों के स्पर्श से यह स्थान अशुद्ध हो गया है। परन्तु उन्हीं के मध्य झण्डा नामक, भक्त-स्वभाव, एक बढ़ई था। जिस वस्तु को अन्य लोग नहीं देख सके, उसको उसने देख लिया। वह गुरु जी को अपने घर ले गया, और उनकी संगति से उसे अगाध हर्ष हुआ। उसने यह शुभसूचना

---

१. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ ४४।

२. 'पुरातन' जनमसाखी के अनुसार अब गुरु जी 'बिसिअर' देश में थे। 'बिसिअर' देश की स्थिति के सम्बन्ध में भौगोलिकों में ऐकमत्य नहीं है। Macauliffe (Sikh Religion, Vol. I, p. 93)। 'बिसिअर' शब्द से शिमले के समीप 'बुशैर' का ग्रहण करता है। गिआनी ग्यानसिंह (त्वारीख गुरु खालसा पृष्ठ १८४) के अनुसार बिसिअर मनीपुर का समीपवर्ती प्रदेश है। गुरु जी की यात्रा की शृंखला को देखते हुए उत्तरोक्त मत अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। भाई वीरसिंह (गुरु नानक चमत्कार, भाग १, पृष्ठ २६२) ने यही मत स्वीकार किया है।

अपने एक जिज्ञासु-मित्र इन्द्रसेन को दी। इन्द्रसेन वहाँ के राजा का भतीजा था। झंडा और इन्द्रसेन दोनों गुरु जी के शिष्य हो गए। गुरु जी के वहाँ से प्रस्थान करने के पश्चात् झन्डा उस प्रदेश की 'संगत' का संरक्षक तथा संचालक रहा। 'बिसिअर' से गुरु जी ने दक्षिण-पश्चिम को जाने वाला मार्ग ग्रहण किया, और इम्फाल, सिलचर, सिलहट तथा ढाका[1] होते हुए वे बंगाल की खाड़ी के तट पर पहुँचे और वहाँ से समुद्र-यात्रा करके जगन्नाथपुरी आ गए।

भगवान् विष्णु का ही गुणवाचक नाम जगन्नाथ है। जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ-मन्दिर में भगवान् विष्णु के अवतार कृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित है। प्रत्येक वर्ष, ग्रीष्म ऋतु में, वह मूर्ति रथ में बैठाई जाती है, और रथ समारोह-पूर्वक नगर में घुमाया जाता है। यह यात्रोत्सब कहलाता है। इस अवसर पर दूर-दूर से सहस्रशः तीर्थयात्री पुरी पहुँचते हैं, और अहमहमिकया रथ को खींचने में अपना सौभाग्य तथा मान समझते हैं। कई तो रथ के पहियों के नीचे कुचल-मरने को महत् पुण्य-कर्म मानकर आत्म-हत्या कर लेते थे। गुरु जी और मर्दाना अनेक शताब्दी-पुरातन उस मन्दिर के समीप एक स्थान में ठहर गए। मर्दाने के रबाब के मधुर स्वर भक्त-श्रोताओं के हृदयों पर जादू करने लगे और उनमें नवीन उत्साह भरने लगे। कई लोग गुरु जी का उपदेशामृत पान करने के लिए 'संगत' में सम्मिलित होने लगे। इससे मन्दिर के पुजारी गुरु जी पर कुपित होने लगे, और कहने लगे—'यह मन्दिर के अन्दर आकर देव-मूर्ति की पूजा क्यों नहीं करता है?' एक दिन पुरी का राजा, जिसका नाम कृष्णलाल दिया गया है, गुरु जी के समीप आया, और उसने उनसे मन्दिर के अन्दर चल कर आरति में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। गुरु जी ने उसके साथ मन्दिर में चलने की स्वीकृति तत्काल दे दी।

रात्रि का प्रारम्भ होने पर पुजारियों ने दीपक जलाए, और भक्त-गण जिसकी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था वह प्रभूत-द्रव्य-साधित आरति होने लगी। रत्न-जटित थाल में पुष्प और धूप कलापूर्ण हाथ से रखे गए थे, उनके मध्य घृत-दीप जल रहे थे। देव-मूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर पुजारी श्रद्धा-समन्वित आदर-भाव से उस थाल को दोनों हाथों से झुला रहा था, और देव-स्तुति का उच्चारण कर रहा था; उसके पीछे खड़े अन्य भक्त भी उसके साथ स्तुति-पाठ कर रहे थे; घड़ियाल और शंख बज रहे थे। गुरु जी आरति-

---

१. अचिरपूर्वकाल तक ढाके के बाहर गुरु जी के स्मारक एक धर्म-स्थान तथा एक कुए के ध्वंसावशेष थे। नगर में 'चरणपादुका' नामक एक धर्मस्थान था। 'चरणपादुका' नाम से ही प्रसिद्ध धर्मस्थान, जिनमें पादुकाएँ सुरक्षित हैं, श्रीनगर, कोटद्वार, जूनागढ़ इत्यादि नगरों में भी हैं। कहा जाता है इन धर्मस्थानों में सुरक्षित पादुकाएँ श्री गुरु नानक की हैं।

काल में मौनी हो एक स्थान पर बैठे रहे। आरति की समाप्ति पर पुजारी ने उनके इस आचरण को अनुचित समझ कर इसकी चर्चा की तो गुरु जी के मुख से निम्नलिखित 'शबद' निकला :—

"गगनमैं थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूप मलआनलो पवणु चवरु करे. सगल बनराइ फूलंत जोती ॥
कैसी आरती होइ भव खंडना तेरी आरती ॥
अनहता सबद बाजंत भेरी ॥"[१]

गुरु जी ने श्रोताओं के प्रबोधनार्थ कहा कि प्रकृति जगत् स्रष्टा की जो स्तुति कर रही है वह देव-मूर्ति के सम्मुख की हुई रीति-रूढि-समाश्रित स्तुति से उत्तम है।

एक साधु निरन्तर आँखें बन्द करके मन्दिर के बाहर बैठा करता था। गुरु जी और मर्दाने ने कई दिन तक उसे इसी स्थिति में देखा। उसने घोषित कर रखा था कि मैं इस प्रकार बैठकर तीनों लोकों में जो कुछ हो रहा है उसे देख सकता हूँ। उस साधु के सम्मुख पीतल का एक लोटा रखा रहता था, और उधर से निकलने वाले कई भक्त उसमें पैसा डाल देते थे। एक दिन गुरु जी ने विनोदार्थ धीरे से उसका लोटा उठाया और उसी की पीठ के समीप रख दिया। लोटे में गिरने वाले पैसों की ध्वनि बंद हुई तो उसका कारण जानने के लिए साधु ने आँखें खोलीं, और अपना लोटा सम्मुख न देख कर कोलाहल आरम्भ कर दिया। गुरु जी वहीं खड़े ही थे। उन्होंने कहा—'तुम्हारा लोटा तुम्हारे पीछे है।' गुरु जी का यह मनोविनोद वहाँ खड़े तीर्थयात्रियों के लिए भी हास्यकारक हुआ। 'त्रिलोक-दर्शी' साधु वहाँ से चला गया, और फिर कभी वहाँ दिखाई नहीं दिया।

जगन्नाथपुरी में श्री गुरु नानक समाज-संशोधक, प्रसिद्ध, बंगाली, वैष्णव सन्त श्री चैतन्य महा प्रभु (१४८६-१५३३ ई०) से मिले। लिखित साक्ष्य के अनुसार दोनों सन्त परस्पर मिलते रहे तथा ईश्वर-स्तुति का संयुक्त गान करते रहे।[२]

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, धनासरी रागु, पृष्ठ ६६३।
तात्पर्य—आकाश थाल है, सूर्य-चन्द्र दीपक हैं, नक्षत्रमण्डल मुक्ता-गण है, मलयानिल धूप है, वायु चामर-चालक है, समस्त वनराजि शुभ्र पुष्प हैं, अनाहत शब्द भेरी-वादन है। जन्म-मरण-चक्र के निवारक प्रभो! आपकी कैसी विलक्षण आरति हो रही है।

२. ईश्वरदास : Chaitanya Bhagavata (Chapters 61 and 64), an Oriya manuscript, preserved by Oriental Society, Cuttock, and quoted by B. B. Majumdar in Chaitanya Charitra Upadana published by Calcutta University, Calcutta.

१०

तलवंडी को प्रत्यावर्तन

अब मर्दाने ने गुरु जी से कहना आरम्भ किया कि हम बहुत दीर्घ यात्रा कर चुके हैं, अब हमें घर लौटना तथा परिश्रान्ति दूर करने के लिए विश्राम करना चाहिए। गुरु जी ने 'तथास्तु' कहकर मर्दाने की इच्छा पूर्ण की। किन्तु मर्दाने की कतिपय परीक्षाएँ अभी शेष थीं।

घर की दिशा में चलते हुए गुरु जी मध्य-भारत में जिन आदिवासियों के क्षेत्र में से निकले उनको उपदेश देते गए। इस खंड में एक दिन मर्दाना भोजन की मार्ग में मार्गणा से दूर चला गया और एक दानव दस्यु के वश में पड़ गया। 'बाला जनमसाखी' में उस दस्यु का नाम कौड़ा दिया गया है।[1] वह नर-भक्षी जाति का प्रमुख था। वह जिस मनुष्य अथवा पशु को पकड़ लेता था उसे पकाने के लिए उसके घर में एक कड़ाह में तेल सर्वदा खौलता रहता था। यदि गुरु जी, मर्दाने के पीछे-पीछे, उसके घर यथासमय न पहुँच जाते तो दस्यु-गृहीत अन्य प्राणियों के तुल्य मर्दाना भी तेल में पका दिया जाता। दस्यु के स्थान पर पहुँचते ही गुरु जी ने नमस्कार-वाक्य कहा—'सत् करतार।' उनके इस वाक्य के गुंजन ने कौड़े को चौंका दिया। उसने गर्दन घुमाकर गुरु जी को देखा तो उसका हृदय अभूतपूर्व भाव-तरंग से उद्वेलित हो उठा। उसने कभी किसी पुरुष में इतनी कृपालुता, कोमलता, शान्ति एवं निर्वृति नहीं देखी थी। उसने मर्दाने को बन्धन-मुक्त कर दिया, और स्वयं गुरु जी के चरणों में नत हो गया। 'बाला जनमसाखी' का कथन है कि उसने गुरु जी के उपदेश को ग्रहण कर लिया, और गुरु जी ने उसे स्व-जाति-जनों में नवीन धर्म के प्रचार

---

१. यह कथा चारों प्रमुख जनमसाखियों में है ; परन्तु उनमें घटना-स्थल के सम्बन्ध में तथा विवरण में अन्तर है। यहाँ जो वृत्तान्त दिया गया है वह उत्तरकालीन अनुश्रुति का संवादी अधिक है।

का कार्य सौंप दिया। कहा जाता है कि गुरु जी तथा मर्दाना कौड़ा के घर सात दिन ठहरे रहे।[1]

मध्य भारत के विशाल निर्जन वन में चलते-चलते गुरु जी तथा मर्दाना एक बार ऐसे अरण्य-खंड में से निकले जहाँ कई दिन तक उन्हें कोई मनुष्य नहीं मिला। मर्दाना भयाकुल हो गया, और उसके पास जो स्वल्प खाद्य-सामग्री थी उसके समाप्त हो जाने से उसे घोर नैराश्य ने अभिभूत कर लिया। अन्ततोगत्वा उसने कहा—'महाराज! आपके साथ प्रेम का मुझे यह फल मिल रहा है! मैं एक साधारण डूम था, और ग्राम में गा-गाकर तथा भीख माँग-माँग कर जीविकोपार्जन करता था। अब सब कुछ जाता रहा। इस दुर्गम गहन वन से बाहर निकलने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। बस, गरजता हुआ कोई सिंह वृक्षों के झुरमुट में से निकल आएगा, और वहीं मेरा प्राणान्त हो जाएगा। मैं आशा बाँध रहा था कि एक दिन आपके पिता तथा राय बुलार को आपकी यात्राओं के विनोदकारी वृत्तान्त सुना-सुनाकर हँसाऊँगा, और उपहार में उनसे रेशमी वस्त्र प्राप्त करूँगा। परन्तु वैसा करने के लिए अब कौन जीवित रहेगा!'

उसे धैर्य बँधाते हुए गुरु जी बोले—"साहस-त्याग न करो, और मैं एक 'शबद' गाता हूँ, तुम रबाब बजाओ।" मर्दाने ने अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—'मुझ में तो गज़ उठाने की भी शक्ति नहीं है।'

'अच्छा, तुम्हारे सिर के ऊपर जो शाखा झुकी हुई है उसके फल तोड़कर खाओ, तुम में शक्ति आ जाएगी,' गुरु जी ने कहा, 'पेट भरकर खा लो, परन्तु झोले में एक न डालना।'

फल स्वादिष्ठ थे। मर्दाने ने सोचा—'मैं पेट भरकर खाऊँगा भी, और कुछ फिर खाने के लिए रखूँगा भी। सम्भव है फिर चिरकाल तक ऐसे मधुर फल खाने को न मिलें।' और उसने वैसा ही किया।

कालान्तर में क्षुधित होने पर मर्दाने ने एक फल मुख में डाला। परन्तु ज्यों ही फल कण्ठ से नीचे उतरा, उसने पीड़ा से विवश होकर पेट पकड़ लिया और गुरु जी के चरणों में गिरकर अपना अपराध स्वीकार किया: 'महाराज! आपने कहा था कि मन भरकर फल खा लेना, परन्तु साथ के लिए कुछ न रखना। परन्तु मैंने रख लिए। उनमें से मैंने एक ही फल खाया था कि मेरी यह दशा हो गई। महाराज! यह डूम सदा ही भूखा रहता है। आप इसे शारीरिक आवश्यकताओं से मुक्त करके इसकी भूख सदा के लिए शान्त क्यों नहीं कर देते?'

---

१. पृष्ठ ९०।

'मर्दाने ! उठ', गुरु जी ने सान्त्वना दी। 'तू इस लोक और परलोक, दोनों, में कल्याण-भाजन हुआ।'[1]

मर्दाना उठ खड़ा हुआ। उसने अनुभव किया कि पीडा शान्त हो चुकी है, तथा मन प्रकाश से पूर्ण हो गया है।

अब गुरु जी और मर्दाना गहन निर्जन वन से बाहर निकलकर मानव-जगत् में आए, और एक ग्राम में पहुँचे। यहाँ लोगों ने उनका उपहास किया, तथा, और तो क्या ? बैठने के लिए स्थान तक नहीं दिया। 'प्रभो ! यह ग्राम फूलता-फलता रहे।' कहकर गुरु जी आगे चल दिए। तत्पश्चात् वे जिस ग्राम में पहुँचे वहाँ उनकी यथोचित सेवा-शुश्रूषा हुई। गुरु जी वहाँ केवल एक रात्रि रहे। प्रातःकाल चलने से पूर्व गुरु जी ने कहा—'यह ग्राम उजड़ जाए।' इन शब्दों को सुनकर मर्दाना व्यामोह में पड़ गया। उसने निवेदन किया—'महाराज ! आप अच्छा न्याय करते हैं ! जिस ग्राम में आपको विश्रामार्थ स्थान नहीं दिया गया उसे आपने समृद्ध होने का आशीर्वाद दिया, परन्तु अभिनन्दनकारी ग्राम को आप उजाड़ रहे हैं ! आपकी लीला मेरी समझ में नहीं आती है।'

गुरु जी ने मर्दाने को समझाया—'प्रथम ग्राम के निवासी वहीं रहेंगे तो अच्छा होगा ; क्योंकि, उस अवस्था में उनका आचार व्यवहार उस ग्राम तक ही सीमित रहेगा। परन्तु द्वितीय ग्राम के निवासी अपने ग्राम का त्याग करके अन्यत्र जाएँगे तो अन्य लोग भी उनके शिष्टाचार का अनुकरण करके लाभान्वित होंगे।'

गुरु जी जिन ग्रामों तथा नगरों में से निकलते रहे उनमें एक नूतन आध्यात्मिक जागरण उत्पन्न करते रहे और यात्रा करते-करते पंजाब की सीमा पर आ गए। उन्होंने पाकपट्टन पर, जिसका प्राचीन नाम अजोधान था, सतलुज नदी को पार किया। पाकपट्टन[2] प्रख्यात मुसलमान सूफ़ी सन्त शैख फ़रीद का निवास-स्थान होने के लिए प्रसिद्ध था। यह अनेक शताब्दियों से एक विख्यात

---

१. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ ५६।

२. 'पाकपट्टन' का अर्थ है 'पवित्र तट अथवा घाट।' इस स्थान के इस नामकरण के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति है : ईसवीय तेरहवें शतक में रहस्य-मार्गी सूफ़ी सन्त शैख फ़रीद-उद्-दीन शकरगंज इस स्थान पर रहता था, और यहीं उसने शरीर त्याग किया था। इस स्थान के समीप एक ग्राम में ग़ाज़ी तुग़लक़ बेग नामक एक निर्धन युवक था। शैख फ़रीद के आशीर्वाद से वह मुलतान का राज्यपाल, और अन्त में दिल्ली का सुलतान हो गया था। सुलतान बनने के पश्चात् वह कभी अजोधान आया, और शैख फ़रीद के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के निमित्त उसने नगर में एक जल-नाली खुदवा दी। यह इतनी

व्यापारी नगर और सतलुज को उतरने का प्रसिद्ध स्थान भी था। जिष्णु महमूद तथा तैमूर ने एवं पर्यटक इब्नबतूता ने इसी स्थान पर सतलुज को पार किया था। १३६८ ई० में अपने रक्त-पिपासु अभियान के काल में तैमूर ने इस नगर पर, और भय से पलायन के पश्चात् अवशिष्ट यहां के निवासियों पर इसी हेतु कोप-प्रहार नहीं किया था कि यहाँ क़ब्र-सुप्त सूफ़ी सन्त के प्रति उसके मन में श्रद्धा थी।

श्री गुरु नानक के पाकपट्टन पहुँचने के समय शैख फरीद के पवित्र मक़बरे का अधिष्ठाता उसका बारहवाँ प्रशिष्य शैख इब्राहीम था। अपने परम गुरु शैख फरीद के ही समान उसका जीवन भी पवित्र तथा भोजनादि के सम्बन्ध में कठोर-व्रत-पालक था। इसी हेतु उसके भक्त एवं अनुयायी उसे द्वितीय फ़रीद कहते थे। जनमसाखियों में उसका नाम शैख ब्रह्म (इब्राहीम का संक्षिप्त रूप) अथवा शैख फ़रीद दिया गया है। शैख इब्राहीम का नियम था कि वह अधिक समय ध्यान में मग्न होकर निर्जन स्थान में बैठा रहता था, और स्वेच्छा से एक कठोर धार्मिक अनुशासन का पालक था। दैववश गुरु जी का वहाँ आगमन उस समय हुआ जब शैख ऐसी तपस्या में लीन था। वे उनसे मिलने जंगल में गए। जनमसाखियों में, विशेषत: 'पुरातन जनमसाखी' में, दोनों सन्तों का वार्तालाप उस भाषा में दिया गया है जिसमें दार्शनिक शैली और काव्य की रूपक-प्रधान शैली दोनों का रंग है।

गुरु जी का गृहस्थोचित साधारण वेष देखकर शैख इब्राहीम ने विशिष्ट वचोभंगि से कहा :—

"संसार और भगवान् दोनों में से किसी एक की ही कामना करो। दो

गहरी, और इसकी धारा इतनी वेगवती थी कि इसे पार करने के लिए नाव का घाट बनाने की आवश्यकता हो गई। एक दिन सायंकाल शैख फ़रीद घाट पर आया। उसने देखा कि नाली के तरंगित जल पर सूर्य के प्रकाश की चादर फैली है, उज्ज्वल वस्त्र धारण किए लोग स्नान कर रहे हैं और जल भर ले जा रहे हैं, तथा नौकाएँ धारा में आ जा रही हैं। उस दृश्य को देखकर उसके हृदय में हर्षोद्रेक हुआ और वह सहसा बोल उठा—'ऐ, क्या पाक पट्टन!' उस दिन से अजोधान नाम का स्थान पाक पट्टन नाम ने ग्रहण कर लिया। किन्तु आईने अकबरी में इसका नाम 'पट्टन' दिया गया है, पाकपट्टन नहीं। सम्भवत: इस स्थान पर शैख फ़रीद का जो मक़बरा है उसके कारण पट्टन शब्द के साथ उसका विशेषण 'पाक' (पवित्र) किसी उत्तरकाल में संयुक्त कर दिया गया है। देखिए मिंटुमरी ज़िले का गज़टिअर (Gazetteer of the Montgomery District), १८८३, पृ० २८।

नौकाओं में पैर न रखो। ऐसा न हो तुम्हारा धन-माल डूब जाए।"[1]

गुरु जी का प्रतिवचन था :—

"दो नौकाओं में पैर रखो और दो में ही धन-माल। एक नौका डूब जाएगी, तो दूसरी तट पर पहुँच जाएगी। जो सत्य का, नित्य वस्तुओं का व्यापार करते हैं, उनके लिए न कोई समुद्र है, न नौका, न डूबने और हानि का भय।"[2]

उन्होंने शैख़ से कहा कि प्रभु की प्राप्ति के लिए संसार का त्याग अपेक्षित नहीं है। सांसारिक जीवन तथा भक्ति-मार्गीय जीवन के मध्य सामंजस्य का ज्ञान ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग है। शरीर तो नश्वर है, किन्तु सच्चा जिज्ञासु बनकर जीवन व्यतीत करने से अन्य नौका, आत्मा, नष्ट होने से बचाई जा सकती है।

परन्तु शैख़ सहमत नहीं हुआ, और उसने एक पद्य सुनाया। उसने कहा :—

"यदि तू इस जादूगरनी से छुटकारा नहीं पा सकता तो, फ़रीद, संसार तुझे असत्यता का अनुरागी बना देगा। मनुष्य के देखते-देखते खेत उजाड़ दिया जाता है।"[3]

गुरु जी ने कहा—'फरीद ! जादूगरनी के प्रति प्रेम आदिकाल से ही चला आ रहा है। यदि स्वामी सावधान होगा तो खेत नहीं उजड़ेगा।'[4]

SIKHBOOKCLUB.COM

शैख़ ने अनुभव किया कि मुझे सच्चा प्रकाशदाता मिल गया है। उसका

---

१. 'पुरातन जनमसाखी' (पृष्ठ ८७) के शब्दों में :—

"अके ता लोड़ु मुकद्दमी अकै तै अलहु लोड़ु ॥
दुहु बेड़ी नां लत धरु मतु वंवहु वखरु बोड़ि ॥"

२. 'पुरातन जनमसाखी' (पृष्ठ ८७) के शब्दों में :—

"दुही बेड़ी लत धरु दुही वखरु चाड़ि ॥
कोई बेड़ी डूबसी कोई लंघै पारि ॥
ना पाणी न बेड़ीआ ना डूबै ना जाइ ॥
नानक वखरु सचु सहजे कहिआ समाई ॥"

(यह गुरु ग्रन्थ साहिब में नहीं है)

३. 'पुरातन जनमसाखी' (पृष्ठ ८७) के शब्द हैं :—

"फरीदा चूड़ेली सिउ रतिआ दुनिआ कूड़ा भेतु ॥
नानक आखी देखदिआ उजड़ि वंवै खेतु ॥"

४. 'पुरातन जनमसाखी' (पृष्ठ ८७) के शब्द हैं :—

"फरीदा धुरहु-धुरहु होंदा आइआ चूड़ेली सिउ हेतु ॥
नानक खेत न उजड़ै जे राखा होइ सुचेतु ॥"

स्वर परिवर्तित हो गया, और वह बोला :—

"मेरा शरीर दुर्बल है, मन जीर्ण है, और मेरी समस्त शक्ति क्षीण हो चुकी है। प्रिये ! तू भिषक् बनकर मुझे नीरोग कर।"[१]

गुरु जी ने पुनः पुनः एक ही शिक्षा दी, जो सम्भव है शेख के कानों को पूर्व-परिचित प्रतीत हुई हो। उन्होंने कहा—"अपने सच्चे मित्र को पहचान। वह तेरे अपने हृदय में है। तेरा प्रेम-पात्र तुझ से दूर नहीं है।'

परन्तु शेख इब्राहीम विषण्ण स्वर में एक पद्य बोला। उसने कहा :—

"जब समय था तब मैंने बेड़े का निर्माण नहीं किया; और अब जब समुद्र में उत्ताल तरंगें प्रलय मचा रही हैं तब समुद्र के उत्तरण की आशा व्यर्थ है। जो दूध दुह लिया गया है वह थनों में वापिस नहीं जाएगा। इसी प्रकार जो आत्मा एक बार पृथक् हो चुका है वह पुनः संयोग को प्राप्त नहीं हो सकेगा। फ़रीद का कथन है, मित्रो ! एक दिन प्रेम-पात्र का आह्वान होगा, और तब इस मिट्टी के पुतले को छोड़कर हंस उड़ जाएगा।"[२]

इस पर गुरु जी ने यह 'शबद' पढ़ा :—

"जप तप का बंधु बेड़ुला जितु लंघहि वहेला ॥
ना सरवरु ना ऊछलै ऐसा पंथ सुहेला ॥
× × ×
जे गुण होवहि गंठड़ीऐ मेलेगा सोई ॥
मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिआ होई ॥
आवागउणु निवारिआ है साचा सोई ॥
हउमै मारि निवारिआ सीता है चोला ॥
गुर बचनी फलु पाइआ सह के अंम्रित बेला ॥

१. 'पुरातन जनमसाखी' (पृष्ठ ८८) के शब्द हैं :—
"फरीदा तनु रहिआ मनु फाटिआ तागति रही न काइ ॥
उठ पिरी तबीब थीओ काही दारू लाइ ॥"

२. 'पुरातन जनमसाखी' (पृष्ठ ८८) के शब्द हैं :—
"बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला ॥
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला ॥
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला ॥
इक आपीनै पतली सह केरे थोला ॥
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला ॥
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाएसी ॥
हंसु चलसी डूंमणा अहि तनु ढेरी थीसी ॥"

नानकु कहै सहेलीहो सहु खरा पिआरा ॥
हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा ॥"[1]

इस प्रकार वार्तालाप चलता रहा, और, जैसा जनमसाखी में कथित है, गुरु जी तथा शैख इब्राहीम दोनों समग्र रात्रि जंगल में रहे। एक ग्रामीण अपने घर से दूध से भरा कटोरा लाया। उसने गुप्त रूप से उसमें चार सुवर्ण मुद्राएँ डाल दीं, और उसे शेख के आसन के समीप रख दिया। थोड़ा सोने के पश्चात् शैख उठ बैठा, और ध्यान में मग्न होने से पूर्व उसने उस कटोरे में से आधा दूध अपने गिलास में डालकर पी लिया। उस समय गुरु जी विश्रामार्थ लेट चुके थे। प्रातःकाल होने पर शेष दूध गुरु जी को देते हुए उसने आत्म-प्रशंसा के शब्दों में कहा—'जागते को परमात्मा देता है।'

'ईश्वर के दया-दान के विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता', गुरु जी बोले। 'वह किन्हीं को जगाकर इतना दया-दान देता है कि उन्हें उसका सँभालना कठिन हो जाता है।' इतना कहकर गुरु जी शैख से बोले—'कटोरे की तली में देखो क्या है।'

प्रभातकाल में जब वह ग्रामीण वहाँ आया तो दोनों सन्त वहाँ से जा चुके थे ; किन्तु उसका कटोरा वहीं रखा था, और, जैसा जनमसाखी का कथन है, उसने कटोरे को उठाया तो देखा कि वह सुवर्ण का हो गया था, तथा सुवर्ण-मुद्राओं से पूर्ण था। इस पर उसे बहुत दुःख हुआ, और वह मन में कहने लगा—'वे महात्मा लोग थे। यदि मैं चाहता तो उनसे नित्य-सत्य-ज्ञान प्राप्त कर सकता था। किन्तु मैं सांसारिक इच्छा लेकर आया, और मैंने संसार ही प्राप्त कर लिया।'[2]

पाक पट्टन से प्रस्थित होकर गुरु जी और मर्दाना चलते-चलते तलवंडी आ गए। समीप पहुँचकर जब पूर्व-परिचित, धूलि-धूसर, ग्राम के घरों की चोटियाँ दिखाई दीं तब गुरु जी रुक गए और बैठ गए। मर्दाना अविलम्ब ग्राम में प्रवेश

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, सूही रागु, पृष्ठ ७२६।

तात्पर्य—भक्ति का बेड़ा बनाकर तुम सुगमता से भव-सागर से पार हो सकते हो। तब यह मार्ग इतना सुगम हो जाएगा कि इसमें उथला अथवा गहरा कोई स्थान नहीं होगा.........यदि तुम्हारी गाँठ में गुण है तो वह (परमात्मा) अवश्य मिलेगा, और ऐसा मिलेगा कि फिर कभी बियोग नहीं होगा। वह सत्य परमात्मा जन्म-मरण का निवारण कर देता है। जिसने अहंकार मिटा दिया, वही प्रिय से मिलने योग्य अलंकृत नारी है। गुरु के उपदेश के अनुसार चलने से मुक्ति फल मिल जाता है। नानक कहता है, सहेलियो ! वह परमप्रिय है। हम उसकी दासियाँ हैं, वह हमारा वास्तविक पति है ॥

२. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ ५१।

करने को उत्सुक था। उसने गुरु जी से प्रार्थना की—'मुझे ग्राम में जाने की अनुमति दीजिए। मैं देखूँ मेरा परिवार जीवित है, अथवा मेरे पीछे पालक-पोषण के अभाव से भूखा मर गया है।' गुरु जी ने सस्मित समझाया—चिन्तित न हो। भगवान् सबका पालक-पोषक और रक्षक है। परन्तु यदि तुम आतुर हो तो जाओ और अपने कुटुम्ब से मिलो।

मर्दाने ने गुरु जी का चरण-स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया, और चल दिया। पुराने मार्ग को शीघ्रता से पार करके वह अपने घर के आँगन में आ पहुँचा। मर्दाने की कृश मूर्ति को अकस्मात् मानो किसी असत् लोक से आ टपकती हुई देखकर उसके परिवार ने अपनी आँखों पर विश्वास नहीं किया। अस्तु, समस्त ग्राम में सूचना प्रसृत हो गई कि मर्दाना डूम घर लौट आया है। क्षणमात्र में उसके घर में अनेक ग्राम-वासी इकट्ठे हो गए। उन्होंने मर्दाने के चरण छू कर कहा—'यह तो पूर्णतया गुरु नानक की प्रतिमा है। यह पूर्णतया परिवर्तित हो गया है। यह संसार से भी बृहत्तर हो गया है।'[1] मर्दाना गुरु जी के घर गया तो उसे देखते ही गुरु जी की माता तृप्ता के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए। उसने आतुरता से पूछा—'पुत्र मर्दाने! मेरा नानक कहाँ है? तूने उसे कहाँ छोड़ दिया? तू उसका क्या समाचार लाया है?' गुरु नानक के विषय में मर्दाने के लाए हुए समाचार को सुनने के लिए सब पड़ोसी पिता कालू के घर में इकट्ठे हो गए।

'जब महाराज सुलतानपुर में थे तब यह डूम उनके साथ था', मर्दाने ने कहना आरम्भ किया। 'मुझे पता नहीं वे वहाँ से कहाँ चले गए।' मर्दाने ने इससे अधिक कुछ नहीं कहा, तथा लोगों के प्रश्नों के उत्तरों में इधर-उधर की बातें बनाता रहा। तत्पश्चात् वह उठकर चला गया।

माता तृप्ता ने सोचा—'क्या कारण है कि मर्दाना लोगों की भीड़ में से यूँ उठकर बाहर चला गया? इसमें कोई रहस्य है!' कुछ कपड़े और मिठाई एक कपड़े में बाँधकर वह शीघ्रता से उसी दिशा में चलती गई जिसमें मर्दाना गया था। इस प्रकार मर्दाना और तृप्ता दोनों वहाँ पहुँच गए जहाँ गुरु जी बैठे थे। माता को देखते ही गुरु जी ने उठकर उसके चरण छूकर प्रणाम किया। माता तृप्ता हर्ष से रोने लगी, और कहने लगी—'पुत्र! मैं तेरे बलिहार जाऊँ। मैं तेरे नाम पर और तेरे देखने पर बलिहार जाऊँ। जिस मार्ग पर तेरे पैर पड़े हैं, और इस समय तू जिस स्थान पर खड़ा है मैं उस पर बलिहार जाऊँ। तूने अपना मुँह दिखाकर मुझे भाग्यवती बना दिया है।' इसी बीच में, ग्राम में पिता कालू ने समाचार सुना। वह घोड़े पर चढ़कर पूर्ण

१. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ ५६-५७।

SIKHBOOKCLUB.COM

शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचा। गुरु जी ने उसके चरणों को छू कर नमस्कार किया। पुत्र से मिलकर पिता मन में प्रसन्न हुआ, और चिर-वियुक्त पुत्र को घर ले जाते हुए उसने गर्व का अनुभव किया।

अब तो तलवंडी तथा समीपवर्ती ग्रामों के बहुत लोग गुरु जी के दर्शनों के निमित्त तथा उनसे उपदेश ग्रहण करने के लिए आने लगे। जो उनके समीप आता गुरु जी उसे यही उपदेश देते कि एक निराकार जगत्-कर्ता में विश्वास रखो, तथा सत्कर्म करने का प्रयत्न करो। वे इससे अधिक प्रायः कुछ न कहते। उनके सरल शब्द श्रोताओं के हृदयों में उतर जाते। वे लोग जब वापिस जाते तो ऐसा अनुभव करते कि हमारे मन की अशान्ति दूर हो गई है और हमें नवीन ज्ञान प्राप्त हो गया है। गुरु जी प्रतिदिन कुछ समय राय-बुलार के समीप बैठते, जो उनका प्रथम प्रशंसक था तथा जो अब अतिवृद्ध हो गया था। मर्दाना अपने मित्रों में बैठता तो उनको विचित्र-विचित्र दूर देशों में की हुई अपनी कठिन यात्राओं की कथा-वार्ताओं का प्रीति-भोज देता।

तलवंडी में कुछ काल रहकर गुरु जी सुलतानपुर के लिए चल दिए। वे वहाँ १५०९ ई० की शरद् ऋतु में पहुंचे।[1] इस प्रकार, गुरु जी की चार प्रमुख यात्राओं में प्रथम की समाप्ति हुई। इस यात्रा में तेरह से अधिक वर्ष व्यतीत हुए। बहिन नानकी तथा बहिनोई जैराम के लिए गुरु जी का सुलतानपुर वापिस आना परम हर्ष का हेतु था। उनके प्रत्यागमन से नवाब दौलत खाँ भी आनन्दित हुआ, तथा उनके अनेक शिष्य एवं भक्त भी अतिप्रसन्न हुए, जो अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा अपने धर्म-विश्वास के नवीकरण के लिए निरन्तर उनकी सेवा में उपस्थित होते रहते थे। गुरु जी की पत्नी और पुत्र भी सुलतानपुर में आकर उनके साथ रहने लगे।

---

१. गिआनी गिआन सिंह : त्वारीख गुरु खालसा, पृष्ठ २२२।

११

श्रीलंका की यात्रा

श्री गुरु नानक पुनः यात्रार्थ सुलतानपुर से प्रस्थित हो गए। उत्तर पश्चिम को चलकर उन्होंने गोइन्दवाल के घाट से व्यास नदी को पार किया। नदी के पार एक ग्राम से बाहिर एक झोंपड़ी थी। उन्होंने उसका द्वार खटखटाया। उसमें एक कुष्ठी फ़क़ीर रहता था। फ़क़ीर ने द्वार खोला और गुरु जी अन्दर चले गए। आगन्तुक से यह सुनकर कि मैं यहाँ रात्रि में विश्राम करना चाहता हूँ फ़क़ीर ने कहा—'दयालु महाराज! वन के पशु तक भी मुझसे दूर भागते हैं। परमात्म की कृपा है कि आप मुझ अकिंचन की कुटी में आए हैं।' गुरु जी वहाँ रहे, और उन्होंने एक 'शबद' का उच्चारण किया। उसमें कहा गया है—"जो परमात्मा की आज्ञा का विस्मरण कर देता है, वह असाध्य रोगों से पीडित रहता है। उसके आत्मा को निरन्तर कष्ट रहता है। उसे घोर क्लेश और दुःख सहने पड़ते हैं। उसका परिदेवन निष्फल है। कारण, परमात्मा, जो सबका स्रष्टा और पालक है, हमारे अन्तःकरण में गुप्त, अनुक्त भावों एवं विचारों का भी ज्ञाता है। जिन मनुष्यों के मनों पर इस लोक से विदा होने के समय पाप के धब्बे होंगे उन्हें परमात्मा के दरबार में स्थान नहीं मिलेगा। जिन पर भगवान् की कृपा रहती है वे उसका नाम जपते रहते हैं। वे नरक से बच जाते हैं। विपत्ति में भगवान् उनका ध्यान रखते हैं। परमात्मा दयालु है। वह अपने भक्तों का रक्षक है।"[१]

'पुरातन जनमसाखी' का कथन है—'गुरु जी की दया-दृष्टि पड़ते ही वह फ़क़ीर रोग से मुक्त हो गया, उसका शरीर पूर्ण हो गया। वह गुरु जी के चरणों में नत हुआ, तथा गुरु जी के उपदिष्ट भक्ति-मार्ग का अनुयायी हो गया। तब, बाबा ने अपना मार्ग लिया।'[२]

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, धनासरी, पृष्ठ ६६१।

२. पृष्ठ ६७।

गुरु जी उत्तर-पश्चिम दिशा में ही चलते रहे। वैरौंवाल एवं जलालाबाद होकर वे कीरी पठाना पहुँचे। इस ग्राम के पठान मुसलमानों ने उनके उपदेशों को सुना और उनके श्रद्धालु हो गए। वे विन्दपुर पहुँचे तो वहाँ के निवासियों ने अपने परिवार की रीति-प्रथाओं का त्यागकर देने के लिए गुरु जी की निन्दा की, और उनको उस ग्राम में नहीं रहने दिया। लाहौर में दुनीचन्द नामक एक धनाढ्य वणिक् के घर में गुरु जी का अभिनन्दन हुआ। उस समय दुनीचन्द अपने पिता का वार्षिक श्राद्ध कर रहा था। हिन्दू लोग श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन खिलाते हैं, और उनका विश्वास है कि ब्राह्मणों को खिलाया भोजन पितरों को मिल जाता है। दुनीचन्द के द्वार पर एक-एक लाख रुपए के सात झन्डे लगे थे। गुरु जी के प्रश्न करने पर दुनीचन्द ने उन्हें बताया कि ये झन्डे मेरी संचित सम्पत्ति के परिणाम के सूचक हैं। जनमसाखी का कथन है कि तब गुरु जी ने दुनीचन्द को एक सूई देकर कहा कि इसे आप हमारीधरोहर समझकर रख लें। इसे हम आपसे परलोक में ले लेंगे। इस विचित्र प्रार्थना को सुनकर दुनीचन्द हत-बुद्धि होगया। वह सूई लेकर अपनी पत्नी के समीप गया, और उसने गुरु जी के शब्द उसे सुनाकर पूछा—'अब क्या करना उचित है?' उसकी पत्नी ने उत्तर दिया--'जाओ, सूई गुरु जी को लौटा दो। कौन इस लोक से कोई वस्तु अपने साथ परलोक ले जा सकता है!'

दुनीचन्द वापिस आकर गुरु जी के चरणों में नत हो गया। वह जान गया कि मेरी सम्पदा मेरे साथ परलोक नहीं जाएगी, और न ही श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाया भोजन मेरे पिता को प्राप्त होगा। गुरु जी ने उसे समझाया—'भगवान् के नाम से दान करो। भूखों को भोजन खिलाओ। इस प्रकार तुम कुछ अपने साथ परलोक ले जा सकोगे।'[1] दुनीचन्द ने गुरु जी का धर्म ग्रहण कर लिया और उसने अपना जीवन उनके उपदेशों के प्रसार के लिए अर्पित कर दिया।

गुरु जी स्वल्पकाल के लिए पुनः तलवंडी तथा सैदपुर गए, और फिर, उत्तर में, हिमाचल के चरणतल में स्थित, प्राचीन नगर सिआलकोट पहुँचे। वे ज्योंही एक बेरी के वृक्ष के नीचे बैठे[2], त्योंही उन्होंने सुना कि हम्ज़ा गौस नामक एक सूफ़ी फ़क़ीर ने नगर को नष्ट होने का शाप दे दिया था और अब

१. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ ८३।

२. वह वृक्ष अब तक सुरक्षित है। वहाँ एक सिख गुरद्वारा है। उसका नाम है बेरबाबा नानक, अथवा बेर साहिब। १९४७ ई० में पंजाब के विभाजन के समय सिआलकोट पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया। तब तक उस गुरद्वारे में प्रतिवर्ष वैशाखसंक्रान्ति के दिन मेला लगा करता था। देखिए Gazetteer of the Sialkot District (1883) P P. 37.

वह उस शाप की सिद्धि के लिए चालीस दिन का घोर कष्ट सहन कर रहा है। शाप देने का कारण यह है कि नगर के गंगा नामक एक क्षत्रिय ने ग़ौस से जो प्रतिज्ञा की थी उसने वह पूर्ण नहीं की। इसकी सविवरण कथा इस प्रकार है: गंगा निरपत्य था। उसने ग़ौस से सन्तान-प्राप्ति का आशीर्वाद देने की प्रार्थना की, और कहा कि मैं अपना प्रथम बालक आपको दे दूंगा। आप उसे अपना शिष्य बना लीजिएगा। गंगा के तीन पुत्र हुए। परन्तु वह अपना वचन पालन करने को प्रस्तुत न हुआ। उसने पुत्र के स्थान पर धन देकर वचन-मुक्त होने का यत्न किया। इससे ग़ौस का क्रोध प्रज्वलित हो उठा, और वह मिथ्या-भाषियों के नगर को दण्ड देने के उद्देश्य से गुम्बददार एक छोटे से कमरे में अकेला बैठा उपवास कर रहा है। गुरु जी ने ग़ौस से मिलने का यत्न किया; परन्तु जितनी बार मर्दाना ग़ौस की ओर गया उसके सेवकों ने यह कहकर उसे रोक दिया कि हम अपने स्वामी के सशपथ प्रारब्ध तप में विघ्न नहीं डाल सकते हैं।

नगर निवासियों के मन में प्रबल उद्वेग उत्पन्न करने वाला चालीस दिन का समय व्यतीत हो गया। ग़ौस कमरे से बाहर आया, और गुरु जी के समीप पहुँचा। उसका क्रोध अभी तक शान्त नहीं हुआ था। गुरु जी बोले—'तुम्हें एक मनुष्य के पाप के कारण सकल नगर निवासियों को अपराधी नहीं मानना चाहिए। सम्भव है उनमें कई पुण्यात्मा तथा बुद्धिमान् हों।' तत्पश्चात् परीक्षार्थ गुरु जी ने मर्दाने से कहा—'जाओ दमड़ी का सत्य और दमड़ी का असत्य मोल ले आओ।' गुरु जी ने उसे जो चिटें दी थीं मर्दाना उन्हें प्रत्येक आपणिक को दिखाता हुआ नगर में घूमता रहा। उसकी विलक्षण प्रार्थना से सब लोग चकित होते रहे। परन्तु वहाँ मूला नामक एक आपणिक भी था। उसने मर्दाने से चिटें ले लीं, और एक चिट के पृष्ठ पर लिख दिया—'जीवन असत्य है' तथा दूसरी पर—'मृत्यु सत्य है।' इन उत्तरों ने ग़ौस का क्रोध शान्त कर दिया। उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि नगर में सभी लोग उस दण्ड के अधिकारी नहीं हैं जो मैं निर्विवेक सामूहिकतया सबको देना चाहता था।

मूला के मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ, और वह उठकर मर्दाने के साथ चल पड़ा। गुरु जी के सामीप्य से उसकी तृप्ति हो गई और वह उनका भक्त हो गया।

गुरु जी सिआलकोट से सुलतानपुर वापिस आ गए। अब वे द्वितीय उदासी (धर्म-प्रचार-यात्रा) के लिए उद्यत हुए, जिसका प्रारम्भ १५१० ई० में हुआ।

गुरु जी सतलुज नदी को पार करके भटिंडा पहुँचे, जो कभी पंजाब के एक शक्तिमान् राज्य की राजधानी था। यहाँ वे स्वल्प-काल ठहरे। उनकी यात्रा का स्मारक गुरद्वारा नगर से बाहर बना हुआ है। प्रायः दो सौ वर्ष

पश्चात् भटिंडे की यात्रा दशम गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह ने भी की। भटिंडे से चलकर गुरु जी सिरसे पहुँचे।[1] यहाँ उस समय सूफ़ी सन्त निवास करते थे। उन्होंने योग बल से सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं, ऐसा प्रसिद्ध था। गुरु जी उनके समीप चार मास से अधिक ठहरे, तथा उन्होंने सूफ़ियों को समझाया कि सन्त की जितनी शोभा दयालुता एवं पवित्रता में है उतनी योगलभ्य सिद्धियों में नहीं। सिरसे से दक्षिण-पश्चिम में बीकानेर में गुरु जी एक जैन मठ में ठहरे। वहाँ के प्रधान सन्त ने गुरु जी से प्रश्न किया—आप नया अन्न खाते हैं अथवा पुराना ?' फिर उसने कहा कि जो मनुष्य (१) नया एवं पूरा दाना खाता है, (२) ठन्डा और अनिष्पीडित पानी पीता है, और (३) फल खाने के लिए वन के वृक्षों को हिलाता है, वह जीव-हत्या करता है ; उसका यह पाप कभी क्षमा नहीं किया जाएगा। गुरु जी ने कहा—'क्षमा तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर के हाथ में है।' उस समय उन्होंने इस 'शबद' की रचना की :—

"सतिगुरु होइ दइआलु त सरधा पूरीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु न कबहूँ झूरीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता दुखु न जाणीऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता हरि रंगु माणिऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता जम का डरु केहा ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता सद ही सुखु देहा ॥
सतिगुरु होइ दइआलु ता नवनिधि पाईऐ ॥
सतिगुरु होइ दइआलु त सचि समाईऐ ॥"[2]

---

१. गिआनी ग्यानसिंह (त्वारीख़ गुरु खालसा, पृष्ठ २२३) का कथन है कि श्री गुरु नानक सिरसे में १५ आषाढ (सौर) १५६६ वि० (११ जून १५१० ई०) को पहुँचे और वहाँ चार मास ग्यारह दिन ठहरे। उनके अनुसार यह तिथि भाटों की एक दैनिकी (Diary) से प्रमाणित होती है। वह दैनिकी अब प्राप्य नहीं है। यदि गिआनी ग्यानसिंह का कथन स्वीकार कर लिया जाए तो यह तिथि श्री गुरु नानक की जीवनी में सुसिद्ध तीन-चार तिथियों में एक होगी। भाट लोग अपने प्रदेश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते थे, और अपने संरक्षकों का इतिहास विवाह इत्यादि के उत्सवों पर सुनाते रहते थे, तथा नवीन जन्म-विवाहादि की घटनाओं को काग़ज़ों पर लिख लेते थे। भाटों के ये काग़ज़ इतिहास का अनुसन्धान करने वालों के लिए बड़े महत्त्व के हैं ; परन्तु अभी तक उनकी ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया है। हरद्वार के पण्डा भी अपनी बहियों में इसी प्रकार के इतिहासोपयोगी अनेक तथ्य अनेक शताब्दियों से अंकित करते आ रहे हैं। अभी तक इतिहास ने उनका भी यथोचित उपयोग नहीं किया है।

२. गुरु ग्रन्थ साहिब, वार माझ, पृष्ठ १४६।

फिर उन्होंने कहा—'वस्तुओं की सृष्टि और रक्षा करने वाला भगवान् ही है। कोई अन्य रक्षक होने का दावा नहीं कर सकता है। कई लोग पानी का प्रयोग कम से कम करते हैं, यहाँ तक कि जीव-हत्या की आशंका से स्नान तक नहीं करते हैं। वे अन्धकार में टटोलते हैं।'

बीकानेर के अनन्तर महत्त्वपूर्ण विराम-स्थान अजमेर था। यहाँ पर गुरु जी ने सीस्तान के ख्वाजा मुइन-उद्-दीन चिश्ती का मक़बरा देखा, और चिश्ती सम्प्रदाय के सूफ़ी सन्तों से वार्तालाप किया। अजमेर से चार मील पश्चिम में हिन्दू तीर्थ पुष्कर है। यहाँ गुरु जी ने वैशाख-संक्रान्ति के दिन इकट्ठे हुए तीर्थ यात्रियों को उपदेश दिया। अब उन्होंने दक्षिणापथ का पथ पकड़ा, और 'मेहरबान जनमसाखी' के अतिरिक्त समस्त जनमसाखियों का कथन है कि वे श्री लंका तक गए। इन जनमसाखियों में न तो यात्रा का उल्लेख है और न यात्रा के विवरण दिए गए हैं। परन्तु गिआनी ग्यानसिंह लिखित त्वारीख गुरु खालसा, ख़जान सिंह रचित History and Philosophy of the Sikh Religion इत्यादि, उत्तर-कालीन स्रोतों के अनुसार गुरु जी नसीराबाद, आबू, उज्जैन, इन्दौर, होशंगाबाद, बुरहानपुर, अमरावती, हिंगोली, बीदर, गोलकुंडा, गन्तूर, अरकाट, पांडेचेरी, त्रिचनापली, रामेश्वर इत्यादि नगरों से होते हुए दक्षिण पहुँचे थे।[2]

जनमसाखी के अनुसार श्रीलंका का एक राजा, शिवनाभ,[3] वर्षों से, गुरु

१. मेहरबान जनमसाखी के अनुसार दक्षिणापथ की यात्रा प्रथम यात्रा के अन्तर्गत है ; । परन्तु यह यात्रा श्रीलंका तक नहीं हुई।

२. रामेश्वर में अभी तक गुरु जी की यात्रा का स्मारक, नानक उदासी मठ नामक, एक धर्म-स्थान है। दक्षिण यात्रा में गुरु जी जिन नगरों में से होकर निकले उनमें से कई अन्यों में भी ऐसे धर्म स्थान थे। तारासिंह नरोतम लिखित गुर तीरथ संग्रह (१८८४ ई०), गिआनी ग्यानसिंह प्रणीत त्वारीख गुरु खालसा इत्यादि ग्रन्थों में इन धर्म-स्थानों के उल्लेख हैं। नरोतम के ग्रन्थ में गुरुओं की स्मृति में निर्मित सिख गुरद्वारों के संक्षिप्त वर्णन हैं। परन्तु प्रयोग में न आने से, अथवा उन स्थानों में सिख धर्मानुयायियों का अभाव होने से इन धर्म-स्थानों में से बहु-संख्यक नष्ट हो गए हैं।

३. ईसवीय सोलहवें शतक के प्रारम्भ में श्रीलंका द्वीप में तीन राज्य थे—(१) जाफना, (२) कोट्टे और (३) काण्डी। इनमें से किसी के राजा का नाम शिवनाभ नहीं था। कोट्टे और काण्डी की प्रजा श्रीलंकाभिजनीय थी और बुद्ध धर्म की अनुयायिनी थी। किन्तु श्रीलंका के उत्तरीय भाग के राज्य जाफना में अधिक संख्या भारत के हिन्दू तामिल प्रवासियों की थी। यह राज्य भारत के कारोमंडल तट के समीप था। अतः दक्षिण भारत के ही नहीं, उत्तर भारत के भी निवासी वहाँ जाते रहते थे। उन प्रवासियों में सैनिक और वाणिज्यिक दोनों थे। शिवनाभ कोई शासक राजा नहीं तो जागीरदार रहा होगा।

जी के दर्शनों का अभिलाषी था। उसने गुरु जी का वृत्तान्त मनसुख नामक एक पंजाबी व्यापारी से सुना था, जो गुरु जी का शिष्य था, तथा पंजाब से व्यापार की वस्तुएँ श्रीलंका ले जाता था : मनसुख का आचार-व्यवहार श्रीलंका में उसके आवास के प्रातिवेशिकों ने देखा, और उन्होंने उसकी चर्चा राजा से की।' 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है कि व्यापारी (मनसुख) सूर्योदय से एक प्रहर पूर्व निद्रा-त्याग करके शीतल जल से स्नान करता था। स्नान के अनन्तर वह 'जपु जी' का पाठ करता, और हस्तलिखित शबद' गाता। सूर्योदय तक नित्य-कर्म से निवृत्त होकर वह व्यापारिक कार्य के लिए घर से निकल जाता। सायं-काल में घर आकर पुनः 'शबद' गाता। वह जिन लोगों के मध्य ठहरा हुआ था वे सूर्योदय के पश्चात् स्नान करते थे तथा देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते थे और उपवास रखते थे। यह व्यापारी न उपवास रखता था, न मन्दिर में जाकर मूर्ति की पूजा करता था, और न आदित्यवार अथवा अमावस्या का दिन मनाता था। वहाँ के हिन्दू उसे शूद्र समझते थे।[1] राजा के समीप उसकी निन्दा की गई। कहा गया कि एक व्यापारी आया है, जो हिन्दू कहा जाता है, परन्तु जो हिन्दू धर्म के ऊपर कलंक है।

राजा ने व्यापारी को बुलाया और उससे पूछा—'तेरा जन्म हिन्दू कल में हुआ है और तू हिन्दू धर्म में विहित कर्मों को नहीं करता है। क्या कारण ?' मनसुख ने उत्तर दिया—'महाराज ! मैं इन रीतियों का क्या करूँ ? मुझे मेरा अभीष्ट प्राप्त हो गया है।' राजा ने पूछा—'तू जिसके सम्बन्ध में ऐसे गर्वित-भाव से बोल रहा है वह तेरी प्राप्त वस्तु क्या है ?' व्यापारी ने कहा—'मुझ पर एक पूर्ण पुरुष की कृपा हो गई है। उसके दर्शनों से मेरे बन्धन टूट गए हैं।' मनसुख के उत्तरों से राजा शिवनाभ गुरु जी के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठा। 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है कि मनसुख ने राजा से कहा कि यदि आपके हृदय में गुरु जी के दर्शनों की कामना है तो आपसे मिलने के लिए गुरु जी अवश्य किसी-न-किसी दिन आपके नगर में पदार्पण करेंगे।[2] उस दिन से राजा गुरु जी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था।

रामेश्वर में गुरु जी श्रीलंका के तट के लिए जलयान में बैठे। 'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार, सैदो और सीहो[3] दो जाट, जो गुरु जी के शिष्य थे,

१. पृष्ठ ८८।

२. पृष्ठ ८९।

३. इन दो नामों का उल्लेख केवल इस यात्रा के प्रसंग में है, इससे पूर्व अथवा पश्चात् अन्यत्र कहीं नहीं। यदि ये शिष्य दक्षिणा-पथ की यात्रा में गुरु जी के साथ रहे, तो मर्दाने को सम्मिलित करके तीनपुरुष गुरु जी के संगी रहे।

इस यात्रा में, पंजाब से ही उनके साथ थे। उन्होंने पूछा—'इस अगाध-जल जलधि को कैसे पार किया जाएगा ?' गुरु जी ने उनको एक 'शबद' का पाठ करते रहने को कहा। 'यह 'शबद' 'जपु जी' का मुख-बन्ध है :

"१ ओं सति नाम करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥
आदि सचु जुगादि सचु ॥
है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥"[1]

गुरु जी ने कहा—"यह 'शलोक' जिसकी जिह्वा पर रहेगा, और जो निरन्तर इसका पाठ करता रहेगा, और जितने नर-नारी इसे उससे सुनेंगे वे सब समुद्र को निर्विघ्न पार कर जाएंगे।"[2]

गुरु जी और उनके सेवक राजा शिवनाभ के उद्यान में ठहरे ही थे कि यह समाचार नगर के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसृत हो गया कि किसी दूर देश से एक महात्मा आया है। राजा शिवनाभ के मन ने कहा—'हो-न-हो, जैसा उनके शिष्य ने कहा था, गुरु जी ही आ गए होंगे।' परन्तु विश्वास करने से पूर्व उसने कुछ परीक्षाएँ कीं, और जब उसे निश्चय हो गया कि मेरे उद्यान में ठहरा हुआ महात्मा वही पुरुष है जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था तब उसका हृदय हर्षोल्लास से व्याप्त हो गया। वह गुरु जी के आवास-स्थान के उद्यान में गया, और गुरु जी के चरणों में प्रणाम करने के पश्चात् उसने जीवन-रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। उत्तर में गुरु जी ने यह 'शबद' पढ़ा :—

"जातो जाइ कहा ते आवै ॥
कह उपजै कह जाइ समावै ॥
किउ बाधिओ किउ मुकति पावै ॥
किउ अबिनासी सहजि समावै ॥
नामु रिदै अंम्रितु मुखि नामु ॥
नर हर नामु नरहर निहकामु ॥
सहजे आवै सहजे जाइ ॥
मन ते उपजै मन माहि समाइ ॥

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, प्रारम्भिक स्तुति, पृष्ठ १।

तात्पर्य—परमात्मा एक है। वह निराकार, सृष्टिकर्ता, सर्वव्यापक, निर्भय, निर्वैर, अमर, अजन्मा, स्वयंभू, गुरु है। उसे वही प्राप्त कर सकता है जिस पर उसकी कृपा हो। वह सत्-स्वरूप है, सृष्टि के आदि में भी विद्यमान था, युगों में विद्यमान रहता है, अब भी विद्यमान है, भविष्यत् में भी विद्यमान रहेगा।

२. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ १००।

गुरमुखि मुकतो बंधु न पाइ ।।
सबदु बीचारि छूट हरिनाइ ।।
तरवर पंखी बहुनिसि बासु ।।
सुख दुखीआ मनि मोह विणासु ।।
साझ बिहाग तकहि आकासु ।।
दह दिसि धावहि करमि लिखिआसु ।।
नाम संजोगी गोइलि बाटु ।।
काम क्रोध फूटै बिखु माटु ।।
बिनु वखर सूनो घर हाटु ।।
गुर मिलि खोले बजर कपाट ।।
साधु मिलै पूरब संजोग ।।
सचि रहसे पूरे हरि लोग ।।
मनु तनु दे लै सहजि सुभाइ ।।
नानक तिन कै लागउ पाइ ।।"[1]

पत्नी और पुत्र के साथ राजा शिवनाभ ने गुरु जी की शिष्यता ग्रहण की। प्रजा में से भी कई व्यक्ति शिष्य हुए। गुरु जी के अनुरोध को शिरोधार्य करके राजा ने एक 'धरमसाला' बनवाई, जहाँ गुरु जी की शिक्षाओं के अनुयायी रात्रि में एकत्र संगत होकर ईश्वर-प्रार्थना कर सकें और ईश्वर-स्तुति के 'शबद' गा सकें। 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है कि रात्रि की 'संगत' समाप्त होने पर समागत भक्तों में से अन्यतम सबको आमन्त्रित करता और आगामी दिन सब उसके घर जाकर उसका अतिथि-सत्कार स्वीकार करते।

कहा जाता है कि जब गुरु जी श्रीलंका में थे तब उन्होंने 'प्राणसंगली'[2] बोली

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, रागु गउड़ी, पृष्ठ १५२-५३।

२. जब श्री गुरु अर्जुन ने गुरु ग्रन्थ साहिब में समाविष्ट करने के लिए अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की वाणियों के संग्रह का कार्य प्रारम्भ किया, तब इस रचना के अन्वेषण के लिए भाई पैंड़ा नामक एक गुरु-भक्त श्रीलंका भेजा गया। वह जो प्रतिकृति लाया उसे गुरु जी ने अप्रामाणिक मानकर गुरु ग्रन्थ साहिब में सम्मिलित नहीं किया। परन्तु भाई पैंड़े का श्रीलंका जाना गुरु जी की श्रीलंका-यात्रा की अनुश्रुति की पुष्टि करता है। श्रीलंका से लौटकर भाई पैंड़े ने अपनी यात्रा का जो वृत्तान्त सुनाया उसे उस समय में वर्तमान भाई बन्नो नामक गुरु-भक्त ने संक्षेप के साथ लेख-बद्ध किया। यह वृत्तान्त अब भी उपलभ्यमान है। इसका शीर्षक है 'हक़ीक़त राह मुक़ाम शिवनाभ राजे की' (राजा शिवनाभ के देश की यात्रा के अनुभव), और यह गुरु ग्रन्थ साहिब की उस प्रति

थी। प्राणसंगली इक्कीस पद्यों की एक कविता है, जिसमें वास्तविक धार्मिक ज्ञान की अवस्था का निरूपण है। इसे सैदो ने लेख-बद्ध करके राजा शिवनाभ को दे दिया था। यह रचना गुरु ग्रन्थ साहिब में समाविष्ट नहीं है, और 'यह गुरु जी की की कृति है।' इस विषय में प्रायः सन्देह प्रकट किया जाता है।

श्रीलंका से वापसी में गुरु जी, भारत और श्रीलंका के मध्य संकीर्ण जल-निधि, 'पाक' (Palk Strait), को पार करके नागपत्तनम् में पहुँचे। वहाँ से तंजौर, त्रिचनापली और पालघाट होकर पश्चिमी घाट के प्रदेश में आ गए। इसके अनन्तर यात्रा प्रायः समुद्र-तट के साथ-साथ, अथवा उससे अनतिदूर के मार्ग से, हुई, और गुरु जी कुमता, अंकोला, धारवाड़, नासिक, अंकलेश्वर, बड़ौदा, पालिताना, सोमनाथ, माधोपुर, जूनागढ़, पुरबन्दर, द्वारका इत्यादि प्रसिद्ध नगरों और तीर्थ स्थानों में ठहरते हुए भुज पहुँचे। इन नगरों के अति-

---

के अन्त में परिशिष्ट रूप में संलग्न है जिसका प्रतिलिपि-कारक भाई बन्नो था। इसके अतिरिक्त, कतिपय उत्तरकाल में की गई गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रतिलिपियों में भी यह संयुक्त रहता है। इस वृत्तान्त में दक्षिण के उन स्थानों में से कतिपय के नामों का उल्लेख है जिनमें गुरु जी की यात्रा की स्मृतियाँ सुरक्षित थीं। इस वृत्तान्त के अनुसार, श्री गुरु नानक के प्रायः सौ वर्ष पश्चात् जब भाई पैंड़ा श्रीलंका गया था तब जाफना पट्टम् में एक सिख 'संगत' एक 'धरमसाला' और एक 'लंगर' (सर्वजातीय भोजन-गृह) था। भाई पैंड़ा शिवनाभ के पौत्र से भी मिला था; किन्तु उसका नाम मयदुन्ने दिया गया है, और यह नाम कोट्टे राज्य के एक भाग के शासक का था। मयदुन्ने का जीवन, नाटकीय नायक के जीवन के सदृश, निम्नोन्नत अवस्थाओं से युक्त था। उसे पुर्तगालियों, तथा कोट्टे के शासक अपने भाई, से युद्ध करना पड़ा। पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध में अपनी सहायता के लिए उसने कारोमंडल के तट के मुसलमानों से प्रार्थना की, और प्रवासी होकर कुछ काल दक्षिण भारत में व्यतीत किया। उसका नाम उस समय दक्षिण में प्रसिद्ध था, इसी हेतु सम्भवतया उसका नाम भाई पैंड़े की स्मृति में आरूढ़ हो गया, और भाई बन्नो लिखित वृत्तान्त में स्थान पा गया। परन्तु भाई पैंड़े की श्रीलंका यात्रा के शीघ्र पश्चात् जब उस द्वीप पर पुर्तगालियों का आधिपत्य हो गया तब जाफना में सिख-चिह्न नष्ट हो गए।

श्रीलंका में श्री गुरु नानक की यात्रा के स्मारकों का पता कुछ समय पूर्व किरपाल सिंह ने लगाया है (देखिए पंजाबी विश्वविद्यालय को दिया हुआ, श्री लंका की उसकी अपनी यात्रा का, अप्रकाशित वृत्तान्त विज्ञापना-पत्र)। उसका कथन है कि द्वीप के पूर्वीय भाग में बट्टिकलोग्र से, जिसका पुरातन नाम

रिक्त शतशः ग्राम भी उनकी यात्रा में विश्राम-स्थल रहे। वे जहाँ ठहरे वहीं जनता को अपने धर्मोपदेश का अमृत-पान कराते रहे। भुज से चलकर, राजस्थान के मरु-स्थल को पार करके गुरु जी दक्षिण-पश्चिमीय पंजाब में 'पंचनद' के पूर्वीय तट पर स्थित उच नामक नगर में आ गए। यहाँ सूफ़ी सन्त जलाल बुखारी रहा करता था; इस हेतु इसकी गणना पवित्र-स्थानों में की जाती है। यहाँ पर गुरु जी ने उस समय के, बुखारी के पीठाध्यक्ष, शेख को अपना सन्देश सुनाया। उस शेख के वंशधरों के पास गुरु जी की यात्रा की कतिपय स्मृतियाँ सादर सुरक्षित हैं, और वे यात्रियों को उनके दर्शन कराते रहते हैं। इन स्मृतियों में एक पाषाण-कंकण तथा एक पादुका-युगल सम्मिलित है, और कहा जाता है ये गुरु जी की उपभुक्त वस्तु हैं।

मट्टकल्लप्पो है, दस मील दक्षिण में कुरुकलमण्डल नामक एक ग्राम है। उस ग्राम में एक प्राचीन देवालय है। उसके पुजारी ने मुझे बतलाया कि प्रायः चार सौ पचास वर्ष पूर्व एक जगद्-गुरु यहाँ आया था। उसी के नाम पर इस देवालय का नाम जगद्-गुरु है। अनुमान किया गया है कि उक्त ग्राम का नाम 'कुरुकल मण्डल' 'गुरुकुलमठ' शब्द का अपभ्रंश है और यह स्पष्ट ही गुरु जी का स्मारक है। गिम्रानी ग्यानसिंह (त्वारीख गुरु खालसा, पृष्ठ २६८) का कथन है कि राजा शिवनाभ, जिसे गुरु जी ने दर्शनों से अनुगृहीत किया था, मट्टिअकलम्, में रहता था, और मट्टिअकलम्, मट्टकल्लप्पो तथा बट्टिकलोअ, जिनमें साधारण मात्र ध्वनि-भेद है, पर्यायवाची हैं। परन्तु यह मत इसलिए दुर्धर है कि जाफना जहाँ गुरु जी राजा शिवनाभ से मिले थे भाई पैड़े के वृत्तान्त के अनुसार श्रीलंका के उत्तरीय भाग में होना चाहिए। परन्तु गिम्रानी ग्यानसिंह और किरपालसिंह दोनों के कथनों को एक प्रकरण मानकर पढ़ें तो वे भाई पैड़े के वृत्तान्त के केवल उस अंश के अविरुद्ध रहते हैं जिसमें भाई पैड़ा अपने समय के श्रीलंका के शासक का नाम देता है। भाई पैड़े के अनुसार उसकी श्रीलंका-यात्रा के समय वहाँ का राजा मयदुन्ने था। वह पूर्व-प्रदेशीय राजाओं में से एक था, और, जैसा भाई पैड़े ने सूचित किया है, वह जिस राजा से गुरु जी मिले थे उसका पौत्र रहा होगा। परन्तु सिख अनुश्रुति में जिस राजा का नाम शिवनाभ प्रविष्ट हो चुका है जब तक उसके विषय में यथावत् ज्ञान प्राप्त न हो जाए तब तक यह समस्या सन्तोषजनकतया समाहित नहीं हो सकती है। किन्तु प्रचलित अनुश्रुति के प्रमाण से यह निःसंशय माना जा सकता है कि गुरु जी अपनी दक्षिण यात्रा में श्रीलंका भी गए थे। इसकी पुष्टि एक आधुनिक ऐतिहासिक साक्ष्यानुसंधान से होती है: श्रीलंका में, अनुराधापुर में, पुरातत्त्व-संग्रहालय में एक प्राचीन संस्कृत शिलाभिलेख सुरक्षित

उच से उत्तर-पूर्व में चलते हुए गुरु जी मुलतान आए। उस समय इस प्राचीन नगर में अनेक सूफ़ी फ़क़ीर रहा करते थे। इसके अतिरिक्त, यहाँ शैख़ मुहम्मद युसुफ़ गर्देज़ी (निधन ११1४ ई०), शैख़ बहाउद्दीन ज़िकरिआ (निधन १२६६ ई०) इत्यादि विख्यात सूफ़ी सन्तों के, तथा उनके वंशधरों एवं उत्तराधिकारियों की दर्गाहें और उनके मक़्बरे भी थे।[1] भाई गुरदास का कथन[2] है कि जब मुलतान के पीरों ने गुरु जी के आगमन का समाचार सुना तब वे दूध से भरा कटोरा हाथ में लेकर उनसे मिलने आए। दूध से भरे कटोरे के द्वारा वे यह सूचित करना चाहते थे कि मुलतान पहले ही धर्म-गुरुओं से परिपूर्ण है। गुरु जी ने दूध के कटोरे में चमेली के फूल की एक पंखड़ी डाल दी। इससे उनका भाव यह था कि आप लोगों को कष्ट दिए बिना मैं भी यहाँ निवास कर सकता हूँ। भाई गुरुदास का कथन है कि गुरु जी उनमें इस प्रकार घुल-मिल गए जिस प्रकार गंगा का जल समुद्र में घुल-मिल जाता है।

मुलतान से पूर्व में चलते हुए गुरु जी पुन: पाकपट्टन पहुँचे। पाकपट्टन में इब्राहीम, द्वितीय फ़रीद, रहा करता था। पूर्वीय भारत की 'उदासी' (यात्रा) से लौटते हुए गुरु जी उससे, पहले, मिल चुके थे। गुरु जी नगर से बाहर ठहरे, और ईश्वर-स्तुति के गान में मग्न हो गए। दैवयोग से शैख़ इब्राहीम का शिष्य कमल, अपने गुरु जी की पाकशाला के लिए ईंधन इकट्ठा करता हुआ उधर आ निकला। गीत के मधुर-स्वरों से मोहित होकर ईंधन का ध्यान छोड़कर

है। उसका वाचन श्रीलंका के भूतपूर्व पुरातत्त्व कमिश्नर, Dr. S. Paranavitana ने किया है। उस अभिलेख में कहा गया है कि यह कोट्टे के महाराज धर्मपराक्रमबाहु के आदेश से उत्कीर्ण किया गया था। धर्मपराक्रमबाहु १४९३ ई० में सिंहासनासीन हुआ था। पुन:, उस अभिलेख में वर्णित है कि उक्त महाराज के पास ज्ञानकाचार्य नामक एक धर्म-शिक्षक आया था तथा बौद्ध एवं वैदिक विद्वानों के साथ उसका विवाद हुआ था। उसने बौद्धों के सम्मुख परब्रह्म के वैयक्तिक स्वरूप का एवं नित्य आत्मा का निरूपण किया, और वैदिकों के समक्ष मूर्ति-पूजा एवं कर्मकाण्ड की व्यर्थता प्रतिपादित की। देखिए डाक्टर सिद्धमंगल करुणारत्न का अप्रकाशित निबन्ध 'Guru Nanak and Ceylon' जो सितम्बर १९६९ में, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, में Guru's Life and Teachings विषय को लेकर आयोजित ज्ञान-गोष्ठी (Seminar) में पढ़ा गया।

१. क़ब्रो और फ़क़ीरों के अतिरिक्त मुलतान की दो अन्य वस्तु प्रसिद्ध हैं : गर्मी और रेतीली आँधी।

२. वार १।४४।

वह गुरु जी के समीप आ गया। उसने जो दो-पदी गीत सुना उसमें कहा गया था : 'तू आप ही लेखक है, आप ही पट्टी है, और आप ही पट्टी लिख रहा है। केवल उस एक को याद रख ; कारण, उससे भिन्न अन्य कोई नहीं है।' इस छन्दो-बद्ध वाणी ने उसे ऐसा उन्मत्त कर दिया कि इसे गुनगुनाता हुआ वह अपने गुरु के समीप चला गया। उसने अपने गुरु को समस्त वृत्तान्त सुनाया और कहा—'पीर जी ! सलाम। मैं परमात्मा के एक सच्चे प्यारे से मिल चुका हूँ।'

कमल ने जो दो-पदी छन्द सुनाया उससे शैख़ ने अनुमान किया—'गुरु नानक पुनः यहाँ आ गया है।' उसने अपने शिष्य से कहा—'बेटा ! जिसने यह कविता गाई है उसे मैंने पहले भी देखा है। वह ईश्वर का फ़क़ीर है, और ईश्वर के ही शब्द बोलता है। मुझे भी उसके पास ले चल।'[1] और वह गुरु जी के स्वागत के लिए शीघ्रता से चल पड़ा।

जब पारस्परिक अभिवादन के अनन्तर दोनों सन्त बैठ गए तब शैख़ ने गुरु जी से कहा—'तू कहता है कि ईश्वर एक है और उससे भिन्न अन्य कोई नहीं। परमात्मा एक है, परन्तु मार्ग दो हैं। मनुष्य किसका ग्रहण और किसका त्याग करे ? हिन्दू कहते हैं कि हमारा धर्म सच्चा है, मुसलमान कहते हैं हमारा। इनमें कौन यथार्थवादी और कौन अयथार्थवादी है ?'

गुरु जी ने उत्तर दिया—'एक ही परमात्मा, और एक ही मार्ग है। एक परमात्मा का ग्रहण कर लो, अन्य सबका त्याग कर दो।'

तब शैख़ ने आदि फ़रीद का एक पद्य सुनाया। उसमें कहा गया है—'तू अपने अंगरखे को खण्ड-खण्ड कर दे और एक कन्था धारण कर ले। तू वे वस्त्र पहिन जिनसे तू अपने पति को पा सके।'

गुरु जी ने कहा—मनुष्य के लिए साधारण वस्त्र उतारकर धार्मिक वस्त्रों का परिधान आवश्यक नहीं है। यदि मनुष्य मन भगवान् में लगाए रखें तो वे साधारण वस्त्र पहिन कर घर में रहते हुए भी भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं।

शैख़ ने अपने पूर्वोक्त परम गुरु का एक अन्य पद्य सुनाकर अपनी अन्य भ्रान्ति प्रकट की। उस पद्य में कहा गया है—"जब वह तरुणी थी तब उसने प्रिय के प्रति प्रेम प्रकट नहीं किया। वह वृद्ध होकर शरीर त्याग कर गई। अब वह क़ब्र में से चीत्कार करती हुई कहती है 'हाय ! मैं अपने स्वामी से नहीं मिली।'" इतना कहकर शैख़ ने गुरु जी से पूछा—'वह कौन सी वाणी, कौन सा गुण और कौन सी मनोहरता है जिसे मैं प्राप्त करूँ ? कौन से वस्त्र

---

१. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ ६२।

पहिनूं जिनसे अपने प्रेम-पात्र को अपनी ओर आकृष्ट कर सकूं ?'

जैसा जनमसाखी में वर्णित है, गुरु जी ने फ़रीद का ही एक पद्य सुनाकर शेख़ को उत्तर दिया—'विनयशीलता शब्द है, क्षमा गुण है, रसना की मधुरता जादू है। यदि तेरे अन्दर ये तीनों विशेषताएँ हों तो तुझे तेरा प्रिय मिल जाएगा।'

कुछ अन्य वार्तालाप के पश्चात् शेख़ ने उठकर गुरु जी के हाथ चूमे, और, जनमसाखी के अनुसार, कहा—'नानक तू ने परमात्मा को प्राप्त कर लिया है। परमात्मा में और तुझ में कोई भेद नहीं है। मुझे आशीर्वाद दे कि मुझ पर भी परमात्मा की कृपा हो जाए।'[1] गुरु जी ने कहा—'तुझे परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त है। तेरी नौका सकुशल तीर पर लग जाएगी।'

SIKHBOOKCLUB.COM

१. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ ६५।

१२

उत्तर की यात्रा

पाकपट्टन से प्रस्थित होकर गुरु जी पंजाब के अभ्यन्तर में प्रविष्ट हुए, और मार्ग में आने वाले ग्रामों की जनता को अपना संदेश सुनाते हुए तलवंडी पहुँच गए। उनके माता-पिता वृद्ध हो चुके थे, पुत्र के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करते-करते उनके नेत्रों की ज्योति क्षीण हो गई थी ; यह क्षण उनके लिए असीम आनन्द का क्षण था। तलवंडी ग्राम लोगों की विस्मृति के गर्त से फिर बाहर निकल आया। गुरु जी के प्रत्यागमन का समाचार सुनते ही उनके दर्शनाभिलाषी ग्राम में आने लगे। जब गुरु जी वृद्ध-रुग्ण राय बुलार से मिलने उसके घर गए तब उसकी अन्तिम इच्छा पूर्ण हो गई। अब उसके जीवन के गिने हुए दिन शेष रह गए थे। जीवन के अन्तिम दिनों में गुरु जी के दर्शन करके उसके आत्मा को शान्ति प्राप्त हुई। जब राय बुलार ने शरीर-त्याग किया, गुरु जी उसके समीप बैठे थे।

बहिन नानकी से मिलने के लिए गुरु जी तलवंडी से सुलतानपुर गए। यह उनकी द्वितीय 'उदासी' (यात्रा) का अन्त था। वर्ष १५१५ ई० था।

कई कारणों से गुरु जी को तलवंडी की अपेक्षा सुलतानपुर अधिक प्रिय था। प्रथम कारण था बहिन नानकी, और उसके पति जैराम का निस्स्वार्थ नैसर्गिक स्नेह; और द्वितीय, नवाब के अन्नागार में किए कार्य के, तथा धर्मोपदेशके, द्वारा निबद्ध वहाँ के निवासियों के साथ, प्रेम की ग्रन्थि। सुलतानपुर में गुरु जी अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ रहे थे, वहाँ उन्होंने शिष्य बनाए थे, और उस कर्त्तव्य पर मनन किया था जो उन्हें पूर्ण करना था। यहीं वह वेई नदी थी, जिसके शान्त तट पर वे ध्यान-मग्न होकर बैठा करते थे और उनको अपने संदेश को दूर-दूर तक लोगों को सुनाने का भागवत आदेश प्राप्त हुआ था। जब तक वे अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए सुलतानपुर से पुनः प्रस्थित नहीं हुए तब तक वे पुरातन स्मृतियों तथा शिष्यों एवं अनुयायियों से परिवेष्टित वहीं ठहरे रहे। नानकी ने

अपने भाई की परियोजना में हस्तक्षेप करने का यत्न कभी नहीं किया। परन्तु नवाब दौलत खाँ अब प्रबलतर आग्रह के साथ यह अनुरोध करता रहा कि आप स्थायी रूप से यहाँ रहें, और यहीं से अपना धर्मोपदेश करें। गुरु जी ने कहा—'सब कुछ परमात्मा की इच्छा के अनुसार होता है।' अन्ततोगत्वा उन्होंने नवाब से विदा ली, और यात्रार्थ पुनः सुलतानपुर से निकल पड़े।

उत्तर दिशा में चलते हुए, रावी और व्यास नदियों के अन्तरालवर्ती प्रदेश, 'माझे', में से निकलते हुए गुरु जी पक्खोके बटाले की ओर जा रहे थे। वहाँ पुत्रों के साथ उनकी पत्नी अपने माता-पिता के घर रहती थी। किन्तु जब वे पक्खोवाल पहुँचे, और उसी के समीपवर्ती ग्रामों में निवास करते हुए उन्होंने रावी नदी के दूसरे तट पर एक रमणीय स्थान देखा तो उसके प्राकृतिक सौन्दर्य ने उनके हृदय पर अधिकार कर लिया। उन्होंने निश्चय किया कि मैं इसी स्थान को अपना निवास-स्थान बनाऊँगा। पक्खोके का अजित्ता रनधावा गुरु जी का शिष्य हो चुका था, और उनकी सेवा के अवसर की प्रतीक्षा में रहता था। उसने तथा कई अन्य कृषिजीवियों ने गुरु जी को भूमि देने का वचन दिया। गुरु जी ने इस स्थान पर एक ग्राम बसाया, और उसका नाम करतारपुर (जगत्-कर्ता का नगर) रखा।[1]

'जनमसाखी' का कथन है कि ज्यों ही गुरु जी यहाँ बैठे समाचार चतुर्दिक् प्रसृत हो गया। जिसने सुना वही वहाँ आ गया। लोग कहने लगे परमात्मा का अपना सन्त उदित हो गया है। उसका नाम नानक है और वह सदा परमात्मा में लीन रहता है। बहुत नर-नारी उनके दर्शनार्थ आए; अनेक ने उनकी शिक्षा ग्रहण की। जो आया उसी को प्रसाद की प्राप्ति हुई। गुरु जी ने जैसा

---

१. 'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार करतारपुर की स्थापना गुरु जी की प्रथम 'उदासी' के अन्त में हुई (पृष्ठ ८५ और ८६) और मेहरबान जनमसाखी के अनुसार अन्तिम 'उदासी' के अन्त में (पृष्ठ ५१६)। सामान्यतः समस्त सिख-इतिहासविद् यह मानते हैं कि गुरु जी ने अपनी अन्तिम प्रमुख यात्रा के पश्चात् करतारपुर में स्थायी रूप से रहना आरम्भ किया। सम्भव है उन्होंने इस ग्राम की स्थापना कुछ पहले ही कर दी हो। जनमसाखियों में घटनाओं की तिथियों का उल्लेख नहीं है; परन्तु उत्तरकालीन स्रोतों में (गिआनी ग्यानसिंह: त्वारीख गुरु खालसा, पृष्ठ २६८, और साहिब सिंह: जुलाई-सितम्बर १९६७ ई० की 'आलोचना' में लेख 'जीवन ब्रित्तान्त गुरु नानक देव जी', पृष्ठ ८२)। करतारपुर की स्थापना का काल १५१६ ई० का प्रारम्भ दिया गया है। हस्तधृत ग्रन्थ में वर्ण्यमान घटनाओं के क्रम में यह काल द्वितीय यात्रा के अन्त में आता है। 'पुरातन' जनमसाखी में करतार पुर की स्थापना गुरु-जीवनी के अतिप्रारम्भिक भाग में हुई कथित है। विद्वान् इसे अस्वीकार्य मानते हैं।

कहा, वैसा ही हुआ। उन्होंने कहा जो सत्य नहीं है वह नश्वर है। केवल सत्य नित्य है। साधु लोग अपने बाजों पर इन शब्दों को बोलते रहते हैं।

नानक के घर में एक परमात्मा के नाम की पूजा होती है। गुरु जी की महती प्रशंसा की गई; उनका यश निर्मल और महत् था। हिन्दू, मुसलमान, योगी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, दिगम्बर, वैष्णव, गृहस्थ, राजा, सामन्त, राजसभासद, पदाधिकारी, कृषक, भू-स्वामी—जो भी आया, प्रसन्न हुआ। प्रत्येक का मस्तक आदर से नत और मुख प्रशंसा-वचनों से पूर्ण रहता था।[1]

'जनमसाखी' में एक करोड़िया (करोड़पति) की कथा दी गई है। गुरु जी का वर्धमान यश उसके लिए असह्य हो गया। वह सोचने लगा—"जगत् में यह कौन उत्पन्न हो गया, प्रत्येक जिसकी प्रसंशा करता है? उसने 'हिन्दू ता खराब कीते थे परु मुसलमाना का भी ईमान खोया। मुसलमाना का भी किआ ईमान है जो हिन्दू परु ईमान रखदे है।' परन्तु चलो मैं उसको बाँध लाऊँ।" किन्तु वह ज्यों ही घोड़े पर चढ़ा, घोड़ा चौंक कर उसके नीचे से निकल गया। जब अगले दिन वह फिर घोड़े पर चढ़ने लगा, जनमसाखी का कथन है, वह अन्धा हो गया। वह हत-बुद्धि तथा हताश होकर घोड़े से उतर गया और भूमि पर बैठ गया। तब लोगों ने उससे कहा—"लाला, हम तो तुम्हें कुछ कह नहीं सकते, 'परु नानक बड़ा पीर है।' तुम्हें उसके नाम का आदर करना चाहिए।" तब करोड़िये ने गुरु जी के नाम की प्रसंशा आरम्भ कर दी। पास में खड़े लोगों ने गुरु जी के प्रति आदर प्रकट करने के लिए सिर झुका लिए। परन्तु ज्यों ही वह फिर घोड़े पर चढ़ा, उसे कुछ दिखाई न दिया, और नीचे गिर पड़ा। लोगों ने फिर समझाने के लिए कहा—'लाला! तुम घोड़े पर चढ़ने की भूल करते हो। नानक बड़ा पीर है। तुम पैदल चलो जिससे तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया जाए।' तब करोड़िया पैदल ही गया। जब उसने कुछ दूर से गुरु जी की कुटी देखी तब रुककर और मस्तक झुकाकर गुरु जी को प्रणाम किया। गुरु जी के समीप पहुँचकर वह उनके चरणों में लोट गया। गुरु जी ने उसे आशीर्वाद दिया, तीन दिन अपने समीप रखा और प्रसन्न कर दिया।[2] उत्तरकालीन इतिहास ग्रन्थों में करोड़िये का नाम दुनीचन्द दिया गया है। करोड़िये दुनीचन्द ने 'धरमसाला' बनवा दी, तथा इसके चारों ओर बस्ती बसाने में कई प्रकार से सहायता दी।

जब करतारपुर में और अधिक घर बन गए तब गुरु जी के माता-पिता

---

१. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ ८५।

२. 'पुरातन' जनमसाखी, पृष्ठ ८६।

तथा पत्नी-पुत्र भी वहीं आकर रहने लगे। मर्दाना भी अपना परिवार सुलतान पुर से वहीं ले आया।

एक दिन गुरु जी से मिलने एक विद्वान् ब्राह्मण आया। वह भूखा था और खाने के लिए कुछ मिल जाने की आशा रखता था। गुरु जी के भोजन करने का समय हो गया था, उन्होंने उसे भी भोजनार्थ आमन्त्रित किया। किन्तु उसने उत्तर दिया कि मैं सर्व-साधारण की पाकशाला में पका भोजन नहीं खा सकता हूँ। मैं तो स्वयं-पाकी हूँ। मैं तो एक बालिश्त गढ़ा खोदकर रसोई स्थान को पवित्र करूँगा। उसके पश्चात् उतना ही गहरा एक और गढ़ा खोदकर चूल्हा बनाऊँगा, और जलाने से पहले लकड़ियों को धोऊँगा। मुझे पता नहीं कि आपकी रसोई में भोजन किस विधि से तैयार होता है। मैं वहाँ का भोजन नहीं खाऊँगा। गुरु जी ने अपने एक भक्त से कहा—इसे कच्चा अन्न ला दो। ब्राह्मण कच्चा अन्न लेकर चला गया, और रसोई बनाने के लिए अपनी धर्म-विधि के अनुसार भूमि खोदने लगा। परन्तु उसने जहाँ खोदा, वहाँ भूमि में से हड्डियाँ निकलीं। वह समस्त दिन खोदता रहा, परन्तु कोई शुद्ध स्थान नहीं मिला। अन्त में श्रान्त होकर वह मन में कहने लगा—'मुझे गुरु जी के समीप चलना चाहिए।' वह गुरु जी के समीप पहुँचकर उनके चरणों में गिर पड़ा, और विनयपूर्वक कहने लगा—'मुझे भोजन मिल जाए। मैं भूख से मर रहा हूँ।'

SIKHBOOKCLUB.COM

प्रसन्न होकर गुरु जी ने उसे सन्तुष्ट कर दिया। इस अवसर पर यह 'शबद' पढ़ा गया :—

"सुइने का चउका कंचन कुआर ॥
रुपे कीआ कारा बहुतु बिसथारु ॥
गंगा का उदकु करंते की आगि ॥
गरुड़ा खाणा दुध सिउ गाडि ॥
रे मन लेखै कबहू न पाई ॥
जामि न भीजै साचु नाई ॥
दस अठ लीखे होवहि पासि ॥
चारे बेद मुखागर पाठि ॥
पुरबी नावै वरनां की दाति ॥
वरत नेम करे दिन राति ॥
काजी मुलां होवहि सेख ॥
जोगी जंगम भगवे भेख ॥
को गिरही करमा की संधि ॥
बिनु बूझे सभ खड़ीअसि बंधि ॥

जेते जीअ लिखी सिरिकार ॥
करणि उपरि होवगि सार ॥
हुकम करहि मूरख गावार ॥
नानक साचे के सिफ़ति भंडार ॥[1]

गुरु जी करतारपुर में कतिपय मास ठहरे। इस काल में उन्होंने अनेक नवीन शिष्य बनाए और लोगों को निश्छलतया मिल कर रहने का मार्ग दिखलाया। १५१७ ई० की ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में वे तृतीय यात्रा के लिए प्रस्थित हुए। यह यात्रा हिमाचल की ओर होने वाली थी। अपने रबाब-वादक सहचर मर्दाने को साथ लेकर वे करतारपुर से सिआलकोट और वहाँ से हिमाचल के चरणांचल में स्थित जम्मू पहुँचे। जब वे इधर और कश्मीर प्रदेश में यात्रा कर रहे थे तब उन्हें हिमाचल के उच्च खण्ड में स्थित अमरनाथगुहा के यात्रियों की टोलियाँ मिलीं। जो उनसे मिलता वे उसे यही उपदेश देते कि एक परमात्म की पूजा करनी चाहिए, और मनुष्य को आस्थावान् रहना चाहिए, तथा मानवता से प्रेम, और उसकी सेवा करनी चाहिए। अनेक नर-नारी भगवन्नाम के उपासक बन गए। जनमसाखियों में ब्रह्मदासनामक एक विद्वान् ब्राह्मण का विशेषत: उल्लेख है, जिसने गुरु जी का उपदिष्ट मार्ग ग्रहण कर लिया था।

ब्रह्मदास को अपनी विद्वत्ता का गर्व था। जब उसने एक महात्मा के आगमन का समाचार सुना तब अपने अभ्यासानुसार कण्ठ में शालिग्राम लटकाए और वह दो ऊँटों पर ग्रन्थ लादकर गुरु जी के समीप पहुँचा। उनको प्रणाम करके उसने तत्क्षण प्रश्न प्रारम्भ कर दिए : आप कौन सा वेष धारण करते हैं ? किस आचार का पालन करते हैं ? क्या भोजन करते हैं ? उत्तर में गुरु जी ने एक 'शबद' पढ़ा। उसका तात्पर्य है—'एक ही राजमार्ग और उसके प्रवेश का ही एक द्वार है। मनुष्य के पास अपने जन्म-स्थान में पहुँचने के लिए गुरु (ईश्वर) रूपी

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, रागुबसन्त, पृष्ठ ११६६।

तात्पर्य—यदि रसोई का चौका सुवर्ण कुट्टमित हो, सुवर्ण के पात्र हों, सीमा-रेखा रजत से अंकित हो, गंगा का जल हो, यज्ञ-कुण्ड से लाई हुई अग्नि हो, भोजन दुग्ध में डुबोकर रखा गया हो, महा स्वादु हो, यदि मन भगवान् में लीन नहीं तो यह सब निरर्थक। यदि किसी के समीप अष्टादश पुराण लिखे रखे हों, उसे चारों वेद मुखाग्र हों, वह पर्वों पर तीर्थों में स्नान कर चुका हो, स्व-वर्णानुसार दान दे चुका हो, व्रत रखता रहा हो, नियमों का पालन करता रहा हो, कोई मुल्ला, क़ाज़ी, शेख, योगी, गैरिकवस्त्रधारी जंगम अथवा कर्मकाण्डी गृहस्थ बन चुका हो। भगवत्प्राप्ति के बिना ये सब लोग पाश में बाँधकर ले जाए जाएँगे। हमारा निर्णय हमारे कर्मों के अनुसार होगा। जो प्रभुत्व चलाना चाहते हैं वे मूर्ख एवं अज्ञानी हैं। नानक ने कहा—केवल परमात्मा ही सत्य है, और उसकी स्तुति ही मेरा धान्यागार है।

एक ही निःश्रेणी है। स्वामी सुन्दर है, और उसकी भक्ति सब सुखों का निधान है। वही अपना स्रष्टा है और वही अपना ज्ञाता। उसने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की और उन दोनों को इस प्रकार पृथक् किया कि उनमें से एक वस्तु अन्य वस्तु के लिए चन्द्रातप हो जाए। इस प्रकार उसका शब्द अभिव्यक्त हुआ। उसने स्तम्भों के बिना आकाश को खड़ा कर रखा है। उसने सूर्य और चन्द्रमा को बनाया और उन्हें अपना प्रकाश दिया। उसने दिन-रात्रि बनाए। उसकी रचना अद्भुत है। यात्राएँ उसकी हैं, पवित्र सम्वाद उसी के हैं, उत्सव पर स्नान उसी का है। हम उसका वर्णन किस प्रकार कर सकते हैं! उसके तुल्य कोई अन्य नहीं। वह सत्य परमात्मा नित्य सिंहासन पर आरूढ़ रहता है। अन्य सब कुछ नश्वर है।'[१]

ब्रह्मदास का बल था विवाद। गुरु जी के शब्दों और व्यवहार-मार्ग ने उसे निरस्त्र कर दिया। अब उसने गुरु जी से सविनय प्रश्न किया—'सृष्टि-निर्माण से पूर्व परमात्मा किस अवस्था में विद्यमान रहता है?' उत्तर में गुरु जी ने यह 'शबद' सुनाया :—

"अरबद नरबद धुंधूकारा ॥
धरणि न गगना हुकमु अपारा ॥
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरज सुंन समाधि लगाइदा ॥
खाणी न बाणी पउण न पाणी ॥
ओपति खपति न आवत जाणी ॥
खंड पताल सपत नहीं सागर नदी न नीरु वहाइदा ॥
ना तदि सुरगु मछु पइआला ॥
दोजकु भिसतु नहीं खै काला ॥
नरकु सुरगु नहीं जंमणु मरणा ना को आइ न जाइदा ॥
ब्रह्मा बिसनु महेसु न कोई ॥
अवरु न दीसै एको सोई ॥
नारि पुरखु नहीं जाति न जनमा ना को दुखु-सुखु
पाइदा ॥

× × × ×

ना को मुल्ला ना को काजी ॥
ना को सेखु मसाइकु हाजी ॥
रईअति राउ न हउमै दुनीआ ना को कहणु कहाइदा ॥

× × × ×

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, वार मलार, पृष्ठ १२७६।

बेद कतेब न सिम्रिति सासत ॥
पाठ पुराण उदै नहीं आसत ॥
कहता बकता आपि अगोचर आपे अलखु लखाइदा ॥"[1]

जनमसाखी का कथन है 'तब आगे बढ़कर ब्रह्मदास ने अपना मस्तक गुरु जी के चरणों पर रख दिया। उसने कण्ठ से शालिग्राम उतार दिया और गुरु जी का शिष्य हो गया।'[2]

पार्वत्य प्रदेश में शिष्यों की प्रत्यवेक्षा का भार ब्रह्मदास के कन्धों पर रख दिया गया। श्रीनगर से प्रायः चालीस मील पूर्व, मार्तण्ड में, जिसका आधुनिक नाम मटन है और जहाँ एक प्राचीन सूर्य-मन्दिर के ध्वंसावशेष हैं, एक धर्म-स्थान है वह गुरु जी के वहाँ पदार्पण की, तथा ब्रह्मदास के साथ हुई उनकी गोष्ठी की स्मृति का प्रहरी है।

जनमसाखी का कथन है कि तब गुरु जी असंख्य गिरि-राजियों को पार करते हुए सुमेरु पहुँचे। गुरु जी की यात्राओं के अध्ययन में सुमेरु का अर्थ कैलास लिया जाता है।[3] इस दीर्घ एवं कष्ट-पूर्ण यात्रा में गुरु जी को हिमाच्छन्न निर्जन प्रदेश तथा दुर्गम नदी-कच्छों में से निकलना पड़ा। प्रतीत होता है इस यात्रा में वे उत्तर-पूर्व दिशा में चलते-चलते ज़ोजीला में से निकलकर लद्दाख प्रदेश में पहुँचे थे। वहाँ के बौद्ध भिक्षुओं तथा साधारण लोगों में गुरु जी की यात्रा की कथाएँ मौखिक-परम्परा से अब तक प्रचलित हैं। लेह नगर में अब तक एक वृक्ष है, जिसके नीचे, अनुश्रुति के अनुसार, गुरु जी ने विश्राम किया था। लेह से बाहर, लेह-कारगिल मार्ग के तीर पर एक शिला है। किंवदन्ती के अनुसार, उसमें गुरु जी द्वारा दण्डित एक दानव का प्रस्तरी-भूत

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, मारू रागु, पृष्ठ १०३५-३६।
अरबद नरबद=अरबों खरबों वर्षों से।
ओपति खपति=उत्पत्ति-नाश।
सेखु=सूफ़ी।
समाइकु=सूफ़ियों के शिष्य।
अलखु=अलक्ष्य (ईश्वर)।
लखाइदा=अर्थात् स्व-द्रष्टा।

२. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ १८०।

३. सन्तोख सिंह रचित, 'नानक-प्रकाश', खण्ड २, में सम्पादकीय टिप्पण, पृष्ठ ६८८।

कबन्ध है।[1]

प्रतीत होता है लेह से गुरु जी सिन्धु-नदी-तट के साथ-साथ नदी के उद्गम की दिशा में चलते रहे, और तिकसे, थंगरा, ताशीगांग, गरतोक, जेरको ला इत्यादि स्थानों में से होकर कैलास पर्वत की छाया में स्थित मानस सर पहुँचे। यहाँ पर वे सिद्धों से मिले। समस्त जनमसाखियों में तथा भाई गुरदास की रचना में सिद्धों के साथ हुए गुरु जी के संवाद का वृत्तान्त दिया गया है। इनमें से भाई गुरदास की रचना में दिया वृत्तान्त अत्यन्त संक्षिप्त है, और प्रायः वही उद्धृत किया जाता है। सिद्ध दो पथिकों को भौमिक जगत् से इतनी दूर आया हुआ देखकर महाचकित हुए और, जैसा भाई गुरदास कहता है, उन्होंने समवेत स्वर में प्रश्न किया—'युवक ! सुन। तू किस शक्ति के आश्रय से यहाँ आ गया है ?' गुरु जी ने उत्तर दिय—'मैं देवाधिदेव केवल एक ईश्वर का उपासक हूँ। मैं उसी की स्तुति करने बैठता हूँ, और उसी पर अपना ध्यान लगाता हूँ।'[2]

तब सिद्ध-गण ने पूछा—'सुनाओ, मनुष्य-लोक का क्या समाचार है ?' गुरु जी ने उत्तर दिया—'नाथगण, जगत् अन्धकार से व्याप्त है। सत्य का चन्द्रमा लोचन-गोचर नहीं होता है। पृथ्वी को पाप ने पकड़ रखा है, और वह अन्याय के भार के तले दबी हुई हाय-हाय कर रही है। सिद्ध-गण पलायन करके पर्वतीय कन्दराओं में चला गया है। वृति स्वयं क्षेत्र को चर रही है। लोगों में अज्ञान भरा हुआ है। चेले बाजे बजाते हैं, गुरु जी नाचते हैं। गुरु-दक्षिणा ऐंठने के लिए चेलों के घर जाते हैं। क़ाज़ी धन के लोभ से न्याय नहीं करते हैं। जगत् की यह अवस्था है।'[3]

---

१. अगस्त १९६६ के Sikh Review में लैफ़्टिनैन्ट किरपाल सिंह का लेख 'Guru Nanak in Ladakh'.

२. सिध पुछणि सुणि बालिआ कउणु सकति तुहि एथे लिआई।
हउ जपिआ परमेसरो, भाउ भगति संगि ताड़ी लाई।"
—वार १/२८ की पंक्तियाँ ४, ५।

३. "फिरि पुछणि सिध नानका ! मात-लोक विचि किया वरतारा ?
सब सिधी इह बुझिआ कलि तारणि नानक अवतारा।
बाबे आखिआ नाथ जी ! सचु चंद्रमां कूड़ु अंधारा।
कूड़ु अमावसि वरतिआ हउ भालणि चढ़िआ संसारा।
पाप गिरासी पिरथमी धउलु खड़ा धरि हेठ पुकारा।
सिध छपि बैने परबति, कउणु जगत्रि कउ पारि उतारा।
जोगी गिआन विहूणिआ निसिदिन अंगि लगाइनि छारा।
बाझु गुरु डूबा जगु सारा।'
—भाई गुरदास, वार १/२९।

सिद्ध गुरु जी की प्रतिभा से प्रभावित हो गए। उन्होंने सोचा यदि यह पुरुष सिद्ध-वेष धारण कर ले तो नाथ-पन्थ लोक में प्रसिद्ध हो जाए। उन्होंने गुरु जी को यौगिक शक्ति से आकृष्ट करने का यत्न किया। उन्होंने उनको एक कटोरा देकर मानस सर में से जल लाने को कहा। भाई गुरदास का कथन है कि ज्योंही गुरु जी सरोवर पर पहुँचे उन्होंने सर को लालों, हीरों एवं अन्य रत्नों से पूर्ण देखा। उन्होंने सिद्धों के समीप लौटकर कहा कि सरोवर में जल नहीं है। सिद्ध लोग स्वयं सत्यता की परीक्षा के लिए सरोवर पर आए और उसे शुष्क देखकर विस्मित रह गए। गुरु जी की वाणी ने सिद्धों को जीत लिया। तब गुरु जी ने उनको सत्य-मार्ग का दर्शन कराया।'[1]

यह अनुश्रुति चली आ रही है कि गुरु जी धर्मोपदेश के प्रयोजन से यात्रा करते-करते रहस्य-मार्गी लोगों के देश तिब्बत में भी गए थे। हिमाचलीय सीमान्तों पर नियुक्त भारतीय सैनिकाधिकारियों ने जो राजकार्यविषयक पत्र तथा वृत-विज्ञापन-पत्र, अभी कुछ काल-पूर्व, इधर भेजे हैं उनसे उस अनुश्रुति का समर्थन होता है।[2] इन साधनों से उपलब्ध साक्ष्य सूचित करता है कि गुरु

---

१. 'पुरातन जनमसाखी' में यह गोष्ठी कुछ भिन्न प्रकार से वर्णित है। वहाँ कहा गया है कि गुरु जी जो कटोरा सरोवर पर ले गए वह रत्नों से पूर्ण रहा। गुरु जी ने उसका जादू तोड़ दिया, और कटोरे को जल से भर दिया। वहाँ विद्यमान सब सिद्धों ने उस कटोरे का जल पिया तो भी जल कम नहीं हुआ।

२. 'बाला जनमसाखी में गुरु जी की पार्वत्य प्रदेशों की यात्राओं का वर्णन है; परन्तु उसमें पौराणिक मिथ्या कथाओं और उपाख्यानों के सदृश कथाओं का बाहुल्य है। उससे भौगोलिक स्थितियों का ज्ञान नहीं हो पाता है। उस काल का, अथवा अन्य प्रकार से प्रामाणिकता की कोटि में आनेवाला, कोई साक्ष्य भी उपलब्ध नहीं हो सका है। भारतीयों के लेखों के अतिरिक्त ईसाई पर्यटकों की दैनिकियाँ (Diaries), विज्ञापनाएँ (Reports) तथा पत्र इस सम्बन्ध में सूचना-स्रोत हो सकते थे। पुर्तगाली धर्मप्रचारक स्व-धर्म-प्रचार के क्षेत्रों की मार्गणा के प्रयोजन से तिब्बत में १६०३ ई० में प्रविष्ट हुए। १६२४ ई० में Androde नामक एक ईसाई पर्यटक तिब्बत गया। वह तिब्बत के ईसाई पर्यटकों में प्रथम था। (C. Wessels, Early Jesuit Travellers in Central Asia, pp. 43-68)। उसके अनन्तर अन्य पर्यटक वहाँ पहुँचे। अस्तु। गुरु जी की तिब्बत-यात्रा के विषय में तिब्बतीय अनुश्रुति दूर-दूर तक प्रसृत है। 'Guru Nanak in Tibet शीर्षक-लेख में (Indian Times, March 6, 1966) तरुंगपा तुलकु का कथन है 'तिब्बत में गुरु नानक का समादर गुरु पद्मसम्भव के प्रभाव के रूप में किया जाता है। ...बहुत तिब्बती जानते हैं कि श्री गुरु नानक तिब्बत आए थे।' तिब्बत में कुछ मठों में श्री गुरु नानक की मूर्ति होती है, और वहाँ भद्र गुरु के नाम से उनकी अर्चना होती है।

जी मानस सर से दक्षिण-पूर्व में, पर्वतीय प्रदेश में यात्रा करते-करते हिमगिरि के क्रोड में नेपाल तथा सिक्किम राज्यों में पहुँचे।[1] और वे सिक्किम से, नाथु ला नामक दर्रे में से निकलकर तिब्बत के चुम्बी नामक प्रदेश तक गए। उत्तरीय सिक्किम में चुनथांग नामक एक लघु ग्राम में गुरु जी का स्मारक एक टीला है। वहाँ के लोगों का विश्वास है कि Rimpoche नानक गुरु तिब्बत को जाते हुए वहाँ ठहरे थे। यह भी कथा प्रचलित है कि गुरु जी केले के पत्तों में बाँधकर चावल अपने साथ ले गए थे। वहाँ के पर्वतीय लोगों के लिए यह भोजन अदृष्ट-पूर्व पदार्थ था। उन लोगों के कुतूहल को देखकर गुरु जी ने अपने भोज्यान्न में से स्वल्प उनको भी दे दिया। उन्होंने चावल खाए नहीं, प्रत्युत खेतों में विकीर्ण कर दिए और केले के पत्ते भूमि में गाड़ दिए। कथा के अनुसार, चावलों में से पौदे उग आए। मक्का तथा सेब का वह देश अब प्रभूत शालि तथा कदली का भी देश है।[2]

SIKHBOOKCLUB.COM

तिब्बती लोग अमृतसर की तीर्थयात्रा करते हैं, और कहते हैं कि अमृतसर उस गुरु का स्मारक नगर है जिसने कटु रीठे (संस्कृत अरिष्ट) मधुर बना दिए थे, जिसने सिद्धों के साथ वार्तालाप किया था, और जो संसार में दस बार अवतीर्ण हो चुका है। देखिए नानक प्रकाश, खण्ड २, पृष्ठ ६६०-६३, सम्पादकीय टिप्पण।

१. गिआनी ग्यान सिंह (त्वारीख़ गुरु खालसा, पृष्ठ ३५०) ने गुरु जी के, नेपाल की राजधानी, काठमांडु पहुँचने की तिथि भी दी है; किन्तु उसका अंकित यात्रामार्ग उक्त मार्ग से भिन्न है।

२. जनवरी १९६५ के Sikh Review में Maj. N. S. Issar का लेख **'Guru Nanak's Visit toTibet'**.

१३

रक्त का जयघोष

गुरु जी की 'उदासियों' (यात्राओं) के दीर्घ वर्षों में नानकी का ध्यान सतत उनकी ओर रहता था। अब वह सुलतानपुर में उनके प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करने लगी। वह जानती थी कि मेरा भाई संसार को सत्य-मार्ग दिखलाने के लिए, तथा उसको क्लेशों से मुक्ति दिलाने के लिए दूर-दूर तक भ्रमण करता है; तथापि उसे दृढ़ विश्वास था कि मैं जब उससे मिलना चाहूँगी वह मेरे समीप आएगा। इस विश्वास के लिए उसे किसी वाह्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं थी। उसका अन्तःकरण ही उसके लिए परम प्रमाण था। गुरु जी अब हिमगिरि के प्रदेशों की यात्रा से लौट रहे थे, और प्रबल वेग से बहती हुई सरिताओं से संग्रथित, दुर्गम, उच्च, भू-भागों में से निकलते हुए जम्मू पहुँच चुके थे। जम्मू से पठानकोट और गुरदासपुर होते हुए वे पंजाब की समतलभूमि में आए, और १५१८ ई० की शरद् ऋतु के प्रारम्भ में सुलतानपुर पहुँच गए।[1]

भाई का प्रत्यागमन नानकी के लिए नवोदित चन्द्र के तुल्य था। किन्तु इस समय उसके हर्ष में शीघ्र शोक मिश्रित हो गया। गुरु जी तृतीय दिन ही पुनः प्रस्थान के लिए उद्यत हो गए। नानकी ने उनसे कहा---'यात्रार्थ इतने आतुर न हो।' सत्य तो यह है उस समय स्वयं नानकी महा प्रस्थान करने वाली

---

१ यद्यपि गिआनी गिआन सिंह ने गुरु जी की यात्रा का अन्य ही मार्ग अंकित किया है, तथापि उसने गुरु जी के सुलतानपुर प्रत्यागमन की यही तिथि दी है (त्वारीख़ गुरु खालसा, पृष्ठ ३६६)। प्रत्यागमन-यात्रा का यह अन्तिम भाग, तथा गिआनी गिआनसिंह वर्णित यात्रा का अन्तिम भाग एक समान है। अक्तूबर-दिसम्बर १९६७ की 'आलोचना' में साहिबसिंह के लेख 'जीवन वृत्तान्त गुरु नानक देव जी' (पृष्ठ ७५) में इसी तिथि के समीप की तिथि दी गई है।

थी। दो दिन पश्चात् वह रुग्ण हो गई और जपु जी का पाठ सुनती-सुनती सहसा परलोकगामिनी हो गई। तीन दिन पश्चात् जैराम भी ज्वर से पीडित होकर शीघ्र स्वर्गवासी हो गया। गुरु जी के लिए सुलतानपुर में आगमन का, एवं वहाँ के पुराने स्व-भक्तों से मिलने का, यह अन्तिम अवसर था। गुरु जी के सुलतानपुर से प्रस्थान करने के समय नवाब दौलतखाँ उन्हें नमस्कार करने आया। इसके शीघ्रपश्चात् दौलतखाँ दिल्ली के सिंहासन के लिए होने वाले संघर्ष में निगडित रहने से पुनः गुरु जी के दर्शन न कर सका।

सुलतानपुर से चलकर गुरु जी करतारपुर आ गए, जो अब उनकी शिक्षाओं का केन्द्र, तथा उनके उपदिष्ट जीवन-मार्ग का आदर्श हो गया। लोग गुरु जी के उपदेश सुनने, अथवा उनके दर्शन करने, के लिए आने लगे। उनके समीप बैठकर बहुत से लोगों को नवीन प्रकाश प्राप्त हुआ, और वे उनके सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। घर जाकर वे लोग अपने दैनिक कार्यों में गुरु जी से गृहीत दीक्षा के मार्ग पर चलते। करतारपुर ने अनेक नर-नारियों को इस प्रकार जीवन का नवीन अर्थ समझाया। गुरु जी को करतारपुर में आए अभी एक वर्ष नहीं हुआ था, और करतारपुर को उत्तर काल में जो महत्त्व प्राप्त रहा उसके सदृश, कोई विशिष्टता प्राप्त नहीं हुई थी कि गुरु जी एक अन्य यात्रा के लिए प्रस्थित हो गए। यह यात्रा पश्चिम-देशों की थी। इस यात्रा में गुरु जी ने नील-वस्त्र-परिधान किया, और यथापूर्व मर्दाना उनका सहयात्री रहा।

जनमसाखी का कथन है कि इस यात्रा में जहाँ कहीं गुरु जी बालकों से मिलते वे उनके खेल तथा मनोविनोद में सम्मिलित हो जाते।[1] करतापुर से दक्षिण पश्चिम में चलते हुए गुरु जी मुलतान, और वहाँ से सिन्धु नदी के पश्चिमीय तट पर स्थित सक्खर और वहाँ से, कराची से पचास मील पूर्व में थट्टा नामक अत्यन्त प्राचीन नगर पहुँचे। वहाँ से उत्तर-पश्चिम में चलकर हब नदी के पार, बलूचिस्तान के दक्षिण-पूर्व में, लास बेला प्रदेश में प्रविष्ट हुए। वहाँ से पश्चिम-दिशा में यात्रा करते हुए वे दो पर्वतों के मध्य संकीर्ण मार्ग में, हिंगोल नदी के तट पर स्थित हिंगलाज नामक देवालय के कारण प्रसिद्ध स्थान पर पहुँचे। हिंगलाज के देवालय में हिंगलाज (लाल) देवी की मूर्ति है। इसी को मुसलमान बीबी नानी, और हिन्दू पार्वती अथवा काली अथवा माता भी कहते हैं। 'मेहरबान जनमसाखी' के अनुसार यहाँ गुरु जी ने वैष्णवों के साथ वार्तालाप किया। परन्तु वे गुरु जी के वेष से उनके धर्म और

१ 'पुरातन जनमसाखी,' पृष्ठ ११४।

उनकी जाति का अनुमान न कर सके।[1] यहाँ पर गुरु जी की यात्रा की स्मारिका एक 'धरमसाला' है।

हिंगलाज पर्वत से उतर कर दक्षिण में चलने पर गुरु जी को मक्का जाने वाले लोग मिले। गुरु जी भी अरब सागर पार करने के लिए उन यात्रियों के संग बलूचिस्तान के दक्षिणीय तट से चलने वाले पोत में बैठ गए। भाई गुरदास के अनुसार उस समय गुरु जी ने नील वस्त्र धारण कर रखे थे। यात्रियों की सी एक लाठी, और बगल में एक पुस्तक के अतिरिक्त उनके पास शरीरक्षालनार्थ ('उजू' का) एक लोटा, और प्रार्थना के समय बिछाने के लिए एक चटाई थी।[2] हाजी (मक्का-यात्री) के लिए अपेक्षित वस्तुएँ साथ में लेकर गुरु जी सुगमता से मुसलमान यात्रियों में सम्मिलित हो गए।

पोत अरब के पश्चिमीय तट पर, रक्त-सागर के, जद्दा नामक बन्दरगाह पर जाकर लगा। पोत से उतर कर गुरु जी और मर्दाना नगर-प्राचीर से बाहर ईव् के मक़बरे के समीप ठहर गए। जद्दा नगर की मस्जिदों के बुर्जों को देखकर मर्दाने का हृदय हर्ष से उछलने लगा होगा। उसके लिए वह दृश्य स्वयं मक्के का चित्र था। परन्तु अभी दोनों नगरों के मध्य चालीस मील से अधिक निर्जन प्रदेश का अन्तर था। यात्रियों ने मन्थर ऊँटों पर आरूढ़ होकर मक्के का मार्ग पकड़ा। ऊँटों के गलों में बँधी घंटियाँ बज रही थीं, भक्त-गण धर्म-पुस्तकों में से कण्ठस्थ किए स्थलों का पाठ कर रहे थे, और ऊँटवाले ऊँटों की गति तीव्र करने के लिए गीत गा रहे थे। ऐसे ही यात्रि-वृन्द में सम्मिलित हो कर गुरु जी और मर्दाना भी मक्के के लिए प्रस्थित हुए। अपनी सामान्य शैली के अनुसार स्थान के नाम का निर्देश न करती हुई जनमसाखी एक हाजी के साथ गुरु जी के प्रयाण का वृत्तान्त सुनाती है: जब वे चल रहे थे तब हाजी ने देखा कि एक लघु मेघ, ललाटंतप सूर्यातप से उनकी रक्षा करता हुआ, उनके सिर के ऊपर उनके साथ-साथ चल रहा है। उसने सबल स्वर में कहा कि मेघ मेरे सिर के ऊपर है। फिर, उसने गुरु जी से कहा—'कभी किसी हिन्दू ने मक्के की तीर्थ-यात्रा नहीं की है। तुम मेरे साथ न चलो। आगे रहो अथवा पीछे।' गुरु जी ने 'एवमस्तु' कहकर कहा—'तुम आगे रहो।' हाजी आगे हो गया। क्षणानन्तर उसने पीछे देखा तो न वहाँ उसका सहयात्री हिन्दू था, और

---

१. पृष्ठ ४६१-६२।

२. "बाबा फिरि मके गइआ नील बस्त्र धारे बनवारी।
आसा हथि, किताब कछि, कूजा बाँग-मुसलाधारी।
बैठा जाइ मसीत विचि जिथै हाजी हजि गुजारी।"
—भाई गुरदास, वार १। ३२, प्रथम तीन पंक्तियाँ।

न मेघ। तब हाजी ने शोक से हाथ मले, और कहा—'मुझे परमात्मा के दर्शन हो गए; किन्तु खेद! मैंने सौभाग्य-प्राप्त अवसर से लाभ नहीं उठाया। मैं सत्य-मार्ग से भ्रष्ट रहा।'[1] क्षुद्र शैलों से व्याप्त प्रदेश को पार करके गुरु जी तथा मर्दाना उस संकीर्ण उपत्यका में अवतीर्ण हुए जहाँ मक्का अवस्थित है। 'पुरातन जनमसाखी' का कथन है—'पुस्तकों में पहले से ही लिखा था कि नानक नामक एक दर्वेश आएगा। तब मक्के के कुओं में पानी बढ़ जाएगा।' अब गुरु जी काबे की पवित्र भवन-सीमा में प्रविष्ट हुए, और स्तम्भ-वीथी में विश्राम के लिए लेट गए। कुछ देर में उनको नींद आ गई। उनके पैर काबे की दिशा में फैले हुए थे। सन्ध्या की नमाज़ का समय था। क़ाज़ी रुक्न्-उद्-दीन[2] नमाज़ पढ़ने आया। उसने गुरु जी को उस प्रकार लेटे देखा तो कहा—'भक्त! देख, तू काबे की दिशा में पैर फैला रहा है? तुझे दिखाई नहीं देता है?' गुरु जी ने उत्तर दिया—'जिस दिशा में काबा नहीं है मेरे पैर उधर कर दे।' तब क़ाज़ी रुक्न्-उद्-दीन ने गुरु जी के पैर पकड़े और घुमाना आरम्भ किया। उसने जिधर पैर घुमाए, काबा भी उधर ही घूम गया। चकित होकर क़ाज़ी रुक्न्-उद्-दीन ने गुरु जी के चरण चूमे...... उसने कहा—आश्चर्य! आश्चर्य!! मैंने आज परमात्मा के फ़क़ीर के दर्शन किए हैं।[3]

वहाँ विद्वान् फ़क़ीरों तथा मक्के के यात्रियों की भीड़ हो गई। भाई गुरदास का कथन है—उन्होंने अपने ग्रन्थ खोले और वे गुरु जी से प्रश्न करने लगे। वे

SIKHBOOKCLUB.COM

---

१. 'पुरातन जनमसाखी,' पृष्ठ ११४-१५।

२. कतिपय उत्तरकालीन लेखकों के विचार में यह रुक्न्-उद्-दीन मुलतान के शैख़ बहाउद्-दीन का पौत्र शैख़ रुक्न्-उद्-दीन था। किन्तु ऐसा मानने में इतिहास-विरोध आता है। वह शैख़ निज़ाम-उद्-दीन औलिया का समकालीन था तथा ईसवीय चतुर्दश शतक के पूर्वार्ध में विद्यमान था। उसके शिष्य, उच के शैख़ जलाल, अथवा मख़दूम जहानियाँ, जहाँगश्त ने, जो मक्के की सात बार यात्रा कर चुकने के लिए प्रसिद्ध था, १३८४ ई० में शरीर-त्याग किया था। 'पुरातन जनमसाखी' में इस प्रसंग में, जिस रुक्न्-उद्-दीन का नाम आता है वह कदाचित् मखदूम जहानिअन् का कोई वंशधर अथवा कोई अन्य सूफ़ी सन्त रहा होगा और सम्भवतः भारत से अरब गया होगा।

३. 'पुरातन जनमसाखी, पृष्ठ ११५-१६। भाई गुरदास (वार १। ३२) ने भी यह साखी दी है। परन्तु भाई गुरदास का कथन है कि गुरु जी काबे की ओर पैर फैलाकर सो रहे थे। प्रातःकाल जीवन नामक कोई पुरुष उधर आया—जीवन भारतीय नाम प्रतीत होता है। उसने गुरु जी को उस प्रकार सोते देखकर क्रोध में भरकर उनके लात मारी। तत्पश्चात् उसने गुरु जी का पैर पकड़ कर घुमाना आरम्भ किया; किन्तु उसने देखा कि जिधर पैर घूमता है उधर ही काबा भी।

जानना चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान दोनों में उत्तम कौन है ? गुरु जी ने उत्तर दिया कि सत्कर्म नहीं करेंगे तो दोनों कष्ट भोगेंगे। परमात्मा के न्याय-भवन में न कोई हिन्दू माना जाता है और न कोई मुसलमान। हिन्दू और मुसलमान नाम आभिज्ञानिक चिह्न हैं। ये ऐसे ही क्षण-भंगुर हैं जैसा कुसुम्भ का रंग जो वस्त्र-प्रक्षालन के समय पानी में घुलकर बह जाता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दूसरे की निन्दा करते हैं। हिन्दू ईश्वर को राम, और मुसलमान रहीम कहते हैं। किन्तु ईश्वर का स्मरण कोई नहीं करता है। वस्तुतः संसार पाप-पथ पर आरूढ है।[1]

'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार गुरु जी ने वहाँ फ़ारसी के शब्दों से पूर्ण यह 'शबद' पढ़ा :—

"यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार ॥
हका कबीर करीम तू बेऐब परवरदगार ॥
दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी ॥
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी ॥
जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसतंगीर ॥
आखिर बिअफतम कस न दारद चूं सवद तकबीर ॥
सब रोज गसतम दर हवा करदेम बदी खिआल ॥
गाहे न नेकी कार करदम मम ईं चिनी अहवाल ॥
बदबखत हम चू बखील गाफिल बेनजर बेबाक ॥
नानक बगोयद जनु तुरा तेरे चाकरां पाखाक ॥"[2]

मक्के से उत्तर में चल कर मर्दाने के साथ गुरु जी मुहम्मद साहिब के नगर मदीने, और वहाँ से उत्तर-पूर्व में चलते हुए अरब के मरुस्थल को पार करके,

---

१. वार १।३३।

२. गुरुग्रन्थ साहिब, तिलंग, पृष्ठ ७२१।

तात्पर्य—हे सृष्टिकर्ता ! तेरे सम्मुख मैं एक निवेदन करता हूँ। इसे सुन। तू महान्, दयालु, निर्दोष और पालक है। जगत् नश्वर स्थान है, इस बात को निश्चय से मन में जान लेना चाहिए। [हे मनुष्य !] तेरे केश इज़राईल (यमराज के दूत विशेष) ने पकड़ रखे हैं, तो भी तू इस बात को नहीं जानता है। नारी, पुत्र, पिता, भ्राता कोई भी वहाँ तेरी बाँह नहीं पकड़ेगा। जब अन्त आएगा कोई तेरी रक्षा नहीं करेगा। मनुष्य का जीवन विषयासक्ति में व्यतीत हो जाता है, उसके मन में पाप ही भरा रहता है, वह कभी सत्कर्म नहीं करता है। मनुष्य की यह अवस्था रहती है—दुर्भाग्य, द्वेष, प्रमाद, अन्धता, निर्लज्जता से ही वह भरा रहता है, नानक ने कहा है कि मैं तेरा दास हूँ, तेरे दासों के चरणों की धूलि हूँ।

SIKHBOOKCLUB.COM

दजले के तटों पर स्थित बगदाद[1] पहुँचे। वे नगर से बाहर एक मक़बरे के समीप बैठकर ईश्वर-स्तुति का गीत गाने लगे, और मर्दाना रबाब बजाने लगा। ऐसा गान-वादन गुरु जी के नित्य-कर्म का अंग था। पुरातनवादी मुसलिम भक्ति-काण्ड में संगीत निषिद्ध है। अतः गुरु जी का यह कार्य पवित्र स्थान को दूषित करने वाला समझा गया। बहुत लोग मतान्तरीय फ़क़ीर के प्रति विरोध की भावना से भर गए। एक दिन कुछ नागरिक गुरु जी को दण्ड देने के विचार से उनके समीप आए। उनमें बालक, तरुण, वृद्ध, सभी थे। जिस स्वर में मुसलमान मुल्ला 'अज़ान' देता है उसी स्वर में गुरु जी ने आशी-

१. उत्तरकालीन लेखकों के अनुसार गुरु जी मक्के से और भी उत्तर दिशा में चलते हुए शामदेश (सीरिया) होकर यूरोप के अन्दर टर्की तक गए। कतिपय लेखक गुरु जी की पश्चिमीय यात्रा के देशों में मिश्र, हवश तथा कई अन्य अफ़्रीकी देश सम्मिलित करते हैं। परन्तु भाई गुरदास की रचना तथा 'पुरातन' जनमसाखी सदृश प्राचीन ग्रन्थों से इन वृत्तान्तों की पुष्टि नहीं होती है। किन्तु बग़दाद की यात्रा के विषय में भाई गुरदास का साक्ष्य स्पष्ट है, और अभी तक सामान्यतः उसका प्रत्याख्यान नहीं हुआ है। वास्तव में वर्तमान बग़दाद के दक्षिण पश्चिम में बहलूल दानाह् के मक़बरों में तुर्की भाषा में उत्कीर्ण एक अभिलेख में श्री गुरु नानक का उल्लेख है। इससे उनकी बग़दाद यात्रा के सत्य का समर्थन होता है। इस अभिलेख का अनुसन्धान प्रथम विश्व-युद्ध के काल में, १९१७ ई० में, कतिपय सिख सैनिकों ने किया था, और इसका प्रकाशन Sube-Major फ़तेहसिंह ने बग़दाद से ६ मई १९१८ को, एक मुद्रित पत्र द्वारा किया। तत्पश्चात् सेवाराम सिंह रचित The Divine Master, भाई वीरसिंह कृत गुरु नानक चमत्कार, सन्तोखसिंह लिखित 'नानक प्रकाश' इत्यादि ग्रन्थों में यह अभिलेख प्रकाशित हो चुका है। तेजासिंह और गन्डासिंह लिखित A Short History of the Sikhs में इस अभिलेख के शब्द अरबी अक्षरों में दे दिए गए हैं। इन तथा अन्य लेखकों ने इसका अनुवाद भी दे दिया है। यद्यपि इनके अनुवाद परस्पर भिन्न हैं, तथापि प्रत्येक से यह सिद्ध है कि इस अभिलेख में श्री गुरु नानक का उल्लेख है। परन्तु अब W. H. McLeod ने अपने ग्रन्थ Guru Nanak and the Sikh Religion में इस अभिलेख में श्री गुरु नानक के उल्लेख की बात का विरोध किया है। उसने इस अभिलेख के फ़ोटो को लन्दन में एक तुर्की विद्वान् से पढ़वाया। उस विद्वान् ने कहा कि जो शब्द देखने में 'बाबा नानक' प्रतीत होते हैं, और अब तक लोग जिनको ऐसा ही पढ़ते रहे हैं, वे 'बाबा नानक' नहीं हैं। उसकी युक्ति यह थी कि 'बाबा नानक' पाठ अभिलेख में प्रयुक्त छन्द को विकृत करता है। किन्तु उसने पाठान्तर का सुझाव नहीं दिया। जब इसी अभिलेख का फ़ोटो हारवर्ड विश्वविद्यालय में तुर्की भाषा के Lecturer Dr. Jhinasi Tekin को दिखाया गया और उन्हें 'बाबा नानक' पाठ का विरोधी मत भी बतलाया गया, तब उन्होंने 'बाबा नानक' ही पढ़ा। उनका विचार है कि 'बाबा नानक' पाठ अभिलेख के छन्द को विकृत नहीं करता है। प्रथम परिशिष्ट भी द्रष्टव्य है।

र्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया। इसे सुनकर समस्त जन-समुदाय स्तब्ध हो गया।.........पत्थर फेंकने के लिए उठाए हुए उनके हाथ आकाश में जड़वत् खड़े रह गए।[1] भाई गुरदास के अनुसार पीर दस्तगीर[2] आया और उसने गुरु जी से पूछा—'तुम कौन हो और तुम किस फ़कीर-वंश से सम्बद्ध हो?' मर्दाने ने उत्तर दिया—'कलियुग में नानक का जन्म हुआ है। समस्त फ़क़ीरों का परित्याग करके वह केवल एक परमात्मा की उपासना करता है। वह स्वर्ग में, मनुष्य लोक में, और चारों दिशाओं में प्रसिद्ध है।[3]

बग़दाद में गुरु जी एक अन्य फ़क़ीर से भी मिले। उसकी स्मृति भी अभी तक अक्षुण्ण है। उस फ़क़ीर का नाम बहलूल दिया गया है।[4] इस अनुश्रुति ने एक हिन्दू परिव्राजक द्वारा रचित अंग्रेज़ी कविता में आधुनिक अभिव्यक्ति प्राप्त की है। उस पावन स्थान की यात्रा के अनन्तर वह पारिव्राजक लिखता है:—

"भारत के पूत-पुत्रों के चूडामणि, गुरु नानक! तू भ्रातृ-भाव तथा पुण्य-प्रकाश का उपदेश करता हुआ इस साधारण शिला-शकल पर बैठा था।

ईरान की आत्मा को मोहित करने के लिए तूने सप्त-समुद्री-स्रोत से निस्सारित क्या अद्भुत गीत गाए थे!

तू ने हिमगिरि की विविक्त गुहाओं एवं गहन-वीथियों से लाकर क्या अद्भुत शान्ति बग़दाद के मृद्वीका-कुंजों तथा गुलाब के केदारों में भरी थी!

तू अपने ईरानी सन्त शिष्य बलोल के हृदय को ज्योतिर्मय करने के लिए बदरीनाथ के हिम-गोपित शृंग से क्या अद्भुत प्रकाश लाया था!

बलोल जीवन और श्रेयो-मार्ग के सम्बन्ध में तेरे प्रवचनों को पौने चार मास तक श्रवण करता रहा, जबकि चन्द्रमा पितृ-गण के तृण-हरित मरु तीर पर दाडिम-निकुंज में वृद्धि और क्षय को प्राप्त होता रहा!

और जब तू उससे विदा होकर अपनी प्रिय भारत-भूमि के लिए प्रस्थित

---

१. सन्तोखसिंह : नानक प्रकाश, खण्ड ३, पृष्ठ १०४६-४७।

२. वह अब्दुल क़ादिर गीलानी का कोई ऐसा उत्तराधिकारी रहा होगा जो गुरु जी का समकालवर्ती था। गीलानी का अन्य नाम पीरे दस्तगीर भी था, और वह एक प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त था। वह ईसवीय बारहवीं शताब्दी में विद्यमान था। बग़दाद में उसके मक़बरे का महासम्मान किया जाता है।

३. भाई गुरदास : वार १।३५।

४. बहलूल दानाह्, खलीफ़ा हारुन् अल-रशीद का सम्बन्धी तथा दुर्लभ मित्र माना जाता है। गुरु जी से मिलने वाला बहलूल या तो उस आद्य बहलूल का कोई उत्तराधिकारी रहा होगा, या उसके मक़बरे का अधिष्ठाता।

(G. Le Strange, Baghdad during the Abbasid Calephate, p. 350)

हुआ, तब, सुना है, वह विरक्त न तो किसी से बोलता था और न किसी मर्त्य अथवा अमर्त्य का शब्द सुनना चाहता था।

उसकी कीर्ति से दिग्-दिगन्त मण्डित हो गया, और ईरान का भूपति उसे नमस्कार करने आया ; परन्तु उस सुकृती ने न तो पार्थिव सम्पदाओं को हाथ लगाया और न राजाओं एवं सामन्तों की स्तुतियों पर कान दिया !

ऐसा था उसका जीवन, तेरे पावन-चरण-न्यास से पूत प्रस्तर-खण्ड के पाद-तल में वह एकाकी, एकनिष्ठ मननपरायण होकर साठ शरद् बैठा रहा !"[1]

गुरु जी की पश्चिम दिग्यात्रा में बग़दाद मार्ग-परिवर्तन का स्थान था। यहाँ से उन्होंने करमानशाह को जाने वाला उत्तर-पूर्वीय मार्ग ग्रहण किया। पश्चिमीय सीमा से ईरान के वाणिजिक, सैनिक, साहस-पराक्रमी, और तीर्थ-यात्री अत्यन्त प्राचीन काल से इसी मार्ग से कर्बला, नजफ़ और काज़िमेन के मक़बरों की यात्रा करते थे। इसी मार्ग पर चलते हुए गुरु जी और मर्दाने ने विशाल निर्जन मरु, सरिताओं, रेतीले पत्थर की चट्टानों एवं पहाड़ियों को पार किया। ईरान, मध्य एशिया के कतिपय देश तथा अफ़ग़ानिस्तान में उनकी यात्रा के चिह्न काल ने लुप्त कर दिए हैं। प्राचीन इतिहासों में उनका कोई उल्लेख नहीं है। यद्यपि उत्तरकालीन एक लेखक ने गुरु जी की यात्रा का जो मार्ग अंकित किया है[2] स्फुटतया उसमें अत्यन्त अस्पष्ट सूचना-संकेतों से साहाय्य प्राप्त किया गया है, और उसमें भौगोलिक स्थिरता का अभाव है, तथापि यदि उसका अनुसरण किया जाए तो ऐसा प्रतीत होगा कि गुरु जी तेहरान, बुख़ारा, कागान, कट्टा-कुरगान, समरक़न्द, बल्ख़, काबुल और जलालाबाद[3] होते हुए, ख़ैबर दर्रे के पथ से, पेशावर पहुँचे। 'मेहरबान जनमसाखी' में वर्णित है कि पश्चिम देशों की यात्रा में गुरु जी मक्के के अतिरिक्त सीरिया और काबुल भी

---

१. श्री आनन्द आचार्य : 'On Reading an Arabic Inscription in a Shrine outside the town of Baghdad, dated 912 Hegira, in Snow-birds, Londoen : Macmillan, 1919. इस अरबी अभिलेख के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्राप्त नहीं है। सम्भव है आनन्द आचार्य ने पूर्वोक्त अभिलेख ही देखा हो। यद्यपि पूर्वोक्त अभिलेख अरबी भाषा में नहीं तुर्की भाषा में है, तथापि यह कहा जा सकता है कि कवि की अभिरुचि अभिलेख पढ़ने में उतनी नहीं थी जितनी अभिलेख में संकेतित कथा में।

२. गिआनी गिआनसिंह : त्वारीख़ गुरु खालसा, पृष्ठ ४४०-६६।

३. जलालाबाद के निकट, गुरु जी की यात्रा का स्मारक एक गुरद्वारा है। उसका नाम है सुलतानपुर। ऐसा एक गुरद्वारा काबुल में भी था; परन्तु जीर्णोद्धार न होने से वह भूमिसात् हो गया।

गए। परन्तु इस साखी में किसी अन्य देश अथवा स्थान के नाम का निर्देश नहीं है। इस साखी के अनुसार गुरु जी इस यात्रा से लौटते समय पेशावर आए।[1] पेशावर में गुरु जी ने गोरखत्री, अथवा गोरख क्षेत्र में, अर्थात् गोरखनाथ के मन्दिर में, गोरख पन्थियों, अर्थात् कनफटों के नेता के साथ वार्तालाप किया।

पेशावर से प्रस्थित होकर सिन्धु नदी को पार करके गुरु जी और मर्दाना हसन अब्दाल पहुचे। यह स्थान रावलपिंडी जिले में तक्षशिला से दस मील उत्तर-पश्चिम में है। यहाँ पहाड़ी के शिखर पर एक मुसलमान फ़कीर रहता था। उसका नाम था कन्धार का बाबा वली अथवा क़न्धारी बाबा वली। मर्दाना परिश्रान्त तथा पिपासित था; पास में कहीं पानी नहीं था ; वह पहाड़ी के ऊपर चला गया। बाबा वली ने उससे पूछा तू कौन है और यहाँ कैसे आया है ? जब मर्दाने ने उसे बतलाया कि मैं किसी साधारण पुरुष के साथ नहीं हूँ, तब बाबा वली ने उसे पानी नहीं दिया और कहा कि यदि तेरा गुरु इतना सिद्ध पुरुष है तो वह अपने शिष्य को प्यासा क्यों मरने दे रहा है ? वापिस आकर मर्दाने ने वली का कटाक्ष गुरु जी को सुना दिया। गुरु जी ने कहा—'फिर ऊपर जाओ और नम्रता के साथ प्रार्थना करो।' मर्दाने ने गुरु जी की आज्ञा का पालन किया, परन्तु वह पुनः निराश वापिस आया। तब गुरु जी ने मर्दाने से पहाड़ी पर से एक पत्थर उठाने को कहा। मर्दाने ने वैसा किया, और उछलता हुआ पानी निकल आया। मर्दाने ने पेट भर कर पानी पी लिया। किन्तु नवीन जल-स्रोत के उद्भव के साथ पहाड़ी के ऊपर बाबा वली के जलाशय का जल घटने लगा और स्वल्प काल में समस्त जलाशय शुष्क हो गया। इससे वली महाकुपित हुआ, और, जैसी कि कथा है, उसने ऊपर से एक वृहत् शिला-खण्ड गुरु जी तथा मर्दाने के ऊपर लुढ़का दिया। गुरु जी ने शान्ति से बाँह ऊँची की, और हाथ का पंजा उसके आगे कर दिया। वह शिला-खण्ड वहीं रुक गया और उस पर पंजे का चिह्न अंकित हो गया।[2] तब बाबा वली पहाड़ी से उतरकर नीचे आया, और गुरु जी के चरणों में नत-मस्तक हो गया। करतलांकित वह शिला अभी तक वहाँ सुरक्षित है। वह स्थान, जहाँ जल-स्रोत स्फुटित होने की अद्भुत घटना हुई, पँजा साहिब के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार, हसन अब्दाल का नव-नाम-करण हो गया। वहाँ निर्मित गुरुद्वारा सिखों के परम भव्य तथा परमादृत गुरुद्वारों में अन्यतम है।

---

१. पृष्ठ ४६३।

२. यह वृत्तान्त बाला जनमसाखी के उत्तरकालीन संस्कारों में ही उपलब्ध होता है। William Moorcroft ने १८२४ ई० में इस प्रदेश में पर्यटन किया था। उसने हसन अब्दाल में इस कथा को जिस रूप में सुना था लेख बद्ध कर दिया है (देखिए Travels, II, pp. 319-20).

अब दक्षिण-पूर्वीय मार्ग से चलते हुए गुरु जी पंजाब के अभ्यन्तर में प्रवेश करने लगे, और झेलम के समीप वे टीला बालनाथ और कटास इन दो प्राचीन धर्मस्थानों पर गए। टीला बालनाथ टीला बाल गुन्दई भी कहलाता है। कहा जाता है यहाँ गुरु जी ने योगियों के मठ के अध्यक्ष को अपना अनुयायी बना लिया। कटास से गुरु जी अपने पुरातन शिष्य लालो से मिलने के लिए सैदपुर पहुँचे। उत्तर पश्चिमीय पर्वतमाला के उस पार से आकर भारत को जीतने वाला, और मुग़ल-साम्राज्य का शिलान्यास करने वाला बाबर उस समय भारत पर तृतीय आक्रमण कर रहा था। सिआलकोट हस्तगत करके वह ऐमिनाबाद (सैदपुर) पहुँचा। सिआलकोट में बाबर का प्रतिरोध नहीं किया गया था, अतः उसने उस नगर को नहीं लूटा ; परन्तु सैदपुर का भाग्य वैसा नहीं था। यहाँ आक्रमणकारी के विरोध का प्रयास किया गया ; अतः यह आततायी के उग्रतम क्रोध का आखेट हुआ। आक्रमण करके नगर अधिकार में ले लिया गया, दुर्ग-रक्षक सैनिक धराशायी कर दिए गए, और नागरिक बन्दी बना लिए गए।[1] सैदपुर के ऊपर बाबर के सैनिकों के निर्घृण अत्याचार का अन्य कारण यह भी था कि यहाँ बाबर के आक्रमण का अन्त हो गया : जब बाबर सैदपुर में था उसे अपनी राजधानी काबुल से, अपने राज्य पर शत्रु के आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ। इस समाचार ने उसकी और आगे तक प्रदेशों की विजय की परियोजना पूर्ण न होने दी, और उसे तत्काल पीछे लौटने के लिए विवश कर दिया।

SIKHBOOKCLUB.COM

सैदपुर के भाग्य की विडम्बना को गुरु जी ने आँखों से देखा। इससे उनका हृदय अतिसन्तप्त हुआ। अत्यन्त प्रभविष्णु तथा भावुक काव्य उनके मुख से निःश्वसित हो गया। हिन्दू और मुसलमान दोनों के कष्ट मर्मस्पर्शी करुण शब्दों में मुखरित हो उठे। उन शब्दों में प्रतिवाद की शक्ति-ज्वाला प्रच्छन्न रूप से व्याप्त है। वे 'शबद' गुरु ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित हैं। उनमें से एक है :—

"खुरासान खसमाना कीआ, हिंदुसतान डराइआ ॥
आपै दोसु न देई करता, जमु करि मुगल चड़ाइआ ॥
एती मार पई, करलाणे, तैं की दरदु न आइआ ॥
करता तू सभना का सोई ॥
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोस न होई ॥
सकता सीहु मारे पै वगै, खसमै सा पुरसाई ॥

---

१. फ़िरिश्ताह् के अनुसार (त्वारीखे फ़िरिश्ताह्, खण्ड २, पृष्ठ २०२) सैदपुर में बाबर के सैनिक-शिविर में तीस सहस्र नर-नारी बन्दी इकट्ठे किए गए।

रतन विगाड़ि विगोए कुती मुइआ सार न काई ।।
आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई ।"[1]

पुनः—

"पाप की जंञ लै काबलहु धाइआ,
जोरी मंगै दानु वे लालो ।।
सरमु धरम दुई छपि खलोए, कूड़ फिरै,
परधानु वे लालो ।।
काजीआ बामण की गल थकी, अगदु,
पड़ै सैतानु वे लालो ।।
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि,
करहि खुदाई वे लालो ।।
जाति सनाति होरि हिदवाणीआ एहि भी,
लेखै लाइ वे लालो ।।
खून के सोहिले गावीअहि नानक,
रतु का कुंगू पाइ वे लालो ।।
साहिब के गुण नानक गावै मासपुरी विच,
आखु मसोला ।।
जिन उपाई रंगि रवाई बैठा वेखै,
वखि इकेला ।।

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा रागु, पृष्ठ ३६० ।

तात्पर्य—ईश्वर ! तूने खुरासान को अपनी छत्र-छाया में ले लिया, और भारतवर्ष की हत्या करवा डाली ! तू इस हत्या-काण्ड का कर्ता है तो भी अपने आपको दोषी नहीं ठहराता है ! तूने मुग़ल (बाबर) को यमराज बनाकर भारत पर आक्रमण करने भेज दिया ! भारतियों को इतनी बुरी तरह धुना गया ; वे हाय-हाय करते रहे, और तुझे दया नहीं आई ! तू ही एक सबका जन्मदाता है ! यदि एक बलवान् अन्य बलवान् को मारता है तो लोगों के मन में रोष उत्पन्न नहीं होता है ; परन्तु जब बलवान् सिंह पशुओं के वर्ग पर आ पड़ता है तब लोग पशु-स्वामी से पूछते हैं कि तू कहाँ गया था ? [हाय ! दिल्ली-शासक पठान सुल्तानों ने] कुत्ते के तुल्य व्यवहार किया। [इन्होंने मुग़लों का कुछ सामना नहीं किया और] रत्नों (भारतियों) को [मुग़लों के हाथ] दुर्दशा-ग्रस्त करवा दिया। मरने पर इन्हें कोई नहीं याद करेगा। परन्तु प्रभो ! तेरे कार्य विचित्र हैं ! तू स्वयं संयुक्त करता है और स्वयं ही वियुक्त भी ।।

सचा सो साहिब, सचु तपावसु,
सचड़ा निम्राउ करेगु मसोला ॥"[1]

'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार गुरु जी और मर्दाना भी सैदपुर में बन्दी कर लिए गए थे। वे मीर खाँ मुग़ल के हाथ पड़ गए। उसने अपने सैनिकों को आदेश किया कि इन्हें दास बनाकर कारागृह में ले जाओ। ले जाने के लिए गुरु जी को एक भार दिया गया, और मर्दाने को आदेश हुआ—'तुम घोड़े का लगाम पकड़कर आगे चलो।' परन्तु, जनमसाखी का कथन है, मीर खाँ ने देखा कि गुरु जी का भार स्वयं चल रहा है, और घोड़ा लगाम के बिना मर्दाने के पीछे-पीछे जा रहा है। उसने इस आश्चर्य की सूचना बाबर को दी, और कहा—'हज़ूर ! एक फ़क़ीर बन्दी बनाया गया है, और उसका भार उसके सिर से एक बालिश्त ऊपर स्वयं चल रहा है। उसका सेवक रबाब बजाता हुआ और ईश्वरोपासना करता हुआ उसके साथ चल रहा है, और घोड़ा उसके पीछे-पीछे जा रहा है।' बाबर ने कहा—'यदि यहाँ ऐसे फ़क़ीर होते तो नगर पर चोट न पड़ती।'

नगर से बाहर सैनिक शिविर में निगृहीत नारियाँ एकत्र की गईं और उनसे अन्न पिसवाया गया। जनमसाखी का कथन है—पठान नारियाँ, क्षत्रिय नारियाँ ब्राह्मण नारियाँ बेगार का काम करती हुई इकट्ठी बैठाई गईं। गुरु जी को भी एक चक्की दी गई; परन्तु उनकी चक्की स्वयं चलती रही। यह सुनकर बाबर स्वयं वहाँ आया। तब गुरु जी के मुख से सहसा यह 'शबद' निकला :—

"जिन सिरि सोहनि पटीआ मांगी पाइ संधूरु ॥
से सिर काती मुंनीअनि गल विचि आवै धूड़ि ॥

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, तिलंग रागु, पृष्ठ ७२२-२३।

तात्पर्य—अरे लालो ! [बाबर] पाप रूपी बारात लेकर काबुल से चढ़ आया और हठात् [कन्या-] दान माँगता है। [लोक-] लज्जा और धर्म दोनों ही लुप्त कर खड़े हो गए हैं, अरे लालो ! असत्य प्रधान बना फिरता है। क़ाजियों तथा ब्राह्मणों की बात समाप्त हो गई है। अरे लालो ! शैतान विवाह के मन्त्र पढ़ता है। अरे लालो ! दुःख में पड़ी हुई मुसलमानियाँ क़ुरान पढ़ती हैं। उत्तम जातिवाली तथा हीन जाति वाली हिन्दू नारियों की भी वही दशा है। अरे लालो ! कुंकुम की नहीं रक्त की बिन्दी लगाकर वे रक्त की विजय के मङ्गल गीत गा रही हैं। इस मांस (रक्तपात) के नगर (सैदपुर) में नानक ईश्वर के गुण गाता है और इस सत्य का वर्णन करता है। जिसने समस्त संसार को उत्पन्न किया और रंग में रमाया (कार्यों में व्यस्त किया) वह [ईश्वर] पृथक्, अकेला बैठा सब कुछ देख रहा है। वह ईश्वर सत्य है, उसका निर्णय सत्य है, उसका न्याय सत्य है, वह सत्य [व्यवहार] ही करेगा।

महला अंदर होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि ।।
आदेसु बाबा आदेसु ।।
आदि पुरख तेरा अंत न पाइआ करि करि देखहि वेस ।।
जदहु सीआ वीआहीआ लाड़े सोहनि पासि ।।
हीडोली चड़ि आईआ दंद खंड कीते रासि ।।
उपरहु पाणी वारीऐ झले झिमकनि पासि ।।
इकु लखु लहन्हि बहिठीआ, लखु लहन्हि खड़ीआ ।।
गरी छुहारे खांदीआ माणनि सेजड़ीआ ।।
तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ ।।"[1]

जनमसाखी का कथन है, तब बाबर ने गुरु जी के चरण चूमे और कहा—'इस फ़कीर के मुख-मण्डल में स्वयं परमात्मा के दर्शन होते हैं।' तब हिन्दू तथा मुसलमान सब लोग गुरु जी को नमस्कार करने लगे। बाबर ने फिर कहा—'दर्वेश! कुछ ले लो।' गुरु जी ने उत्तर दिया—'मैं कुछ नहीं लेता हूँ; किन्तु सैदपुर के सब बन्दियों को मुक्त कर दो और उनकी सम्पत्ति उन्हें लौटा दो।' बाबर ने आदेश देते हुए कहा—'जो निगृहीत हैं वे मुक्त कर दिए जाएँ, और उनकी सम्पत्ति उन्हें लौटा दी जाए।' सैदपुर के समस्त बन्दी स्वतन्त्र कर दिए गए।[2]

SIKHBOOKCLUB.COM

बाबर ने भारत पर अपने तृतीय अभिप्रयाण के समय, १५२० ई० के अन्त के समीप, सैदपुर पर आक्रमण किया था। इससे गुरु जी की जीवनी में

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा रागु, पृष्ठ ४१७।

तात्पर्य—जिन सिरों में सुन्दर केश-पट्टियाँ गुँथी हुई थीं, माँग में सिन्दूर पड़ा था, वे सिर क़ैंची से मूँड़े गए। उन नारियों के गले धूलि से घुट रहे हैं। जो महलों के अन्दर ही रहा करती थीं उन्हें अब सब की दृष्टि के सम्मुख—राजमार्गों पर—भी बैठने नहीं दिया जाता है। अच्छा, प्रभो! जो आपका आदेश! जो आपका आदेश! हे आदि पुरुष! तेरा अन्त नहीं पाया जाता है। तू वेष बदल-बदल कर सब कुछ देखता है।

जब उनका विवाह हुआ तब वे अपने वरों के समीप बड़ी सुन्दर लगती थीं। वे पालकी में बैठकर ससुराल आईं। उनके हाथों में हाथी-दाँत के खंडों के बने चूड़े थे। जल-पूर्ण घटों तथा झिलमिलाते पंखों से उनका स्वागत किया गया था। उनके बैठने और खड़े होने के समय लाख-लाख रुपयों की वर्षा की गई थी। वे नारियल की गिरी और छुहारे खाती थीं तथा शय्याओं पर लेटती थीं। उनके गलों में अब रस्सियाँ डाली जा रही हैं और मुक्तामालाएँ टूट रही हैं।

२. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ ७३।

एक महत्त्वपूर्ण तिथि निश्चित करने में साहाय्य प्राप्त होता है : इससे सिद्ध है कि ईसवीय १५२१ के प्रारम्भ तक वे अपनी प्रमुख यात्राएँ समाप्त कर चुके थे।

बाबर के आक्रमण के कारण जो विनाश हुआ उसका वर्णन गुरु जी ने इन शब्दों में किया है :—

"कहा सु खेल तबेला घोड़े, कहा भेर सहनाई ॥
कहा सु तेगबंद गाडेरड़ि, कहा सु लाल कवाई ॥
कहा सु आरसीआ मुह बंके ऐथै दिसहि नाही ॥
इहु जगु तेरा तू गोसाई ॥
एक घड़ी महि खाधि उथापे जरु वंडि देवै भांई ॥
कहां सु घर दर मंडप महला, कहा सु बंक सराई ॥
कहां जु सेज सुखाली, कामणि जिसु वेखि नीद न पाई ॥
कहा सु पान तंबोली हरमा होईआ छाई माई ॥
इसु जर कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई ॥
पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई ॥
जिस नो आपि खुआए करता खुसि लए चंगिआई ॥
कोटी हू पीर वरजि रहाए जा मीरु सुणिआ धाइआ ॥
थान मुकाम जले बिज मंदर मुछि-मुछि कुइर रुलाइआ ॥
कोई मुगलु न होआ अंधा किनै न परचा लाइआ ॥
मुगल पठाणा भई लड़ाई रण जिन्हि की चीरी दरगह
पाई तिन्हा मरणा भाई ॥
इक हिंदवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी ॥
इकन्हा पेरण सिर खुर पाटे, इकन्हा वासु मसाणी ॥
जिन्ह के बंके घरी न आइआ तिन्ह किउ रैणि विहाणी ॥"[1]

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा रागु, पृष्ठ ४१७-१८ ।

तात्पर्य—वह क्रीडा कहाँ है ? वह अश्वशाला कहाँ है ? वे अश्व कहाँ हैं ? वह भेरी, वह शहनाई कहाँ है ? कमर का वह खड्ग-बन्धन पट्ट कहाँ है ? वे रथ कहाँ हैं ? वह रक्त-वर्ण परिधान कहाँ है ? वे आरसियाँ और वे सुन्दर मुख कहाँ हैं ? यहाँ दिखलाई नहीं पड़ते हैं। प्रभो ! यह जगत् तेरा है, तू इसका स्वामी है। तू एक क्षण में स्थापित, और अन्य में उन्मूलित कर डालता है। सम्पत्ति भाइयों में फूट डाल देती है।

वे घर, द्वार, मण्डप, महल कहाँ हैं ? वे सुन्दर सराय कहाँ हैं ? वह सुखदायिनी शय्या कहाँ है ? वह कामिनी कहाँ है जिसे देखकर नींद नहीं

SIKHBOOKCLUB.COM

आती थी। वे पान कहाँ हैं ? वे तँबोली कहाँ हैं ? वे भवन, जिनमें उन पानों के खाने वाले रहते थे, कहाँ हैं ? सब छाया तुल्य विनष्ट हो गए।

इस धन के कारण बहुत लोग मार्ग-भ्रष्ट हुए, इस धन से बहुत लोगों की निन्दा हुई। पापों के बिना धन-संग्रह असम्भव है और साथ में एक सुई तक नहीं जाती है। परमात्मा स्वयं जिसे विनिन्दित करना चाहता है पहिले उसके सद्गुण छीन लेता है। जब सुना कि मीर (बाबर) चढ़कर आ रहा है तब करोड़ों पीरों ने उसे रोकने का यत्न किया। परन्तु वह रुका नहीं। उसने स्थानों को, मुक़ामों को, वज्र-तुल्य दृढ भवनों को जला डाला, और राजकुमारों के सिर काट-काटकर उन्हें धूलि में मिला दिया।

कोई मुग़ल अन्धा नहीं हुआ। किसी पीर ने अपनी करामात का प्रमाण नहीं दिया। मुग़लों और पठानों का युद्ध हुआ। परमात्मा के दरबार में [जिनका आवेदन-पत्र] फाड़कर फेंक दिया गया है, बन्धुओ! उन्हें तो रण-क्षेत्र में मरना ही होगा। कुछ हिन्दू-नारियों ने, पठान-नारियों ने, भट्टी जाति की नारियों ने, और ठाकुर-राजपूतों की नारियों ने सिर के वस्त्रों को फाड़ दिया है, और कुछ श्मशान भूमि में वास कर रही हैं। जिनके सुन्दर प्रियजन घर नहीं आए उनकी रात्रि किस प्रकार व्यतीत हुई ?

१४

करतारपुर

इस प्रकार सैदपुर के प्रलयकांड तथा वहाँ के निवासियों की दयनीय दशा पर विचार करते हुए, और काव्योचित महाकोमलता, युद्धाह्वान एवं क्रान्त-दर्शिता के शब्द कहते हुए गुरु जी ने पुनः यात्रा प्रारम्भ की। करतारपुर सैदपुर से साठ मील पूर्व में है। गुरु जी वहाँ कुछ ही दिनों में पहुँच गए। इस बार वे करतारपुर को अपना घर मानकर वहाँ रहने के लिए आये थे। भाई गुरदास का कथन है— बाबा ने करतारपुर में पहुँचकर साधु-वेष उतार दिया। उन्होंने दैनिक-कार्योचित वस्त्र धारण कर लिए और चारपाई पर बैठ कर उप-देश देना प्रारम्भ कर दिया।............वे ईश्वर-प्रेरणा से उच्छ्वसित शब्द बोलते रहे, प्रकाश विस्तीर्ण करते रहे तथा अन्धकार का नाश करते रहे। वहाँ धर्मोपदेश एवं ईश्वर-स्तुति के 'शबदों' का पाठ प्रतिदिन नियमपूर्वक होता था; प्रातःकाल 'जपुजी' का पाठ तथा सायंकाल 'सोदरु' और 'आरति' का गान होता था।[1]

---

१. "फिरि बाबा आइआ करतारपुरि भेख उदासी सगल उतारा।
पहिरि संसारी कपड़े, मंजी बैठि कीआ अवतारा।
उलटी गंग वहाईओनि गुर अंगद सिरि ऊपरि धारा।
पुतरी कउलु न पालिआ मनि खोटे आकी निसिआरा।
बाणी मुखहु उचारीऐ हुइ रुसनाई मिटै अंधिआरा।
गिआन गोसटि चरचा सदा अनहदि सबदि उठे धुनकारा।
सोदरु आरती गावीऐ अंम्रित वेले जापु उचारा।
गुरमुखि भार अथरबणि तारा।"

—भाई गुरदास, वार १।३८।

भाई गुरदास ने जिसका दिग्दर्शनमात्र करा दिया है करतारपुर में दैनिक जीवन का यह कार्य-क्रम था। इस प्रक्रिया के द्वारा दैनिक जीवन सामाजिक-संघटन और आचार की दृष्टि से प्राणवान् होता जा रहा था। अब तक गुरु जी किसी भी विशेष-प्रकार के वेष को सैद्धान्तिक मान कर धारण नहीं करते थे, और सत्य तो यह है कि वे अपने परिधान में सतत परिवर्तन करते रहते थे; किन्तु अब उन्होंने अपरिवर्तनीयतया गृहस्थ की वेष-भूषा अंगीकृत कर ली। उनके ऐसा करने के दो अर्थ थे। एक यह कि समस्त बाह्याचार एवं औपचारिक व्यवहार व्यर्थ है; द्वितीय यह कि धर्म-प्रधान मानसी वास्तविक सुव्यवस्था गृहस्थ-मार्गीय जीवन व्यतीत करने से ही परिपक्व होती है। द्वितीय अर्थ को ही विशेषतः ध्यान में रखकर गुरु जी ने अपना उपदेश प्रारम्भ किया था। करतारपुर में भ्रातृ-भाव की चेतना से सजीव जिस समाज-शरीर का निर्माण हो रहा था उसके विशिष्ट गुण थे: आस्था, दान, समानता, सनिश्चय स्वीकार (Affirmation), विश्वास, अन्योन्य-साहाय्य तथा सेवा। यह कोई मठ-मार्गीय समाज नहीं, यह उन साधारण नर-नारियों का परिवार था जो साधारण व्यवसायों में संलग्न थे, गुरु जी के श्रद्धावान् भक्त थे और गुरु जी के बचन को अपने जीवन का संबल मानते थे। वे लोग करतारपुर आते थे, नवीन उत्साह एवं आशा से पूर्ण होकर घरों को लौटते थे, और जीवन को उस मार्ग पर चलाते थे जो उन्होंने करतारपुर में देखा था और जिस पर वे कुछ दिन करतारपुर में गुरु-भक्तों के साथ चल चुके थे। भक्ति, विरक्त-मंडल की परिधि से निकाल कर, सर्व-सम्पत्ति बना दी गई थी और यह प्रत्यक्ष करा दिया गया था कि पुण्य-कर्मों तथा उनके फल-भोग का द्वार मानवमात्र के लिए समानरूप से उन्मुक्त है। करतारपुर में जीवन की एक वह नियमित सर्वांगीण व्यवस्था संघटित हो गई थी जिसका आधार कोई श्रम-सम्पादित आचार-संहिता नहीं, प्रत्युत वह जीवन्त आचारिक आदर्श था, जिसका ज्ञान प्रत्येक नर-नारी को परमात्मा एवं गुरु में गम्भीर आस्था के बल से होता था। गुरु जी वर्षों तक जिस मार्ग का उपदेश देते रहे थे करतारपुर ने उसका प्रदर्शन इस प्रकार निदर्शन द्वारा किया।

गुरु-दर्शनार्थ आने वाले नर-नारियों का संमर्द अनुदिन विस्तार प्राप्त करता गया। जनमसाखी का कथन है कि आगन्तुकों में ज्ञानी, ध्यानी, कुटीचक्र, आश्रमवासी, भिक्षु, अकिंचन, अभिजात, मुंडित-शिर, वैष्णव, ब्रह्मचारी, योगी, दिगम्बर, संन्यासी, तपस्वी, दुग्धाहारी, भक्त, भाट, विरक्त, मुख को पटाच्छन्न रखने वाले, सिद्ध, साधु, फ़क़ीर, दरवेश मुसलमान रहस्य-मार्गी, मुसलमान सन्त, जिज्ञासु, तार्किक, पीर, शिक्षक, हिन्दू, मुसलमान, गृहस्थ, राजा, रंक, प्रायश्चित्ती, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, पण्डित, कवि, गायक तथा नाना-गुण-

सम्पन्न लोग थे। करतारपुर के चतुर्दिक् जो भी था वह आया। किसी ने जो मनोरथ प्रकट किया वही पूर्ण हुआ। प्रत्येक को अभीप्सित प्राप्त हुआ।

'तब नानक की कीर्ति जल-थल में व्याप्त हो गई। गुरु जी के ऐसे गौरव-शाली काल में, उनका बाल्य-सहचर, रबाबी मर्दाना अभी तक उनके साथ था।'[1]

जो मर्दाना घर में और बाहर, लोगों की भीड़ में और निर्जन जंगलों में, झोपड़ियों में और नगरों में विस्तृण उष्ण मरुस्थलों में और पर्वत-पार्श्व में स्थित तरु-विटप-मण्डित निर्झरों के शीतल तीर पर रबाब बजाता रहा था वही अब भी गुरु जी के लिए रबाब बजाता था। मर्दाने के रबाब के साथ गुरु जी ने उदात्ततम काव्य के अंशों, एवं ईश्वर-प्रेरणा से उच्छ्वसित 'शबदों' का गान किया था। वे यहाँ भी यथापूर्व पवित्र 'शबद' पढ़ते और गाते रहे। अनुसंधान-कर्ताओं का विचार है कि उनके प्रमुख 'शबदों' की रचना करतारपुर में ही हुई। यहीं पर प्रातः-सायं ईश्वरोपासना में पवित्र 'शबदों' को मिलकर गाने की प्रथा की नींव पक्की हुई। मर्दाना और उसका पुत्र शाहजादा गाते थे, और जो कोई वहाँ उपस्थित होता था वह उनके साथ गाने लगता था। इस 'कीर्तन' का प्रयोजन आनन्दमयी उन्मादावस्था उत्पन्न करना नहीं था। इसका प्रयोजन था उपस्थित भक्त-गण के मन में भगवन्नाम के कोमल एवं सामुदायिक ध्यान का उद्‌भावन। 'हम सब समान हैं और एक ही परिवार के सदस्य हैं।' इस भावना के साथ धार्मिक एवं अन्य कार्यों में सम्मिलित होना करतारपुर में विकसित होती हुई जीवन-पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण रूप-लक्षण था। 'लंगर' भ्रातृ-भाव, समानता एवं निरहंकारता का प्रतीक था। प्रत्येक व्यक्ति, जो कार्य कर सकता था, कोई-न-कोई कार्य करता : कोई कुए से जल लाता, कोई अन्न पीसता, कोई ईंधन इकट्ठा करता, कोई भोजन पकाता, कोई भोजन लाकर देता, कोई ग्रीष्म ऋतु के दिनों में ताप के कष्ट को कम करने के लिए भोजन-सदन में खाने वालों के ऊपर पंखे से हवा करता, कोई जूठे बर्तन साफ करता, इत्यादि इत्यादि। वहाँ रहने वाले और वहाँ आने वाले, सभी लोग, एक-समान, जाति-भेद के सिद्धान्त को भूलकर, 'हम सब एक कुटुम्ब के सदस्य हैं।' इस नवीन भावना की स्वीकृति को प्रकट करते हुए, एक पंक्ति में बैठकर 'लंगर' में पके अन्न को खाते। लोग 'सेवा' को दुर्लभतम विशेषाधिकार मानते थे और विविध प्रकार से इसे करने को उत्सुक रहते थे। क्षुद्रतम कार्य महार्घतम कार्य समझा जाता था। श्री गुरु नानक समग्र जीवन में जिन सत्यों का उपदेश देते रहे उनमें

---

१. मेहरबान जनमसाखी, भाग २, पृष्ठ १४५।

से, इस प्रकार, एक ऐसे बन्धु-समाज का जन्म हो गया जिसके विचार तीव्र-धर्म-भावना से सिक्त और सामाजिकता की अनुभूति से मण्डित थे।

गुरु जी अपनी दीर्घ यात्राओं में सहस्रशः शिष्य बना चुके थे, तथा बहुशः 'संगत' स्थापित कर चुके थे। अब करतारपुर वह स्थान था जहाँ गुरु-भक्त लोग गुरु जी का आशीर्वाद प्राप्त करने, तथा अपने कर्त्तव्य को पुनः पक्के रूप से प्रकट करने, के लिए आया करते थे। सभी आगन्तुक जन सामुदायिक उपासना में सम्मिलित होते तथा मिलकर 'लंगर' में भोजन करते। प्रातःकालीन भक्ति-कर्मों को समाप्त करके गुरु जी स्वयं 'धरमसाला' में सामुदायिक उपासना में सम्मिलित होते थे। वहाँ प्रतिदिन प्रातः गुरु जी की दो रचनाओं, 'जपुजी' और 'आसा दी वार' का पाठ किया जाता था, तथा सूर्योदय के सवा पहर पश्चात् तक समस्त 'संगत' मिलकर ईश्वर-स्तुति के 'शबद' गाती रहती थी एवं प्रार्थनाएं पढ़ती रहती थी। सायंकाल 'सोदरु' बोला जाता, और कतिपय 'शबद' गाए जाते। तत्पश्चात् सब लोग 'लंगर में जाकर भोजन करते। रात्रि में विदा होने से पूर्व 'सोहिला' नामक एक लघु प्रार्थना का पाठ होता। दिन गुरु जी के उपदेश सुनने में, अथवा नव-संघटित बन्धु-समाज के विविध कार्यों के करने में व्यतीत होता। परमात्मा अपना शब्द जिस रूप में भेजता गुरु जी उसे उसी रूप में कह सुनाते, इसकी व्याख्या करते, और कभी-कभी किसी आगन्तुक सन्त अथवा साधु के साथ वार्तालाप करते, और प्रातः-सायं भक्ति-भावना के वचनों एवं गीतों में सम्मिलित होते। आध्यात्मिक नेता के रूप में उनका जो उत्तरदायित्व था उसका निर्वाह करते हुए ही वे अपने तथा अपने कुटुम्ब के पालनार्थ अपना खेत भी जोतते थे। करतारपुर में जो समाज अस्तित्व को प्राप्त कर रहा था उसमें गुरु जी का उपदेश और उदाहरण दृढ़ता से घर कर गया।

१५२२ ई० में गुरु जी के माता-पिता का स्वर्गवास हो गया।[1] स्वर्गवास के समय पिता कालू का वय बयासी वर्ष था। इस अस्सी वर्षों की अवधि के अधिक भाग में पिता कालू के लिए प्रेम की सबसे बड़ी वस्तु उसका पुत्र रहा था। अतः जीवन के अंतिम दिन अपने पुत्र के पास शान्ति से व्यतीत करते हुए उसे परम परितोष प्राप्त हुआ होगा। भाई मनीसिंह की जनमसाखी के अनुसार माता तृप्ता का देहान्त बाबा कालू के निधन के थोड़े दिन पश्चात् हुआ।

करतारपुर में जो पवित्र वातावरण, संयुक्त यत्न तथा आचारिक स्पृहोल्लास था, उससे आकृष्ट होकर शतशः लोग गुरु-भक्त हो गए। भाई गुरदास ने एक सम्बोधन गीत में गुरु जी के प्रमुख शिष्यों के नाम गिनाए हैं। उनमें

१. काहनसिंह : महान् कोष, पृष्ठ २४३ और ४५५।

कतिपय ये हैं—भाई बुड्ढा, रबाबी मर्दाना, तारू पोपट, मूला कीड़, पिरथा सोएनी, पिरथीमल सहगल, रामा डिड्डी, दौलत खाँ लोधी, भगता ओहरी, सीहन उप्पल, मलसियाँ का निवासी भागीरथ, अजित्ता रनधावा, फिरना खेहड़ा, मालो, मांगा, गुज्जर लोहार और धीङ् नाई। भाई गुरदास का कथन है कि तारू पोपट, प्रारम्भ से धार्मिक वृत्ति का पुरुष था। जब वह अभी दस वर्ष का ही होगा, तब वह गुरु जी के समीप आया, और सविनय बोला—'दीनबन्धु ! मैंने सुना है कि जो कोई किसी सन्त से मिलता है शान्ति प्राप्त करता है। मैं आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ।' गुरु जी ने उत्तर दिया—'तुम अभी बहुत छोटे हो। तुमने अभी संसार का देखा ही क्या है ! तुमने ये बातें कहाँ से सीखी हैं ?' पोपट ने कहा—'मैंने एक दिन अपनी माता को आग जलाती देखा। मैंने देखा कि छोटी लकड़ियों में आग पहले लग गई। मुझे ध्यान आया कि जीवन का आनन्द प्राप्त करने के लिए मुझे किसी सन्त से तत्काल मिलना चाहिए। क्या पता मृत्यु कब आ जाए !' तब गुरुजी ने ये शब्द कहे—'तारू ! (तैराक) तुम अपने वंश के मोक्षकारक बनोगे। धर्म की वृत्ति से जीविकार्जन करना सीखो, और अपने परिश्रम के फल को दूसरों में बाँटकर खाओ। सदा अपने स्रष्टा का स्मरण करते रहो।'[1]

एक साखी में मूला कीड़ का वृत्तान्त दिया गया है, जो भक्ति-भावना में मग्न होकर गीत गाया करता था, और धर्म से जीविकार्जन करता था। वह तन-मन-धन से गुरु-शिष्यों की सेवा किया करता था। उसका द्वार सदा खुला रहता और सिख दिन-रात आते रहते थे। भोजनार्थी को भोजन, और आच्छादनार्थी को आच्छादन मिलता था। एक दिन उसके घर ऐसा पुरुष आया जिसने अनेक धर्म-शास्त्र कण्ठस्थ कर रखे थे, परन्तु उसका आचार कण्ठस्थ किए शास्त्रों के अनुरूप नहीं था। अपने स्वभाव के अनुसार मूला ने अन्य अभ्यागतों के तुल्य उसका भी आदर-सत्कार किया। सोने से पूर्व मूला की पत्नी ने अपने सुवर्णालंकार उतार कर भोजन की आलमारी में रख दिए। मूला और उसकी पत्नी तो सो गए किन्तु अभ्यागत नहीं सोया। उसने उठ कर अलंकार उठा लिए। प्रभात से पर्याप्त पूर्व उसने द्वार की कुंजियाँ माँगने के लिए मूला को जगाया। ज्योंही मूला ने अभ्यागत के लिए द्वार खोला अलंकारों की मंजूषा चोर की काँख से नीचे गिर पड़ी। मूला ने शीघ्रता से उठाकर वह उसे देकर विदा का

---

१. 'सिखां दी भगतमाला' खालसा समाचार, पृष्ठ ३१-३२। यह पुस्तक भाई गुरदास की ग्यारहवीं 'वार' की व्याख्या के रूप में है, साथ ही इसमें साखियाँ भी संयुक्त कर दी गई हैं। इसमें श्री गुरु नानक के कुछ अनुयायियों के नाम दिए गए हैं। कहा जाता है यह भाई मनीसिंह की कृति है।

नमस्कार किया। जब मूला की पत्नी अपनी अलंकार-मंजूषा आलमारी में न देखकर चिन्ता करनी लगी तब मूला ने उसे समझाया कि रात्रि में चोर हमारे घर में घुस आए थे और वे उसे चुराकर ले गए हैं। मूला ने यह भी कहा कि हमारा रात्रि का अभ्यागत चोरी के आरोप के भय से ही अँधेरे-अँधेरे उठकर चला गया है। इसके पश्चात् मूला ने अपनी पत्नी को नवीन अलंकार बनवा दिए। मूला नहीं चाहता था कि अपने आपको सिख कहनेवाला कोई व्यक्ति चोर कहा जाए। इस वृत्तान्त से प्रसन्न होकर गुरु जी ने मूला से कहा—'तू ने पन्थ की प्रतिष्ठा की रक्षा की है। गुरु तेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करेगा।'[1]

सीहन और गंजन उप्पल दो चचेरे तएरे भाई थे। वे गुरु जी के शिष्य हो गए। एक साखी[2] में सीहन की कन्या के विवाह का वृत्तान्त दिया गया है। बारात के आने से एक दिन पूर्व गुरु जी के दर्शनार्थ करतारपुर जाने वाले अनेक सिख उसके घर आ गए। दोनों भाइयों ने उनकी सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने दी। बारात के लिए जो खाद्य पदार्थ बनवाए गए थे वे सब उन सिखों को खिला दिए गए। तब सीहन की पत्नी ने चिन्ता के स्वर में अपने पति से कहा—कल बारात को खाने के लिए क्या दिया जाएगा? सीहन ने शान्त-भाव से से उत्तर दिया—'चिन्ता न करो। गुरु जी हमारी प्रतिष्ठा की रक्षा करेंगे।' अगले दिन बारात के आने पर सीहन ने ईश्वर-प्रार्थना की और भंडार का द्वार खोला। सब बारातियों एवं घरवालों को भोजन करा दिया गया परन्तु मिष्टान्न तथा अन्य अन्न की कमी नहीं हुई। बारात पाँच दिन ठहरी, और उनकी सेवा-शुश्रूषा में किसी प्रकार की रंचमात्र भी त्रुटि नहीं हुई। सीहन और गंजन के हृदय गुरु जी के प्रति कृतज्ञता से पूर्ण हो गए, और उन्होंने मन में कहा—'गुरु जी स्वयं अपने शिष्यों की प्रतिष्ठा की रक्षा करते हैं।'[3]

---

१. 'सिखां दी भगतमाला', पृष्ठ ३३-३४। यह गुण इतना ध्यानाकर्षक था कि ईसवीय सप्तदश शतक में इतिहासकार सुजानसिंह भण्डारी ने लिखा—'वे (गुरु नानक के अनुयायी) भगवन्नामार्थ अपने तथा अन्य लोगों की सेवा को सर्वोत्तम पूजा समझते हैं। यदि कोई अपरिचित पुरुष, अथवा चोर या डाकू भी, आधी रात, उनके घर आकर, उनके गुरु के नाम पर, शरण माँगे तो वे मित्र और बन्धु के समान, यथाशक्ति उसकी सेवा करते हैं।' देखिए 'खुलासत् उत् तवारीख' (उर्दू), पृष्ठ ११२।

२. 'साखी' शब्द का प्रयोग जीवनी-गत किसी एक घटना के लिए भी होता है।

३. 'सिखां दी भगतमाला', पृष्ठ ५१-५२।

फिरना खेहड़ा और जोध दोनों गुरु जी के चरणों की शरण में आकर उनके शिष्य हो गए। उन्होंने गुरु जी से शिक्षा देने के लिए निवेदन किया और प्रार्थना की कि हमें धर्म-दान दिया जाए। गुरु जी ने उन्हें उपदेश दिया—'सत्य की प्राप्ति के हेतु तुमको नम्रता सीखनी चाहिए। अपने हाथों से अपने बन्धु सिखों की यथाशक्ति सेवा करो। प्रातः शीघ्र उठकर स्नान करने के अनन्तर भगवान् के नाम का जप करने बैठ जाओ। भगवान् को अपना स्वामी और अपने आपको उसके सेवक समझो। 'संगत' में सम्मिलित होकर प्रेम से गुरु के शब्दों को सुनो। इस प्रकार जो सुनो उसके अनुसार कार्य करो।'

इस प्रकार फिरना खेहड़ा और जोध ने अपना अभीप्सित प्राप्त कर लिया।[1]

जिस सिख ने महती प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की वह भाई बुड्ढा था। उसका वास्तविक नाम बूड़ा था, और वह अमृतसर जिले का निवासी रनधावा जाट था। वह बारह वर्ष से कम वय का था जब उसने गुरु जी के दर्शन किए और उनका भक्त हो गया। अपने ग्राम के अन्य युवकों के समान वह भी दिन में पशु चराया करता था। एक दिन जब वह जंगल में अपनी गौएँ चरा रहा था, दैववश गुरु जी उसके समीप से निकले। बूड़े ने तत्काल दुहे दूध से भरा एक कटोरा लाकर उनके सम्मुख रख दिया, और इस प्रकार अभ्यर्थना करने लगा—'सन्त जी महाराज! मेरे ऊपर आपकी बड़ी कृपा हुई कि आज मुझे आपके दर्शन हुए। अब मुझे जीवन-मरण के चक्र से मुक्त कीजिए।' गुरु जी ने कहा—'तुम अभी बालक हो। तुम्हें यह बुद्धि किसने दी है?' बूड़ा बोला—'एक बार मुगल सैनिकों ने हमारे ग्राम के समीप अपना शिविर खड़ा किया। और, हमने देखा कि उन्होंने कच्चे-पक्के सभी खेत-काट लिए। तब मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि जब कोई उन सैनिकों तक को नहीं रोक सकता है तब यमराज का हाथ कौन पकड़ सकता है!' तब गुरु जी ने ये शब्द कहे—'तुम तो वृद्धों-जैसी बातें करते हो। तुम बालक नहीं हो।'[2]

उस दिन से बूड़े का नाम बुड्ढा (वृद्ध) प्रसिद्ध हो गया, और साथ में प्रेम-सूचक विशेषण 'भाई' संयुक्त हो गया। वह प्रायः करतारपुर जाया करता था, और अन्ततोगत्वा वहीं रहने लग गया था। वह पवित्र आचरण और बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध था, और शनैः-शनैः करतारपुर के सिख बन्धु-समाज में सबसे अधिक विश्वास-योग्य पुरुष माना जाने लगा था। वह एक सौ पच्चीस वर्ष

---

१. 'सिखाँ दी भगत माला,' पृष्ठ ६२।

२. 'सिखाँ दी भगतमाला' पृष्ठ ६१।

की दीर्घ आयु भोगकर परलोकवासी हुआ।[1] उसने उत्तरोत्तरभावी पांच गुरुओं का समय देखा; उसका जीवन सिख सम्प्रदाय के उन प्रारम्भिक दिनों के तेजो-मंडल से मंडित रहा, और आद्य गुरु के परम-भक्त सिखों में अन्यतम होने से उसका व्यक्तिगत प्रभाव भी महान् था।

लहिणा का आगमन अत्यन्त शुभ था। लहिणा करतारपुर से प्रायः साठ मील दूर खडूर का निवासी था। उसका जन्म उसी मुक्तसर के समीप सराय नागा में हुआ था, जिसे उत्तरकाल में दशम गुरु ने, तथा उनके लिए प्राणार्पण करने वाले चालीस भक्तों ने प्रसिद्धि प्रदान की। सराय नागा छोड़कर लहिणा खडूर में आकर रहने लगा था। वह दुर्गा देवी का भक्त था, और प्रत्येक वर्ष एक भक्त-मंडली को साथ ले कर, निम्न हिमाचल में स्थित ज्वाला जी की यात्रा किया करता था। उसी के ग्राम में जोधा नामक एक सिख रहता था। उसके होठों पर सदा 'गुरु' 'गुरु' रहता था। खडूर के अन्य सभी निवासी दुर्गा के उपासक थे और इस कारण जोधा के जीवन की पवित्रता का उपहास किया करते थे।[2] एक दिन लहिणा ने जोधा को गुरु वाणी में से 'शबद' पढ़ते सुना। वह उससे बहुत प्रभावित हुआ। ज्वालामुखी को जाते हुए लहिणा करतारपुर में ठहरा। यहाँ उसकी मार्गणा तथा यात्रा समाप्त हो गई। गुरुजी के संनिधान में उसे वह शान्ति तथा तृप्ति प्राप्त हो गई जिसे वह वर्षों से प्राप्त करने का यत्न कर रहा था। उसने देवी के सम्मुख नाच में बजने के लिए हाथों और पैरों में घुंघरू बाँध रखे थे। अब उसने वे खोल दिए। उसके संगियों ने उससे तीर्थ यात्रा पूरी करने के लिए आग्रह किया, और कहा—'हमारे धर्म-शास्त्रों में लिखा है कि जो तपश्चर्या करने वालों, भिक्षा देने वालों, व्रतोपवास करने वालों और तीर्थ-यात्रा करने वालों के मार्ग में अथवा विवाह के मार्ग में विघ्न उपस्थित करता है, जो आलस्य के कारण अथवा परिश्रान्ति के भय से, धन और पवित्रता की दात्री दुर्गा देवी की पूजा नहीं करता अथवा जो प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण करने के समस्त प्रयत्नों का त्याग कर देता है, वह महापापी है, और उसका समग्र धन एवं पुत्र नष्ट हो जाते हैं।' किन्तु लहिणा का एक ही उत्तर था—'मैं अब आगे नहीं जाऊँगा।'

जब लहिणा गुरु जी के समीप वापिस आया तब उन्होंने उससे उसका नाम पूछा। 'लहिणा' लहिणा ने उत्तर दिया। 'हम तेरे ऋणी थे। अतः परमात्मा

---

१. काहन सिंह के अनुसार (महान् कोष, ६६०), उसका जन्म १५०६ ई० में हुआ था और निधन १६३१ ई० में।

२. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ १२३।

तुझे यहाँ लाया है।' गुरु जी ने कहा।[1] पंजाबी भाषा में 'लहिणा' शब्द का अर्थ है 'लेना' अथवा 'अधमर्ण से ऋण प्राप्त करना।' और लहिणा ने गुरु जी से यह द्रव्य प्राप्त किया जिसका प्राप्त करना केवल उसी के भाग्य में लिखा था।

उस समय लहिणा का वय अट्ठाइस वर्ष था। वह अनन्यतत्परता से गुरु जी के मुख से निःसृत शब्दों को सुनता, और पूर्ण भक्ति-भाव के साथ 'संगत' में कार्य करता। जैसा जनमसाखी का कथन है, वह बर्तन साफ़ करता और पंखे से हवा करता।[2] आज्ञा-पालन एवं विनय उसके आचार के विशिष्ट गुण थे। प्रथम दिन से ही उसने विनयापेक्षी जिस कर्त्तव्य को अपना धर्म मान लिया था, उसके पालन में उसने कभी तनिक भी प्रमाद नहीं किया। जिस प्रकार पावन सेवा-कर्म में निरत रहने से उसका हृदय पवित्र हो गया था, उसी प्रकार उसकी बुद्धि भी आलोक से पूर्ण हो गई थी। गुरु जी के उपदेश से तथा करतारपुर में परिव्याप्त गुरु-शिक्षा की भावना से उसने अपने आत्मा, मन, बुद्धि एवं समस्त इन्द्रियों को यथावत्: रंजित कर लिया था। इसी हेतु वह गुरु जी के विशिष्ट-श्रेणी के शिष्यों में गिना जाता था। किन्तु वह साधारण श्रेणी में गिने जाने वाले भक्तों में रह कर नाना प्रकार के क्षुद्र कार्यों के करने को ही उत्तम मानता था। 'गुरु जी के समीप रहकर उसने मन की शान्ति प्राप्त की। इस प्रकार वह अपने लक्ष्य पर पहुँच गया। गुरु जी ने उस पर कृपा की वर्षा की। जैसे गुरु बाबा नानक थे वैसा ही लहिणा हो गया। जैसा गुरु था वैसा ही शिष्य हो गया।'[3]

जनमसाखी का कथन है कि जब लहिणा इस प्रकार भरा जा चुका तब उसने गुरु जी से विदा ली: तीन वर्ष करतारपुर रह कर वह अपने घर, ग्राम मत्ते की सराय[4] लौट गया। मत्ते की सराय के निवासियों को सुविदित था कि

---

१. मेहरबान, खण्ड २ (अर्थात् पोथी हरजी), पृष्ठ ६७।

२. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ १२४।

३. मेहरबान, खण्ड २ (अर्थात् पोथी हरजी), पृष्ठ ६७।

४. ऐतिहासिकों ने मत्ते की सराय का अन्य नाम मत्ते की सराय हरीकी भी दिया है। यह लहिणा के ग्राम का अन्य नाम है। उसका आधुनिक नाम सरायनागा है। जनमसाखियों में ऐतिहासिक दूरवीक्षण (Telescoping) का बाहुल्य है, और यह कथा उसका एक उदाहरण है। जनमसाखी में लहिणा का नाम गुरु अंगद दिया गया है; यह लहिणा का वह नाम है जो गुरु-पीठ पर आसीन होने के अनन्तर प्रसिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त 'पुरातन जनमसाखी' में कथित है कि श्री गुरु नानक की सेवा में उपस्थित होने से पूर्व लहिणा खडूर में रहता था। इससे सूचित होता है कि लहिणा उक्त समय से पूर्व अपने ग्राम मत्ते की सराय को छोड़कर खडूर में रहने लगा था।

लहिणा त्रेहण अन्य यात्रियों का संग त्यागकर श्री गुरु नानक के समीप ठहर गया था.......... । अब जब तीन वर्ष के पश्चात् वह वापस आया तब समग्र ग्राम कहने लगा कि लहिणा तो, जो श्री गुरु नानक के समीप रहने लगा था, तेजो-मंडल से मंडित है । सब लोग उससे मिलने आए । लोगों को देखते ही लहिणा खड़ा हो गया । अभिवादन के रूप में प्रत्येक पुरुष ने लहणा को हृदय से लगाया, किन्तु ग्राम का प्रधान तखतमल उसके चरणों के स्पर्श के लिए झुका । उसे रोकते हुए लहिणा ने कहा—'भाई तखत मल, आओ हम एक-दूसरे के कण्ठ से लगकर ही मिलें ।' तखतमल ने उत्तर दिया—'तुम सन्त के स्थान से आए हो, तुम स्वयं ऊँचे हो गए हो, तुम्हारे चरण छूने में ही हमें लाभ है ।'[1]

लहिणा पुन: करतारपुर गया । ग्राम में पहुँचकर वह गुरु जी से मिलने खेतों में गया । वहाँ जा कर उसने गुरु जी के चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया । उस समय लहिणा ने बढ़िया सिलाई वाले कपड़े पहन रखे थे । जब गुरु जी उस दिन का कार्य समाप्त कर चुके, तब उनकी खोदी हुई घास घर ले जानी थी । लहिणा ने घास की गठड़ियाँ अपने सिर पर रख लीं और चल दिया । गीली घास में से टपकते हुए कीचड़ ने उसके कपड़े मैले कर दिए । उसके कपड़ों को इस प्रकार मैले हुए देखकर गुरु जी की पत्नी को दु:ख हुआ । उसने गुरु जी से कहा—'आपका यह कैसा स्वभाव है ? आपने एक कुलीन पुरुष के सिर पर घास की ऐसी कीचड़ वाली गठड़ी क्यों लाद दी ?' गुरु जी ने कृपा-सिक्त शब्दों में उत्तर दिया—'यह घास की गठड़ी नहीं, राज-माला है ।[2]

लहिणा के पवित्र त्याग एवं परिचरण के कार्य अनल्प थे, तो गुरु जी की कृपामयी भविष्यद्वाणियाँ भी अनल्प थीं ।

---

१. 'मेहरबान जनमसाखी' खण्ड २ (अर्थात् पोथी हरजी), पृष्ठ ६७ ।

२. 'मेहरबानी साखी', खण्ड २ (अर्थात् पोथी हरजी), पृष्ठ ६७ । 'पुरातन जनमसाखी' में भी यह कथा प्राय: इसी प्रकार है 'मनी सिंह साखी', (पृष्ठ ४००) के अनुसार जब गुरु जी के पुत्र श्रीचन्द और लख्मीदास ने यह क्षुद्र कार्य करना अस्वीकार कर दिया तब लहिणा ने स्वेच्छा से यह कार्य किया । यह देखकर कि श्री गुरु नानक ने अपने पश्चात् गुरु-पीठ का अधिकारी लहिणा को घोषित किया, अपने दोनों पुत्रों में से किसी को भी नहीं, जनमसाखी-लेखकों ने गुरु जी के दोनों पुत्रों को अनाज्ञाकारी दिखलाना प्रारम्भ कर दिया । इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर जनमसाखियों में ऐसी अनेक परीक्षाओं का उल्लेख किया गया है जिनमें आज्ञापालन और गुरु-भक्ति में लहिणा सर्वप्रथम रहा । किन्तु उसको पीठ का अधिकार आध्यात्मिक सूक्ष्म दृष्टि तथा गुण के कारण दिया गया था, न कि केवल प्रथम श्रेणी का कर्मकर होने के कारण ।

एक शरद् ऋतु की रात्रि, प्रबल वृष्टि में, 'धरमसाला' की एक दीवार गिर गई। गुरु जी ने इच्छा प्रकट की कि दीवार की मरम्मत तत्काल कर दी जाए; किन्तु उनके पुत्रों ने कहा कि प्रातःकाल होने पर राज को बुलाकर टूटी दीवार चिनवा दी जाएगी। परन्तु गुरु जी का प्रबल आग्रह देखकर पुत्रों ने दीवार चिननी आरम्भ कर दी। जब वे थोड़ी-सी दीवार चिन चुके, तब गुरु जी ने कहा कि इसे गिराकर फिर आरम्भ से चिनो। उन्होंने चिनी दीवार गिरा दी; किन्तु जब उनसे पुनः चिनने का कार्य आरम्भ करने के लिए कहा गया, तब उन्होंने प्रतिवाद के स्वर में कहा कि हमें नींद आ रही है, थोड़ा सो लेने दीजिए। तब गुरु जी ने लहिणा को संकेत किया, और वह तत्काल कार्य में लग्न हो गया। जनमसाखी का कथन है कि गुरु जी के आदेश के अनुसार वह निरन्तर कई दिन-रात दीवार चिनता और गिराता रहा।[1] लख्मीदास ने अधिक्षेप के शब्दों में कहा—'कितना दुर्बुद्धि है, एक ही कार्य को पुनः-पुनः कर रहा है!' लहिणा ने शालीनता से उत्तर दिया 'स्वामी का कार्य करने से सेवक के हाथ पवित्र होते हैं।'

इकसठ वर्ष के वय में गुरु जी ने एक अन्य यात्रा की। किन्तु यह यात्रा बहुत छोटी थी। रावी के इस पार करतारपुर के दक्षिण-पूर्व में, गुरदासपुर जिले में, बटाले के समीप अचल नामक लघु ग्राम में महादेव के पुत्र कार्तिक का प्राचीन मन्दिर है। शिवरात्री के अवसर पर वहाँ छः दिन तक भारी मेला होता था, जिसमें गाना, नाच, नाटक, नटों के खेल, कबड्डी, कुश्ती इत्यादि क्रीडाएँ होती थीं। तीर्थ यात्रा के भाव से तथा उत्सव को देखने की इच्छा से वहाँ सहस्रशः नर-नारी पहुँचते थे। भिक्षु, साधु और सन्त भी बड़ी संख्या में इकट्ठे होते थे। इनमें सबसे बड़ी संख्या योगियों और सिद्धों की होती थी। गुरु जी की यह यात्रा उसी स्थान की थी। वे अपने शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे, और जैसा जनमसाखी का कथन है, 'गुरु जी के संगियों में उनका प्रधान सचिव लहिणा भी था।'[2]

जनमसाखी में कथा आगे चलती है: "ज्योंही गुरु जी ने अचल में पदार्पण किया, त्योंही 'नानक' नाम जन-समुदाय में चतुर्दिक् प्रसृत हो गया। प्रत्येक व्यक्ति कहने लगा 'प्रसिद्ध सन्त नानक जी आए हैं। जिन नानक महाराज के शब्द और गीत संसार बोलता है वही यहाँ हैं।' अचल में जो भी था वह गुरु जी के दर्शनों के लिए दौड़ा। न कोई योगी पीछे रहा, न संन्यासी; न गृहस्थ

१. 'मनीसिंह जनमसाखी', पृष्ठ ४००।

२. 'मेहरबान जनमसाखी', खण्ड २ (अर्थात् पोथी हरजी), पृष्ठ ६९।

न एकान्त-सेवी साधु। वहाँ जो भी था वह 'नानक जी महाराज आ गए हैं।' 'नानक जी महाराज आ गए हैं।' कहता हुआ गुरु जी के निवास-स्थान की ओर झपटा। गुरु जी सरोवर के तट पर एक सिरस (शिरीष) और एक बेरी के वृक्ष के मध्यवर्ती स्थान में बैठे थे। असंख्य नर-नारी आ गए। प्रत्येक व्यक्ति दर्शनों के लिए उत्सुक था। तब एक गायक-मंडली आगे बढ़ी और गुरु जी के सम्मुख गाने लगी। पावननाथ और भंगड़नाथ नामक दो योगी आकर गुरु जी के समीप अनुपलक्षित रूप से खड़े हो गए। उन्होंने गायकों का वह लोटा चुपके-से उठा कर छिपा दिया जिसमें वे लोग पैसे इकट्ठे करते थे। लोटा गया देखकर गायक गीत भूल गए और उन्होंने गाना बन्द कर दिया। तब पावननाथ और भंगड़नाथ बोले—'नानक जी! देखो। उनका लोटा चला गया है और मंडली का गाना बन्द हो गया है।' गुरु जी ने पूछा—'वे और क्या कर सकते हैं? वे लोग जीविका के लिए गाते हैं, और तुमने उनका लोटा छिपा दिया है। वे अब क्या करें?' उन योगियों ने कहा—'तो आप हमने जहाँ छिपा दिया दिया है वहाँ से लाकर इनको दे दें।' गुरु जी ने अपने एक सिख को जाकर लोटा ले आने का आदेश किया। वह जाकर योगियों द्वारा छिपाए लोटे को तत्क्षण ले आया, और गुरु जी के आदेश से लोटा गायक-मंडली को लौटा दिया गया। वह इसे प्राप्त करके परम प्रसन्न हुई और उसने अपना गीत समाप्त किया। गुरु जी ने उनकी इच्छा पूर्ण की।'[1]

गुरु-दर्शनार्थ जनता-प्रवाह का चले आना तथा गायकों के लोटे को दिव्य-दृष्टि से देखकर गुरु जी द्वारा मँगवा देना योगियों को सह्य नहीं हुआ। भाई गुरदास का कथन है, "कुपित हुए वे एक बड़ी संख्या में इकट्ठे होकर गुरु जी से शास्त्रार्थ करने के लिए आ पहुँचे। भंगड़नाथ ने प्रश्न प्रारम्भ किया—'तू ने दूध में सिरका डाल कर उसे खट्टा क्यों कर दिया? खट्टा दूध बिलोकर मक्खन किसने निकाला? तू ने अपने धार्मिक वस्त्र उतार कर और सांसारिक पहनकर यह धर्म-विरुद्ध कार्य क्यों किया है?' गुरु जी ने उत्तर दिया—'भंगड़नाथ! तुझे विपरीत शिक्षा प्राप्त हुई है। देख, तेरे अपने जीवन में क्या हुआ है। दही की हंडिया भलीभाँति स्वच्छ नहीं की गई थी। अतः मक्खन में दुर्गन्ध पैदा हो गई। गृहस्थ जीवन का त्याग करके तू साधु हो गया, तो भी तू भिक्षा के लिए गृहस्थों के द्वार पर जाता है। यदि वे तुझे भिक्षा न दें तो तू जीवित नहीं रह सकता।"

"इन शब्दों को सुन कर योगियों ने चिल्लाकर घोर कोलाहल करना आरम्भ कर दिया। वे कहने लगे—'नानक बेदी कलियुग में प्राचीन ग्रन्थों के विरुद्ध चल रहा है।' तत्पश्चात् वे अपने मन्त्र पढ़कर जादू चलाने का यत्न

१. 'मेहरबान जनमसाखी', खण्ड २ (अर्थात् पोथी हरजी), पृष्ठ ६६-७०।

SIKHBOOKCLUB.COM

करने लगे। उन्होंने विभिन्न रूप धारण कर लिए। कोई सिंह और व्याघ्र बन गए, कुछ पक्षियों के तुल्य वायु में उड़ने लगे। कुछ सर्प बन कर फूत्कार करने लगे, और कुछ अग्नि-वर्षा ले आए। भंगड़नाथ ने आकाश के नक्षत्र पकड़ लिए और दूसरे मृग-चर्म पर बैठकर जल पर तैरने लगे। सिद्धों का प्रद्वेष उत्कट था।"

"तब सिद्धों ने कहा—'नानक! तू ने अपनी शक्ति का चमत्कार जगत् को दिखलाया है। कुछ हमें भी दिखला।' गुरु जी ने उत्तर दिया—'नाथो! योगी जो कुछ करते हैं उसका मूल्य स्वल्प है। मैं परमात्मा के संग तथा उसके शब्द के अतिरिक्त किसी वस्तु का आश्रय नहीं लेता हूँ।' गुरु जी अपने ईश्वर-ध्यान के आसन में प्रशान्त तथा निश्चल बैठे रहे। सिद्धों ने अपने जादू के कर्मों का त्याग कर दिया। गुरु जी के शब्द ने उनकी शक्ति को अभिभूत कर लिया था। सब वस्तुओं का दाता ईश्वर है, और कोई भी मनुष्य अपनी जादूवाली शक्ति से परमात्मा को नहीं जान सकता है। नम्र होकर योगी गुरु जी के चरणों की शरण में आ गए।"

"तब गुरु जी ने कहा—'नाथो! मैं जो शब्द बोलता हूँ उसे सुनो। एक सत्य नाम (ईश्वर) के अतिरिक्त मेरे पास कोई अद्भुत शक्ति नहीं है। यदि मैं अग्नि के वस्त्र पहन सकता, यदि मैं शाश्वत हिम के मन्दिर में रह सकता, यदि मैं लोहे को भोजन के रूप में परिवर्तित कर सकता और यदि मैं समस्त संसार को अपने शासन के अधीन कर सकता; यदि मैं पृथ्वी के विस्तार के तुल्य अपने शरीर का विस्तार कर सकता और यदि मैं एक अणु को तुला के एक पलड़े में और पृथ्वी और आकाश को दूसरे पलड़े में रखकर तोल सकता; और यदि मैं जिसे चाहूँ उसे मुक्त कर सकता—भगवन्नाम के दान के बिना यह समस्त शक्ति मेघ की छाया के तुल्य होती।'"[१]

"गुरु जी के शब्दों से सिद्धों का हृदय संतुष्ट हुआ। शिवरात्री के मेले को परास्त करके गुरु जी छहों सम्प्रदायों के अनुयायियों के आदर-पात्र बने। तब सिद्धों ने हर्ष से यह शुभ उद्घोष किया—'नानक जी, आपका पद ऊँचा है। कलियुग में नवीन प्रकाश का दाता एक अद्भुत प्राणी उत्पन्न हुआ है।'[२]

१. यह गुरु ग्रन्थ साहिब (पृष्ठ १४८०) में पठित गुरु जी के अपने एक 'शबद' (वार माझ) का अन्य शब्दों में प्रकटीकरण मात्र प्रतीत होता है।

२. भाई गुरदास, वार १।४१-४४। सिद्धों के साथ हुआ वार्तालाप गुरु ग्रन्थ साहिब में एक दीर्घ कविता में सुरक्षित है। उस कविता का शीर्षक है 'सिद्ध गोष्ट'। इसमें वार्तालाप छन्दोबद्ध है, और कहीं साधारण तर्क में दर्शन का पुट है। उसमें दो धाराएं समानान्तर बहती हैं—साधुओं का योग, और ईश्वरवादी की भक्ति। श्री गुरु नानक ने पुनः घोषित किया कि ईश्वर की

अब करतारपुर के निवास-काल में मर्दाना रुग्ण हो गया। इस समय उसका वय छिहत्तर वर्ष था।[1] वह दुर्बल होता गया, और स्वस्थ होने की कोई आशा न रही। मुसलमान परिवार में जन्म ले कर भी वह श्री गुरु नानक का भक्त हो गया था। गुरु जी ने उससे पूछा—'तुम्हारा अन्तिम संस्कार किस रीति से किया जाए ?' मर्दाने ने उत्तर दिया—'आपकी शिक्षाओं के प्रभाव से मेरा शरीर का अहंत्व नष्ट हो चुका है। मृत्यु के अनन्तर यह देह जिस रूप में शेष रह जाए आप जिस प्रकार चाहें इसे किसी ठिकाने लगा दें।' तब गुरु जी ने पूछा—'क्या तुम्हें जगत् में प्रसिद्ध करने के लिए मैं तुम्हारा मक़बरा बनवा दूं ?' मर्दाने ने उत्तर दिया—'जब गुरु जी मुझे शारीरिक क़ब्र से मुक्त कर रहे हैं, तब पाषाण की क़ब्र में क्यों बद्ध करें !' तत्पश्चात् गुरु जी ने उससे कहा—'अपने स्रष्टा पर ध्यान लगाओ।' आगामी दिन सूर्योदय से एक प्रहर पूर्व मर्दाने ने शरीर-त्याग कर दिया। गुरु जी ने मर्दाने का शव रावी नदी में प्रवाहित कर दिया, 'शबदों' का गान करवाया और सिखों में 'कड़ाह प्रसाद' (हलवे का प्रसाद) वितीर्ण करवाया। गुरु जी ने मर्दाने के पुत्र शहज़ादे को तथा परिवार के अन्य सदस्यों को सान्त्वना दी और कहा कि जो स्वर्ग में निवास करने चला गया है उसके लिए रोना नहीं चाहिए।[2]

जिस मुसलिम वैतालिक ने गुरु जी की छाया बन कर जगत् की चारों दिशाओं में पर्यटन किया उसका सौभाग्यशाली जीवन इस प्रकार समाप्त हुआ। अपने जीवन के पचहत्तर वर्षों में से सैंतालीस वर्ष उसने गुरु जी के साहचर्य में व्यतीत किए—यह एक ऐसा सौभाग्य है जिसकी कामना स्वर्ग में देव-गण भी

प्राप्ति केवल उसके नाम के स्मरण से ही सम्भव है। नित्य गुरु नाम का प्रकाश करता है। इसी में समस्त योग का रहस्य आ जाता है। गुरु जी के अनुसार सर्वोच्च पूर्णता के लिए गृहस्थ जीवन परमावश्यक है।

१. मर्दाने का जन्म-काल १४५९ ई० और निधन-काल १५३४ ई० है (काहनसिंह : महान् कोष, पृष्ठ ७१४)। इसी लेखक के अनुसार मर्दाने का देहान्त अफ़ग़ानिस्थान में कुर्रम नदी के तट पर हुआ और गुरु जी ने उसका अन्तिम संस्कार किया। 'मनीसिंह जनमसाखी', (पृष्ठ ४९७) के एक परोक्ष उल्लेख के अनुसार मर्दाने का मक़बरा 'खुरमा' देश में है। सम्भव है 'महान् कोष' के रचयिता ने 'खुरमा' शब्द से 'कुर्रम' की कल्पना कर ली हो। स्वयं 'मनीसिंह जनमसाखी' के अनुसार मर्दाने का देहांत करतारपुर में हुआ। 'महान् कोष' के अतिरिक्त, उपलभ्यमान समस्त साक्ष्य करतारपुर में शरीर-त्याग के पक्ष में हैं।

२. मर्दाने के निधन का यह वृत्तान्त 'मनीसिंह जनमसाखी', पृष्ठ ४९६-९७ के अनुसार है।

करता होगा। गुरु जी जहाँ-कहीं गए, वह समय-कुसमय प्रत्येक काल, निश्छल भक्ति-भावना से उनका अनुयायी रहा। उसने अदृष्ट-पूर्व देशों में गुरु जी की दीर्घ तथा अविरत यात्राओं में कष्ट सहे और बार-बार आने वाली परीक्षाओं के क्षणों में चित्त की प्रसन्नता को जिसके साथ परम्परीय व्यवसाय में सुलभ विनोद-वृत्ति का भी संयोग था कभी नहीं खोया। साहचर्य के इस दीर्घकाल में वह सतत गुरु जी के स्नेह इवं विश्वास का भाजन रहा और उसे भी गुरु जी की उस मानसिक अवस्था की अनुभूति होती रही जिसमें उनको अतीन्द्रिय ईश्वरीय ज्ञान और शब्द की प्राप्ति होती थी। गुरु जी प्रारम्भ से ही उसके साहचर्य को मूल्यवान् समझते थे और जैसा जनमसाखी का कथन है तलवंडी में गुरु जी को जितनी प्रसन्नता मर्दाने के संसर्ग से होती थी उतनी अपने परिवार के किसी व्यक्ति अथवा प्रतिवेशी के संसर्ग से नहीं।[१] गुरु जी के सत्य-स्नेहशाली संगी के निधन के अनन्तर करतारपुर का वातावरण अवश्य कुछ परिवर्तित प्रतीत हुआ होगा। मर्दाने की जरा-ग्रस्यमान तथा दुर्बल, किन्तु सौम्य मूर्ति करतारपुर के रूप-दर्शन का सुप्रसिद्ध अंग थी, और उसकी संगीत-प्रतिभा वहाँ के वातावरण में एक असामान्य गुण की वृद्धि करती थी। मर्दाने के पश्चात् उसका स्थान उसके पुत्र शहज़ादे को दिया गया और गुरु जी के जीवन के अवशिष्ट काल में वह उनका संगी रहा।

अब गुरु जी भी वृद्ध हो गए थे और एक समय ऐसा प्रतीत हुआ कि अपने पश्चात् धर्म-प्रचार का कार्य चलता रखने के हेतु उन्होंने अपने उत्तराधिकारी का निर्धारण कर लिया हैं। अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के प्रयोजन से गुरु जी ने अपने शिष्यों की जो अनेक परीक्षाएँ लीं उनमें से अन्तिम परीक्षा 'पुरातन जनमसाखी' में इस प्रकार वर्णित है: "आदेश हुआ और गोरखनाथ आ गया उसने गुरु जी से कहा—'तुम्हारे अनुयायी बहुत हैं।' गुरु जी बोले—'गोरखनाथ! तुम देखोगे हमारे अनुयायियों की संख्या क्या है।' तब गुरु जी घर से बाहर निकल गए। बहुत लोग आ गए और उनके पीछे-पीछे गए। आदेश हुआ, और भूमि पर ताँबे की मुद्राओं का ढेर लग गया। अनुयायियों में से अनेक उन्हें उठाकर चलते बने। तत्पश्चात् भूमि पर चाँदी की मुद्राएँ बिछ गईं। अनुयायियों में से अनेक ने वे उठाईं और चल दिए। तदनन्तर भूमि सोने की मुद्राओं से आच्छन्न हो गई। जो अनुयायी शेष रह गए थे उनमें से केवल दो के अतिरिक्त सब उन्हें उठा कर ले गए।

१. 'मेहरबान जनमसाखी', पृष्ठ ७३।

२. यह इतिहास के विरुद्ध है। योगियों के नाथ-पन्थ के प्रवर्तक गोरखनाथ का आविर्भाव-काल गुरु जी के काल से बहुत पूर्व है।

अब अवशिष्ट अनुयायियों के साथ गुरु जी आगे बढ़े तो उन्होंने एक चिता देखी उसके चारों कोनों पर चार दीपक जल रहे थे, और समीप ही चादर से ढका एक शव था, जिसमें से दुर्गन्ध निकल रही थी। गुरु जी बोले—'कोई है जो इस शव में से कुछ खा ले ?' गुरु जी के साथ जो दो अनुयायी थे उनमें से एक ने मुंह दूसरी ओर कर लिया, थूका, और वह वहाँ से चला गया। अब गुरु जी के साथ लहिणा ही वहाँ खड़ा रह गया। गुरु जी के आदेश का पालन करने के लिए शव की ओर बढ़कर उसने पूछा—'गुरु जी, किस ओर से खाऊँ ?'... ......तब गोरखनाथ बोला—'तेरा उत्तराधिकारी तेरे अपने शरीर का अंग होगा।' गुरु जी ने लहिणा को 'अंगद' (अपना अंग) कहकर सम्बोधन किया।"[1]

जनमसाखी का कथन है, "तब गुरु जी रावी नदी के तीर पर आए। उन्होंने अंगद के सम्मुख पांच पैसे रखे और उसके चरणों को छूकर नमस्कार किया।"[2] जो लहिणा गुरु-भक्त शिष्य था इस प्रकार गुरु बना दिया गया। वह स्वयं नानक बन गया। "श्री गुरु नानक ने रूप परिवर्तित करके अपनी ज्योति लहिणा में प्रविष्ट कर दी।"[3] श्री गुरु अंगद ने गुरु जी से प्रार्थना की कि जो भक्त परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सके उन्हें क्षमा कर दिया जाए। गुरु जी ने कहा—'तुम्हारे कारण मैं उन्हें क्षमा करता हूँ।' तब श्री गुरु अंगद श्री गुरु नानक के चरणों में नत हो गए। गुरु जी ने उन्हें खडूर में वापिस जाकर रहने और सिख धर्म के प्रचार का आदेश दिया।

SIKHBOOKCLUB.COM

समाचार सर्वत्र प्रसृत हो गया कि गुरु जी अब महाप्रस्थान की प्रस्तुति कर रहे हैं। शिष्यों के समुदाय के समुदाय उनके दर्शनार्थ आने लगे। "हिन्दू, मुसलमान, सब आए।.........गुरु जी जा कर एक सिरस के नीचे बैठ गए। शुष्क वृक्ष पल्लवित और पुष्पित हो गया। श्री गुरु अंगद ने आदर से उनके चरणों का स्पर्श किया।"[4] गुरु जी की पत्नी शोक से विह्वल होकर रोने लगी। अन्य सम्बन्धी, पारिवारिक व्यक्ति तथा शिष्य भी रोने लगे। उन्हें सान्त्वना देते हुए गुरु जी बोले—'किसी को रोना नहीं चाहिए।' तब उन्होंने यह 'शबद' पढ़ा :

"धंनु सिहंदा सचा पातिसाहु जिनि जगु धंधै लाइआ ॥
मुहलति पुनी पाई भरी जानीअड़ा घति चलाइआ ॥

---

१. 'पुरातन' जनमसाखी', पृष्ठ १२५।
२. 'पुरातन जनमसाखी', पृष्ठ १२८।
३. भाई गुरदास : वार १।४५।
४. 'पुरातन जनमसाखी' पृष्ठ १२८।

जानी घति चलाइआ, लिखिआ आइआ, रु ने वीर सबाए ॥
कांइआ हंस थीआ वेछोड़ा, जां दिन पुंने मेरी माए ॥
जेहा लिखिआ तेहा पाइआ, जेहा पुरबि कमाइआ ॥
धंनु सिहंदा सचा पातिसाहु जिनि जगु धंधै लाइआ ॥
साहिवु सिमरहु मेरे भाई हो, सभना एहु पइआणा ॥
एथै धंधा कूड़ा चारि दिहा, आगै सरपर जाणा ॥
आगै सरपर जाणा जिउ मिहमाणा, काहे गारबु कीजै ॥
जितु सेविऐ दरगह सुखु पाईए, नामु तिसै का लीजै ॥
आगै हुकमु न चलै मूले, सिरिसिरि किआ विहाणा ॥
साहिव सिमरहु मेरे भाई हो सभाना एहु पइआणा ॥
जो तिसु भावै संम्रथ सो थीऐ हीलड़ा एहु संसारो ॥
जलिथलि महीअलि रवि रहिआ साचड़ा सिरजणहारो ॥
साचा सिरजणहारो अलख अपारो ता का अंतु न पाइआ ॥
आइआ तिन का सफलु भइआ है इक मनि जिन धिआइआ ॥
ढाहे ढाहि उसारे आपे हुकमि सवारणहारो ॥
जो तिस भावै संम्रथ सो थीऐ हीलड़ा एहु संसारु ॥
नानक रु ना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाइ पिआरो ॥
वालेवे काहणि बाबा रोईऐ रोवणु सगल विकारो ॥
रो.णु सगल विकारो गाफलु संसारो माइआ काहणि रोवै ॥
चंगा मंदा किछु सूझै नाही इहु तनु एवै खोवै ॥
ऐथै आइआ सभु को जासी कूड़ि करहु अहंकारो ॥
नानक रु ना बाबा जाणीऐ जे रोवै लाइ पिआरो ॥"[1]

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, रागु वडहंस, पृष्ठ ५७८-७९ ।

तात्पर्य—जगत्-स्रष्टा, सच्चा राजा धन्य है, जिसने संसार को धंधों में लगा रखा है । इस लोक में रहने के लिए प्राणी को परमात्मा की ओर से जितनी कालावधि दी गई है, जब वह पूर्ण हो जाती है और भगवान् का आदेश पत्र आ जाता है तब जीव शरीर को छोड़ कर चल देता है, तब सभी-बन्धु रोने लगते हैं । मेरी मा ! जिस दिन आयु के दिन पूरे हो जाते हैं उस दिन शरीर और जीव का वियोग हो जाता है । तूने पूर्व काल में जो पुण्य और पाप का अर्जन किया था और उसके अनुसार तेरे भाग्य में जो कुछ लिखा गया था, तूने वह पा लिया । जगत्-स्रष्टा सच्चा राजा धन्य है, जिसने संसार को धन्धों में लगा रखा है । मेरे बन्धुओ ! भगवान् का स्मरण करो । सबका इसी प्रकार यहाँ से प्रयाण होगा । इस संसार के समस्त व्यवहार चार दिन के मिथ्या व्यापार हैं । आगे की यात्रा सिर पर है । आगे की यात्रा इसी प्रकार सिर पर है जिस प्रकार अभ्यागत के सिर पर होती है । गर्व किस हेतु किया जाए !

तब शिष्य-मंडली 'शबद' गाने लगी। वायु-मण्डल पवित्र संगीत से व्याप्त हो गया। गुरु जी मूर्च्छावस्था को प्राप्त हो गए, और, 'पुरातन जनमसाखी' के अनुसार, उन्होंने तुखारी छन्द में एक 'शबद' बोला। वह 'शबद' गुरुग्रन्थ साहिब में सुरक्षित है। उसका शीर्षक है 'बारामाहा' (बारह मासा)। इस कविता में, भावप्रधान गीतिका की पद-शैली में, जीवात्मा की परमात्मा के साथ मिलने की तीव्र उत्कण्ठा वर्णित है और इसकी लय-लहरियों का उत्थान-पतन वर्ष के बारह मास में होने वाले प्रकृति-परिवर्तनों के अनुरूप है। इसमें जिस रूपकातिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है उसके उपादान-तत्त्व गृहस्थ-जीवन से गृहीत हैं। यद्यपि यह शैली पुरातन है, तथापि इस कविता में प्रयुक्त रूपकातिशयोक्ति को गुरु जी की प्रौढोक्ति द्वारा निष्पादित रूप-सृष्टि की विशिष्टता तथा मूर्त्तता ने एक नवीन आभा एवं सारवत्ता प्रदान की है। इस कविता में गुरु जी के अन्तर में अपने जन्म प्रदेश 'बार' के पादपों, पुष्पों और पक्षियों की स्मृति उभर आई है, और 'बार' के जो दृश्य उनकी कल्पना में, उनके बाल्य-काल से ही, बद्ध-मूल हो चुके थे उनके आह्वान में जन्म-भूमि की पीडामयी स्मृति का अतिस्पष्ट संस्पर्श है। भारतीय वर्ष-गणना में प्रथम मास,

---

ईश्वर के दरबार की सेवा करनी चाहिए जिससे सुख की प्राप्ति हो। उसी ईश्वर का नाम लेना चाहिए। परमात्मा के दरबार में यहाँ के प्रभुत्व के पदों की तनिक भी पूछ नहीं होगी। कोई प्राणी नहीं जानता परलोक में प्रत्येक मनुष्य को क्या सुख-दुःख सहना पड़ेगा। बन्धुओ! भगवान् का भजन करो, सब का इसी प्रकार प्रयाण होगा। उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा की जैसी इच्छा होती है वैसा ही होता है। यह संसार तो एक साधनमात्र है। वह सत्य जगत्-स्रष्टा जल में, स्थल में, पृथ्वी में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वह सत्य जगत्-स्रष्टा अलक्ष्य, अनन्त है। उसका अन्त नहीं पाया जाता है। जिन्होंने एक मन होकर भगवान् का ध्यान किया उन्हीं का जन्म सफल है। वह आप ही संहार करता है, और फिर आप ही सर्जन करता है। वह अपने आदेश से ही जगत् को सँवारता है। उस सर्वशक्तिमान् की जैसी इच्छा होती है वैसा ही होता है। यह संसार तो एक साधनमात्र है। बाबा नानक! जो प्रिय परमात्मा से प्रीति लगाकर रोए उसी का रोना यथार्थ जानना चाहिए। बाबा! व्यर्थ क्यों रोया जाए! यह समस्त प्रकृति-विकार (संसार) रोदन-कारक ही तो है। यह समस्त विकार रोदन-कारक ही तो है। संसार प्रमादग्रस्त है। मा! रोना किसलिए? संसार को अपनी लाभ-हानि का विचार नहीं है। वह रो-रोकर इस शरीर को क्षीण करता है। जो कोई यहाँ आया है वह जाएगा। अहंकार मिथ्या है। बाबा नानक! जो प्रिय परमात्मा से प्रीति लगाकर रोता है उसी का रोना जानना यथार्थ चाहिए।

१. बार=कंटकी क्षुपों का प्रदेश।

चैत्र, के विषय में उन्होंने कहा :—

"चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े ॥
बन फूले मंझ बारि मैं पिरु घरि बाहुड़ै ॥
पिरु घरि नहि आवै धन किउ सुखु पावै बिरहि बिरोध तनु छीजै ॥
कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै ॥
भवरु भवंता फूली डाली, किउ जीवा मरु माए ॥
नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरि वरु घरि धन पाए ॥"[1]

'शबद' समाप्त करके गुरु जी ने अपने 'शबदों' का ग्रन्थ श्री गुरु अंगद के हाथों में दे दिया। रात्रि समाप्त हो चली थी। जनमसाखी में गुरु जी के अन्तिम क्षणों का वर्णन इस प्रकार दिया गया है—"मुसलमानों ने कहना आरम्भ किया 'हम इसे क़ब्र में रखेंगे।' हिन्दुओं ने कहा 'हम इसका दाह-कर्म करेंगे।' गुरुजी ने कहा 'हिन्दू और मुसलमान तुम दोनों मेरी दोनों भुजाओं के समीप फूल रखो—हिन्दुओं के फूल दाहिने और मुसलमानों के बाएँ हों। जिनके फूल ताज़ा रहेंगे वे ही मेरे शव को उठाएँगे। इसके पश्चात् गुरु जी ने 'संगत' से ईश्वर-स्तुति का गीत गाने के लिए कहा, और तब 'सोहिला' गाया गया :—

"जै घरि कीरति आखीऐ, करते का होइ बीचारो ॥
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ॥
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ॥
हउ वारी जितु सोहिले सदा सुखु होइ ॥
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ॥
तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥
संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ॥
देहु सजण असीसड़ीआ जितु होवै साहब सिउ मेलु ॥

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, तुखारी, पृष्ठ ११०८।

तात्पर्य—सत्य ही वसन्त ऋतु में चैत्र मास सुन्दर होता है और इस काल में भ्रमर-गुञ्जन मनोहर लगता है। 'बार' के प्रदेश में वन पुष्पित हो रहे हैं। मैं चाहती हूँ मेरा प्रिय घर लौट आए। यदि प्रिय घर न आए तो स्त्री किस प्रकार सुख पा सकती है! विरह के निरोध में उसका शरीर क्षीण होता जाता है। आम्र-कुञ्ज में कोकिला मधुर बोल बोल रही है। इस मनोहर ऋतु में दुःख कैसे सहा जा सकता है! भ्रमर पुष्पित लता के चतुर्दिक् मँडला रहा है। मा! इस प्राणहारी काल में मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ! नानक! यदि स्त्री अपने घर में पति को प्राप्त करे तो वह चैत्र में सुगमता से सुख पा सकती है।

घरि-घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि ॥
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि ॥"[1]

तदनन्तर 'जपुजी' का अन्तिम 'शलोकु' पढ़ा गया :—

"पवणु गुरू पाणी पिता धरति महतु ॥
दिवसु राति दुइ दाईदाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥"[2]

"जब जपुजी' का अन्तिम 'शलोकु' पढ़ा जा चुका, तब गुरु जी चादर ओढ़ कर लेट गए। वहाँ उपस्थित समस्त नर-नारियों ने उन्हें नमस्कार किया। जब चादर उठाई गई तब उसके नीचे फूल ही थे, अन्य कुछ नहीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों के फूल ताज़ा रहे। हिन्दुओं ने अपने फूल ले लिए, और

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सोहिला, रागु गउड़ी दीपकी, पृष्ठ ११-१२।

तात्पर्य—जिस घर में ईश्वर स्तुति गाई जाती हो और जहाँ लोग भगवान् का विचार करते हों, तुम उस घर में जाकर भगवान् स्तुति का गीत गाओ, जगत्-स्रष्टा का स्मरण करो। तुम मेरे निर्भय भगवान् की स्तुति का गीत गाओ। जो ईश्वर-स्तुति-गीत सदा-सुखदायक है मैं उसकी बलिहारी। वह दाता प्रतिदिन अपने उत्पादित जीवों की सँभाल करेगा। प्रभो! तुम्हारे दान का मूल्य अवधारित नहीं किया जा सकता है। फिर, दाता की महत्ता की तो गणना क्या! साहे (विवाह) का वर्ष और दिन ईश्वर के काग़ज़ों में पहिले से ही लिखा रहता है। सहेलियो! वर के स्वागत के लिए मिलकर द्वार पर तेल डालो, और मुझे आशीर्वाद दो जिससे मेरा अपने स्वामी के साथ संयोग हो जाए। बुलावे की यह चिट्ठी प्रतिदिन प्रत्येक घर में पहुँचती है। बुलानेवाले का स्मरण करना चाहिए। नानक! वह दिन आ ही रहा है ॥

२. पवन गुरु, जल पिता तथा महती धरित्री माता है। दिन और रात्रि दो धात्रियाँ हैं, जिनके क्रोड में समस्त जगत् क्रीडा करता है। भगवान् के सम्मुख हमारे पुण्य-पापों का निर्णय होगा। अपने कर्मानुसार हम प्रभु के समीप अथवा उससे दूर होंगे। जो भगवन्नाम का जप-ध्यान करेंगे उनके कष्ट समाप्त हो जाएँगे। नानक! भगवन्नाम के ध्याताओं के ही मुख उज्ज्वल होंगे तथा उनके संग अन्य अनेक मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेंगे।

मुसलमानों ने अपने। समस्त 'संगत' ने पृथ्वी पर मस्तक रख कर प्रणाम किया।"[1]

सात सितम्बर १५३९ ई०[2] को श्री गुरु नानक ने भौतिक देह का त्याग किया; किन्तु उन्होंने अपने पीछे दाय के रूप में तीन वस्तुएँ छोड़ी: दृढ भक्तिमान् शिष्यों का बन्धु-समाज, उच्च-नीच सर्वजाति तथा सर्वश्रेणी के लिए एकसमान सुलभ ईश्वरीय ज्ञान, भावी प्रगतियों की दिशा और पद्धतियों का निर्णायक एक उत्तराधिकारी अर्थात् गुरु।

गुरु-भक्तों ने रावी नदी के तट पर गुरुजी के जो स्मारक बनवाए थे नदी-प्रवाह ने उन्हें ध्वस्त कर दिया। कहा जाता है कि गुरु जी की यही इच्छा थी। तब गुरु जी के वंशजों एवं भक्तों ने नदी के अन्य तट पर एक अन्य नगर बसाया, उसका नाम डेरा बाबा नानक रखा, और स्वयं यहीं आकर रहने लगे। उस नगर के वर्तमान निवासियों में अधिकांश उन्हीं की संतान हैं।

---

१. 'पुरातन जनमसाखी' पृष्ठ १३२-३३।

२. चार जनमसाखियों में एक, 'मेहरबान जनमसाखी' का पूर्ण ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं हुआ है। शेष तीन में गुरु जी के शरीर-त्याग के भिन्न-भिन्न काल दिए गए हैं। 'बाला जनमसाखी' में 'असुज वदी १०, सं० १५९६' (७ सितम्बर-१५३९ ई०) है। 'पुरातन' में 'असुज सुदी १०, सं० १५९५' है। यह 'बाला जनम साखी, में दिए समय से एक वर्ष पूर्व चला जाता है। इसमें मास वही है जो बाला में है; किन्तु पक्ष का अन्तर है। इसमें शुक्ल पक्ष है जब कि बाला में कृष्ण। अतः इस दृष्टि से दोनों में पन्द्रह दिन का अन्तर है। 'मनीसिंह जनम-साखी' में 'असुज सुदी १०, सं० १५९६' (२२ सितम्बर, १५३९ ई०) है। अधिकतर उत्तरकालिक इतिहासविद् 'मनीसिंह जनमसाखी' में दिए काल को ही स्वीकार करते हैं। देखिए करमसिंह: गुर परब निरनै, पृष्ठ ५७; काहन सिंह: महान् कोष. पृष्ठ ५१९; खुशवन्तसिंह: 'सिखों का इतिहास' (A History of the Sikhs) पृ० ६७; साहिब सिंह: 'जुलाई—सितम्बर' १९६८ की 'आलोचना' में पृष्ठ ९२, 'जीवन ब्रित्तान्त श्री गुरु नानक देवजी।' डब्ल्यू० एच० मैकलिआड (W. H. Mcleod) गुरु नानक और सिख धर्म (Guru Nanak and the Sikh Religion), पृष्ठ १०१, बाला जनमसाखी, में दिए समय (सात सितम्बर १५३९ ई०) को स्वीकार करता है, ऐसा करने में वह गुरु ग्रन्थ साहिब के करतारपुरवाले हस्तकोश में दी हुई गुरुओं की तिथियों को विशेष महत्त्व की मानता है। कारण, वह हस्तकोश श्री गुरु अर्जुन द्वारा संकलित गुरु ग्रन्थ साहिब की मौलिक प्रति है। करतारपुर के हस्तकोश में दी हुई श्री गुरु नानक के शरीर-त्याग की तिथि परम महत्त्व की है। इस तिथि की पुष्टि 'बाला जनमसाखी' से तो होती ही है, डेरा बाबा नानक में प्रचलित अनुश्रुति से भी होती है। वहाँ पर प्रतिवर्ष गुरु जी की निधन-तिथि जिस दिन मनाई जाती है वह वही है जो 'बाला जनमसाखी' में दिया गया है।

१५

अविच्छिन्न सत्ता

श्री गुरु नानक ने, धर्मोपदेष्टा के रूप में जो कार्य किया भाई गुरदास ने एक चित्र-विशद पद्य में उसका अंकन इस प्रकार किया है :—

"सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चानणु होआ ।।
जिउ कर सूरज निकलिआ तारे छपे अंधेर पलोआ ।।
सिंघु बुके म्रिगावली भंनी जाइ ना धीर धरोआ ।।
जिथै बाबा पैर धरे पूजा आसण थापण सोआ ।।
सिध आसण सभ जगत दे नानक आदि मते जे कोआ ।।
घर-घर अंदर धरमसाल होवे कीरतन सदा विसोआ ।।
बाबे तारे चार चक, नौ खण्ड प्रिथमी सचा ढोआ ।।
गुरमुखि कलि विचि प्रगट होआ ।।"[१]

---

१. वार १/२७ ।

—सत्य गुरु नानक जगत् में प्रगट हुआ, अन्धकार नष्ट हो गया, प्रकाश प्रसृत हो गया । मानो सूर्य उदित हो गया, नक्षत्र प्रच्छन्न हो गए, अन्धकार पलायित हो गया ; अथवा, जैसे सिंह के गरजने पर मृग धैर्य नहीं रख सकते हैं और भाग जाते हैं । जिस स्थान पर बाबा नानक ने चरण रखा वही पूजा का आसन रखने योग्य (अर्थात् पवित्र) हो गया । जगत् में जहाँ-जहाँ सिद्धों (नाथ पन्थियों) के आसन (पीठ) थे (अथवा, जहाँ-जहाँ प्रसिद्ध पीठ थे) अब वहाँ सर्वत्र सब कोई नानक के मत का अनुयायी है । प्रत्येक घर में 'धरमसाला' बन गई है, और प्रतिदिन भगवान् के नाम का कीर्तनोत्सव होता है, (अथवा प्रतिदिन वैशाखी-सदृश उत्सव रहता है) । (परमात्मा) के नाम का प्रकाश करके बाबा नानक ने चारों दिग्भागों, एवं पृथ्वी के नौ खण्डों, के निवासियों का उद्धार कर दिया । कलियुग में परमात्मा का साक्षात्कर्ता [पुरुष] प्रकट हुआ (अथवा कलियुग में गुरुओं में प्रमुख गुरु प्रकट हुआ) ।

SIKHBOOKCLUB.COM

श्री गुरु नानक तथा उनके कार्य का यह मूल्यांकन उनके शरीर-त्याग के प्रायः साठ वर्ष पश्चात् हुआ। परन्तु इसके घटक विचार, प्रतिध्वनि-गुंजित ऐसी अभिव्यक्ति प्राप्त करने से पूर्व कुछ काल तक निर्माणावस्था में वर्तमान रहे होंगे। इन विचारों को शब्दों का परिधान देनेवाला व्यक्ति कवि भी था और पण्डित भी। उसमें कल्पना-प्रधान सर्जन की शक्ति तो थी ही, सिद्धान्त-प्रणयन की प्रज्ञा भी। उसने अपने समय में विकास को प्राप्त होते हुए धर्म के विविध रूपों की, मौलिक तथा प्रामाणिक शैली में, व्याख्या की और उन्हें साकारता प्रदान की। वह भी गुरु अर्जुन का अत्यन्त समीपवर्ती साथी तथा शिष्य था, और उसने उन्हीं के समय में ग्रन्थ-रचना का कार्य किया—श्री गुरु अर्जुन, जो साक्षात् आध्यात्मिक-वंशक्रमागति में स्वयं नानक, पंचम नानक थे। तथापि श्री गुरु नानक की तथा उनके उपदेशों की स्मृति के प्रभाव ने उस समय तक लोगों के हृदयों को दृढ़ता से पकड़ रखा था और, इस तथ्य को भाई गुरदास ने इस पद्य-सूक्ति में निगृहीत किया है।

ऊपर अवतारित पद्य-पंक्तियों की अलंकार-योजना में गुरु जी का मुक्ति-दाता के रूप में, स्वरूपावगमन स्पष्ट है। इस लोक में उनका अवतरण एक ईश्वरीय विधान था। उनके उपदिष्ट सत्य ने अज्ञान और पाप अपसारित कर दिए। उन्होंने विदेशों में भ्रमण करके धर्मोपदेश किया। जहाँ कहीं उनका पदार्पण हुआ वहीं ईश्वरपूजालयों की स्थापना की गई। गृहस्थ के हाथ से अपहृत धर्म पुनः उसे दे दिया गया। गृहस्थ का घर ही उसकी ईश्वर-प्रार्थना-पूजा के लिए देवालय बन गया। गुरु जी का सन्देश समस्त मानवता के लिए था। कलियुग में धरा पर उनके अवतीर्ण होने का प्रयोजन यही था कि संसार को ईश्वरोक्त धर्म-मार्ग दिखाया जाए। 'श्री गुरु नानक द्वारा प्रचारित ईश्वरोक्त धर्म ईश्वर-प्रवण और सार्वभौमिक है।' श्री गुरु नानक के धर्म का यह अर्थ सूक्ष्म-दर्शी भाई गुरदास के मन में प्रधान बनकर बैठा हुआ था। गुरु जी के निधन के शीघ्र पश्चात् जो लोग उनके अनुयायी बने उनके मन में भी यही अर्थ विद्यमान था। जनमसाखी-लेखकों ने भी गुरु जी को इसी दृष्टि से देखा था, और अपनी विशिष्ट शैली में मिथ्या-वृत्त और इतिवृत्त को परस्पर गुम्फित करके उन्होंने इसी तथ्य को प्रकट करने का यत्न किया है। 'हमने एक ऐसे अद्भुत-कर्मा पुरुष के दर्शन किए हैं जिसके सन्निधान और शब्दों ने हमारे जगत् में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।' इस मनोभाव को प्रकट करने के लिए उस समय के लोग इसी शैली का अवलम्ब लेते थे। उस समय जैसे प्राकृतिक व्यवस्था विपर्यस्त हो गई थी वैसे ही अनेक मनुष्यों के जीवन भी। पशुओं के खाए हुए खेत पुनः प्रभूत-शस्य-पूर्ण हो गए, नर-हन्ता पापात्मा सन्त हो गया, कराह में उबलता तेल शीतल हो गया। 'मिथ्या वृत्तान्तों तथा अद्भुत

कर्मों की कथाएँ मिश्रित की गई।[1] यह तथ्य, धर्म के उक्त अर्थ में, ऐतिहासिक सामग्री के सर्वथा अनुरूप है। श्री गुरु नानक को समझने, और उनकी प्रतिभा की वास्तविक गहराई का पता लगाने, के प्रकरण में यह साक्ष्य प्रसंगानुकूल है।

भाई गुरदास के काव्यात्मक साक्ष्य प्रमाण, जनमसाखियों के द्वारा प्रसारित कथाओं, और पाँच सौ वर्ष से जीवित चली आनेवाली अनुश्रुति, के अतिरिक्त गुरु ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित गुरु जी के अपने शब्द भी हैं। परमात्मा की इच्छा और सत्ता के साक्षात्कार का स्वर इस समस्त काव्य में व्याप्त है। वस्तुतः इसी विषय के निरूपण के लिए तो गुरु जी पूर्णतया वचन-बद्ध थे। इसी वचन-बद्धता ने तो उनके हृदय में मानवता के असीम प्रेम, उसके लिए गहरे दया-भाव तथा उसके मंगल की सक्रिय चिन्ता को जन्म दिया था। उनकी रचनाओं में जगत् स्रष्टा और उसके गुणों के विषय में विचार हैं, उसकी महिमा का गान है, उसको गुरु जी ने जिस भावुकता से अनुभव किया था उसका चित्रण है, और संसार में फैले सामाजिक वैषम्य एवं अन्याय को अंगुलि रखकर दिखलाया गया है—सामाजिक वैषम्य तथा अन्याय को तो गुरु जी ईश्वरीय व्यवस्थाओं में मनुष्य का हस्तक्षेप अत एव पाप मानते थे। इन सब वर्णनों में उनका स्वर ईश्वरीय ज्ञान के साक्षी का स्वर है। उन वर्णनों से पाठक और श्रोता को विश्वास हो जाता है कि इनके लेखक ने भगवान् के दर्शन कर लिए थे, अथवा उसने भगवान् के सम्बन्ध में कुछ सुन लिया था, जिसकी ओर वह लोगों का ध्यान आकृष्ट कर रहा है। गुरु जी के एक 'शबद' में कहा गया है कि परमात्मा जिस रूप में अपना शब्द मुझे भेजता है मैं उसी रूप में उसे लोगों तक पहुँचा देता हूँ।[1] एक अन्य स्थल है 'नानक उस नित्य सत्ता के सत्य की घोषणा करता है।'[2] अथवा, 'मैं तो केवल ऊपर से प्राप्त हुए आदेश को लोगों को सुना देता हूँ।'[3] पुनः, 'मैंने तो केवल वही बात कही जिसे कहने का तूने मुझे आदेश दिया।'[4] यह स्पष्ट है कि श्री गुरु नानक को विश्वास था कि मैं परमात्मा के आदिष्ट कार्य का सम्पादन कर रहा हूँ। उनकी 'उदासियाँ' (यात्राएँ) उनका शिष्य-मण्डल-निर्माण; सूफ़ियों, सिद्धों, विद्वानों और धर्मशास्त्रियों के साथ उनका वार्तालाप; उनका प्रभुत्वशाली तथा दीन-हीन को उपदेश; उनका रुग्ण और पापी को मुक्त करना; सम्मुख आई स्थिति में उनका दुःखमय और

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, तिलंग, पृष्ठ ७२२।
२. गुरु ग्रन्थ साहिब, तिलंग, पृष्ठ ७२३।
३. वही, सूही, पृष्ठ ७६३।
४. वही, वडहंस, पृष्ठ ५६६।

सुखमय तत्वों को देखना; उनका करतारपुर बसाना; उनका बन्धु-समाज के नियमों का निर्माण; उनका 'लंगर' और 'संगत' का सर्जन, उनकी गीति और उनकी कविता—उन्होंने जो कुछ भी किया सब इस चेतना से प्रेरित होकर।

भाई गुरदास ने गुरु जी का अवतरण एक भ्रष्ट समाज के मंच पर दिखलाया है। उसका कथन है—'कारुणिक जगत्-पति ने पृथ्वी का रोदन सुना, और श्री गुरु नानक को यहाँ भेज दिया।' जिस स्थिति में गुरु जी का अवतरण हुआ उसका वर्णन भाई गुरदास ने इस प्रकार किया है—'जगत् में महा अशुभ-इच्छा व्याप्त थी। मनुष्य चार वर्णों में विभक्त थे। वे (मनुष्य) जीवन को चार आश्रमों में विभक्त करते थे। संन्यासियों के दस भेद थे, योगियों के बारह पन्थ। इसी प्रकार जैनों के विभिन्न सम्प्रदाय थे, और वे सदा परस्पर कलहायमान रहते थे। ब्राह्मण वेदों, शास्त्रों और पुराणों को एक दूसरे के विरुद्ध सिद्ध करते थे। दर्शन की छँ शाखाएँ थीं, और उनके व्याख्याकारों ने अनेक मतभेद खड़े कर रखे थे, और प्रबल छल को जन्म दे दिया था। लोग तान्त्रिक-क्रियाओं के रसिक हो गए थे। उन्होंने एक परमात्मा के अनेक कर दिए थे, और सुरूप-कुरूप, नाना प्रकार की, पत्थर और लकड़ी की देव-मूर्तियाँ बना रखी थीं।'[1]

'जैसे हिन्दुओं में वर्ण थे, वैसे ही मुसलमानों में मत थे। उनमें व्यर्थ संघर्ष होते रहते थे। हिन्दू गंगा और वाराणसी को पवित्र मानते थे तो मुसलमान मक्के और काबे को। हिन्दू यज्ञोपवीत धारण करने तथा मस्तक पर तिलक लगाने में धर्म मानते थे तो मुसलमान खतना (बाल्यकाल में पुरुष की मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग के चर्म-छेदन) में। यद्यपि राम और रहीम एक ही ईश्वर के नाम थे, तथापि इनको लेकर दो पृथक्-पृथक् मार्ग चला लिए गए थे। हिन्दू अपने धर्म-ग्रन्थों की शिक्षाओं की उपेक्षा करते थे, और मुसलमान अपने। दोनों ही धर्मों के अनुयायी विषयों में आसक्त हो गए थे। ब्राह्मण और मुल्ला का व्यर्थ विवाद कभी समाप्त ही नहीं होता था, और सत्य दोनों के समीप से निकल जाता था। इस प्रकार कभी किसी को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती थी।'[2]

भाई गुरदास का उस समय की स्थिति का वर्णन इस तथ्य पर बल देता है कि श्री गुरु नानक के आविर्भावकाल में धार्मिक जीवन में बहिरंगीय वस्तुओं की प्रधानता थी। अन्तरात्मा की अपेक्षा शरीर को प्रथमता दी जाने लगी थी। दिखाने का कार्य करना स्वयं साध्य समझा जाने लगा था। मनुष्यों के जीवनों

---

१. वार, १/१९।

२. भाई गुरदास : वार १/२१।

में अन्धविश्वास ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था, और उसी में विश्वास रूपी सत्य लुप्त हो गया था। धर्म के नाम पर उत्पन्न किए गए भेदों ने समाज को जीर्ण-शीर्ण कर दिया था। चाहे वह हिन्दू था अथवा मुसलमान, साधारण श्रेणी के मनुष्य के लिए धर्म बहिरंग प्रमाण में केन्द्रित था, और उसकी अभिव्यक्ति परम्परीय उपचारों तथा रीति-कर्मों में की जाती थी। हिन्दू लोग धर्म के विषय में प्रत्येक ब्राह्मण को प्रमाण मानते थे। धार्मिक बनने और कहलाने के लिए साधारण श्रेणी के मनुष्य को केवल उन कर्मों के करने की आवश्यकता थी, जो उसकी जाति के लिए विहित हो चुके थे। और, वह 'ननु' 'नच' किए बिना वैसा ही करता था। मुसलमान लोग धर्म के विषय में उलमाओं (मुसलमान विद्वानों) को प्रमाण मानते थे। उलमा ही उनके लिए धर्म-कर्मों की व्याख्या करते थे। उस युग में एशिया और यूरोप दोनों खण्डों में धर्म के क्षेत्र में एक समान अवस्था थी : औपचारिकता का प्राधान्य था, और वह औपचारिकता उत्पन्न हुई थी वर्ग-विशेष के व्यक्तियों को प्रमाण मानने से, कर्म-काण्ड को ही सब कुछ मान बैठने से तथा सदाचार की उपेक्षा करने से। समानता का एक अन्य पार्श्व भी था : दोनों खण्डों में इस औपचारिकता की आलोचना का, तथा आंतरिक, व्यक्तिगत धर्म का अन्वेषण आरम्भ हो गया था। जिस प्रकार पश्चिमीय देशों में Martin Luther और John Calvin के उपदेश ईसाई धर्म में नवीन प्राण-शक्ति का संचार कर रहे थे उसी प्रकार भारतवर्ष में श्री गुरु नानक की शिक्षाओं से पुनर्निर्माण की विचार-तरंग उत्पन्न हुई। सुधारयुग के इन, पूर्वीय और पश्चिमीय, महान् धर्मोद्धारकों के कार्य-क्षेत्र एक दूसरे से बहुत दूर थे, और इतिहास-साध्य कोई कड़ी उनको परस्पर सम्बद्ध नहीं करती थी, तथापि यूरोप के धर्म-सुधार आन्दोलन का स्मरण यहाँ इस हेतु किया गया है कि दोनों आन्दोलनों में एक ऐसा साम्य है जो हमारे प्रकरण को समझने में सहायता देता है : दोनों आन्दोलनों का जन्म एक ही प्रकार से हुआ, और दोनों के प्रेरक उद्देश्य भी एक-समान थे। दोनों आन्दोलनों में अन्धविश्वास तथा मूर्तिपूजा के, असत्य उपदेश के और कर्म-काण्ड के खण्डन का तत्त्व एक-समान है। एशिया और यूरोप में धर्मोद्धारकों ने धम को मनुष्य और परमात्मा के मध्य व्यक्तिगत सम्बन्ध घोषित किया। ईसवीय पन्द्रहवें शतक के अन्तिम और सोलहवें शतक के आरम्भिक भाग को मिलाने से जो समय बनता है उसे दार्शनिक Karl Jaspers ने मानवीय इतिहास में धुरी-युग का नाम दिया है। यह वह युग था जिसमें मनुष्य की आत्मा धर्म में जो कुछ वास्तविक है उसे, नए सिरे से, प्राप्त करने के लिए चंचल हो उठी थी। मार्ग-परिवर्तन के उस युग में श्री गुरु नानक ने भारतीयों को नवीन धर्म-मार्ग दिखलाया।

जितना महत्त्वपूर्ण नित्य-सत्य के सम्बन्ध में श्री गुरु नानक का साक्ष्य-प्रमाण है उतना ही महत्त्वपूर्ण उनका सुधार-कार्य है। गुरु जी से कुछ पूर्व काल में विद्यमान हिन्दू भक्त एवं सूफ़ी सन्त भक्ति और आचार की पवित्रता का आदर्श, निस्सन्देह घोषित कर चुके थे तथा हिन्दू और मुसलमान धर्मों के सम्मिलन का एवं पुनर्निर्माण का मार्ग निर्दिष्ट कर चुके थे। किन्तु इन प्रगतियों की जनन-शक्ति को व्यावहारिक रूप में समुपलब्ध करने के साधनों की सृष्टि श्री गुरु नानक ने ही की। अपने स्वतःप्रेरणा-सिद्ध ज्ञान के बल से गुरु जी ने आत्मा एवं शरीर की आवश्यकताओं को मिलाकर एक वस्तु बनाई और मानव के भाग्य की एक सुसंहतावयव तथा सुदृढ़ प्रतिमा उपस्थित की। उन्होंने अपने समय में प्रचलित धारणाओं एवं जीवन-विषयक विचारों की, अधिक प्रभावोत्पादक प्रकार से, पर्यालोचना की, और ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन पुरातन पद्धति का परित्याग करके उनकी प्रतिष्ठापित प्रत्यग्र पद्धति की दिशा में चल पड़ा था। यहाँ पर Joseph Davey Cunningham के विचार सुनिए :—

"ईसवीय सोलहवीं शतक के प्रारम्भ में हिन्दू मस्तिष्क गतिहीन अथवा प्रतीपगतिक नहीं था। इस पर मुसलमानी धर्म का कुछ प्रभाव पड़ चुका था उसके कारण यह कुछ परिवर्तित हो गया था और नवीन प्रगति के लिए चंचल हो रहा था। रामानन्द और गोरखनाथ 'धर्म के विषय में सब समान हैं।' यह उपदेश दे चुके थे और महाप्रभु चैतन्य यह तथ्य दोहरा चुके थे कि धर्म सब जातियों तथा वर्णों को एक समान कर देता है। कबीरदास मूर्ति-पूजा की निन्दा कर चुके थे और लोगों की भाषा में बोल करके उनका मन खींच चुके थे और वल्लभाचार्य उपदेश दे चुके थे कि गृहस्थ बनकर भी मनुष्य सक्रिय भक्ति कर सकता है। किन्तु प्रतीत होता है कि ये सदाशय और योग्य पुरुष जीवन को इतना शून्य और निस्सार मान चुके थे कि उन्होंने मनुष्य की सामाजिक अवस्था को सुधारने के कार्य को विचार में लाने के अयोग्य समझा। उनका विशेष लक्ष्य यही रहा कि मनुष्यों को पुरोहितों अथवा मूर्ति-पूजा और अनेक देवी-देवताओं की उपासना की अभद्रता से मुक्त किया जाए। उन्होंने सन्तोषशाली शान्तिवादियों की पवित्र सभाएँ बनाईं अथवा उन्होंने आगामी आनन्द की आशा में अपना समस्त ध्यान मरणोत्तर-प्राप्य जीवन पर केन्द्रित कर दिया; उन्होंने अपने साथियों को धार्मिक एवं सामाजिक शृंखलाओं को तोड़ फेंकने की और युगों के निकृष्ट भ्रष्टाचार से मुक्त हुए नए मनुष्य के रूप में ऊपर उठने की प्रेरणा बहुत कम की। उन्होंने भेदभाव की मूर्तियों को जितना परिपूर्ण बनाया, उतना एकजातिवाद का बीज-वपन नहीं किया। वे अपने सम्प्रदायों को जिस स्थान पर छोड़ गए थे वे आज भी वहीं खड़े हैं।

सुधार के सच्चे सिद्धान्तों को केवल गुरु नानक ने ही समझा और केवल उन्होंने ही वह चौड़ी नींव रखी जिसके आश्रय से गुरु गोविन्दसिंह अपने देशवासियों में एक नवीन जातीयता का उत्साह भर सके और इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दे सके कि जितना जाति में उतना ही धर्म में, जितना राजनीतिक अधिकारों में उतना ही धार्मिक आशाओं में, क्षुद्रतम स्थिति का मनुष्य, उच्चतम स्थिति के मनुष्य के समान है।"[1]

श्री गुरु नानक के धर्म की एक महती विशिष्टता यह है कि यह विधान-परायण है, निषेधपरायण नहीं। यह जगत् को सत् मानता है और मनुष्य के जीवन को उसके विविध रूपों में कण्ठ से लगाता है। विरक्ति को धर्म का अभाव माना गया है। गुरु जी के समय में धार्मिकता का लक्षण था संसार-त्याग; किन्तु गुरु जी ने इस लक्षण को स्वीकार नहीं किया और इस पर बल नहीं दिया। उन्होंने कहा-- "संसार सत् है, इसे इसी रूप में स्वीकार करो, प्रत्युत सहर्ष स्वीकार करो।" उन्होंने अपने एक 'शबद' में कहा है :—

"सचे तेरे खंड, सचे ब्रहमंड ॥
सचे तेरे लोग्र, सचे आकार ॥
सचे तेरे करणे, सरब वीचार ॥
सचा तेरा अमरु, सचा दीबाणु ॥
सचा तेरा हुकमु, सचा फुरमाणु ॥
सचा तेरा करमु, सचा नीसाणु ॥
सचे तुधु आखहि, लख करोड़ि ॥
सचै सभि ताणि, सचै सभि जोगि ॥
सची तेरी सिफति, सची सालाह ॥
सची तेरी कुदरति, सचे पातिसाह ॥"[2]

गुरु जी ने इस प्रकार घोषित किया कि संसार भगवान् की सृष्टि है; इसमें भगवान् का रूप और इस रचना का उद्देश्य दोनों प्रतिबिम्बित है। भौतिक सृष्टि की धनात्मक उपयोगिता प्रतिपादित करके वे परिवार, सामाजिक, आर्थिक

१. History of the Sikhs, 1849, pp. 39-40.
२. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा, पृष्ठ ४६३।
अमरु (फ़ारसी, अमर)=आदेश।
करमु (फ़ारसी, करम)=कृपा।
नीसाणु=चिन्ह, दया का चिन्ह।
—लाखों, करोड़ों तुझे सच्चा कहते हैं। तेरी उत्पन्न की हुई सभी शक्ति सत्य है।

संस्था इत्यादि सांसारिक वस्तुओं को धार्मिक चिन्तन के वृत्त में ले आए। मनुष्य का जीवन प्रत्येक व्यक्ति के, व्यक्तिगत रूप से, विकसित होने के निमित्त एक सुअवसर समझा गया और इसका उपाय बतलाया गया—पवित्राचरण तथा साथियों की सेवा, जिससे सामूहिक रूप में मनुष्यमात्र की अवस्था सुधर सके। श्री गुरु नानक ने कहा है—'शरीर स्थान है अर्थात् मन्दिर है, ईश्वर का निवास-स्थान है; इसमें ईश्वर ने अपना नित्य प्रकाश भर दिया है।'[१] मनुष्यों को लौकिक कार्यों से विरत करने का नाम धार्मिक जीवन नहीं है। सच्चा धार्मिक पुरुष संसार से पलायन नहीं करता है, प्रत्युत—

"रण महि लूझै मनूआ मारि॥
राति दिनंति रहै रंगि राता॥"[२]

स्वीकार-परक (Affirmative) घोषणा की इस मनोवृत्ति से उस काल की वास्तविक जीवन-स्थिति के लिए गम्भीर चिन्ता का जन्म हुआ। श्री गुरु नानक ने इसकी जो चिकित्सा की उससे प्रकट है कि वे इस स्थिति पर सम्यक् विचार करके इसके स्वरूप और निदान को पूर्णतया समझ चुके थे। उनकी रचनाओं में उस काल में प्रचलित व्यामोह और विषम परिस्थिति का भावुक चित्र अंकित है। यदि इस सामाजिक आलोचना को ही ध्यान में रख कर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करें तो भी वे अत्यन्त प्रसंगानुषंगिणी और अर्थवत्तापूर्ण प्रतीत होती हैं। नृपतियों की उद्दण्डता से लेकर समाज में परि-व्याप्त अन्यायों एवं असमानताओं तक सभी वस्तुएँ उनके ध्यान-क्षेत्र में हैं। उनके समय में प्रजा में जो पाप प्रसृत थे उनमें से बहुतों का कारण उन्होंने निस्संकोचतया प्रजाधीश को घोषित किया और उसकी कटु आलोचना की। उन्होंने उच्छृङ्खल शासन के कारण प्रारब्ध सदाचार-पतन को निरावरण किया। उन्होंने दिखलाया किस प्रकार दम्भ, धर्म-ध्वजता तथा अन्धविश्वास धर्म के नाम से लोक-प्रचलित थे, किस प्रकार जनता ने वेष और भाषा में शासकों का अनुकरण प्रारम्भ कर दिया था, किस प्रकार सामान्य जीवन स्वस्थ एवं निर्माणकारी विचार-तरंगों से वंचित किया जा रहा था। श्री गुरु नानक की दृष्टि में ब्राह्मण और मुल्ला जिनका शुद्धाचार केवल एक निःसत्व, निर्जीव सामान्य क्रिया-चक्र के रूप में अवशिष्ट था, अन्यायशील क़ाजी तथा अन्य शासनाधिकारी, सारहीन प्रथाएँ एवं रीतियाँ तथा जाति इत्यादि की परिपाटी, उस समय में प्रवृत्त ह्रास के सूचक थे और ये सब गुरु जी के व्यंग्य बाणों के

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, मलार, पृष्ठ १२५६।
२. वही, रामकली, पृष्ठ ९३१।

लक्ष्य बने। उन्होंने मूर्ति-पूजा, बहु-देवोपासना और इनके साथ संयुक्त पौरोहित्य को स्वीकार नहीं किया। उनके 'शबदों' में हिन्दू और मुसलमान दोनों के अन्धविश्वासों की तथा उनकी धार्मिक क्रियाओं में प्रधानीभूत बाह्याचार की कुरूपता स्पष्ट की गई है। बाबर की सेना ने भारत के ऊपर जो आक्रमण किया उसने गुरु जी के मन में चिन्ता उत्पन्न कर दी। बाबर के आक्रमण का प्रतिरोध करने में भारत के शासकों ने जो भीरुता दिखलाई उससे गुरु जी का हृदय अत्यन्त उद्विग्न हो गया। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो 'शबद' कहे हैं अभिव्यक्ति की शक्ति सवं सदाचारिक प्रखरता की दृष्टि से उनकी अतिशायिनी कोई रचना नहीं है। गुरु जी के काव्य का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक अर्थ है। उस काल के किसी साहित्य में मुसलमान शासनकालीन भारत की समस्याओं को इतनी स्पष्टता से नहीं समझा गया है, अथवा न कहीं इससे बलवत्तर प्रेरणा के स्वरों में उनका वर्णन किया गया है।

उस काल की अवस्था के विषय में, सामान्य रूप से, गुरु जी कहते हैं :—

"कलि काती, राजे कासाई, धरमु पंख करि उडरिहा ॥
कूड़ु अमावस, सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ ॥"[1]

पुन:—

"लबु पापु दुइ राजा महता, कूड़ु होआ सिकदारु ॥
कामु नेबु सदि पुछिए बहि बहि करे बीचारु ॥
अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु ॥
गिआनी नचहि, वाजे वावहि, रूप करहि सीगारु ॥
ऊचे कूकहि, वादा गावहि, जोधा का वीचारु ॥
मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु ॥
धरमी धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआरु ॥
जती सदावहि जुगति न जाणहि छडि बहहि घरबारु ॥

× × ×

अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ॥
छोडीले पाखंडा ॥

× × ×

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, माझ, पृष्ठ १४५।

तात्पर्य—यह कलि-काल छुरी है; राजा वधिक हैं; धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। असत्यरूपी अमावस्या का अन्धकार छाया हुआ है। सत्यरूपी चन्द्रमा दिखलाई नहीं पड़ता है। पता नहीं उसका उदय कहाँ हुआ ?

मानस खाणे करहि निवाज ।।
छुरी वगाइनि तिन, गली ताग ।।
तिन घरि ब्रहमण पूरहि नाद ।।

× × ×

परम धरम का डेरा दूरि ।।
नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि ।।
मथैं टिका तेड़ि धोती कखाई ।।
हथि छुरी जगत कासाई ।।
नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ।।"[1]

असंतोष की यह वेदना जिससे गुरु जी ने उस काल की स्थिति को देखा उनके कई 'शब्दों' में व्याप्त है। इसने उनके क्रूर एवं निर्दय धरापतियों, चाटुकार एवं भ्रष्ट अमात्यों तथा अधिकारियों, पाखण्डी पुरोहितों तथा धार्मिक सम्प्रदायों के अग्रणियों के उल्लेखों में प्रतिपुनः अभिव्यक्ति प्राप्त की है। गुरु जी ने उन साधुओं को भी क्षमा नहीं किया जो संसार से विरक्त हो जाते हैं, जो

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा, ४६८-७२।

तात्पर्य—पाप राजा, लोभ मन्त्री, असत्य उनका प्रमुख कार्यकर्ता है। काम उनका सार्वदिक परामर्शदाता है जिससे वे पुनः-पुनः विचार करने के लिए पूछते रहते हैं। प्रजा प्रज्ञाहीन और ज्ञानविहीन है तथा सहज स्वभाव स्वामी की भक्ति में रत रहती है, पण्डित-पुरोहित नृत्य करते हैं, बाजे बजाते हैं, नाना रूप का शृंगार करते हैं, अत्युच्च स्वर से वीर-स्तुति के गीत गाते हैं। मूर्ख लोग विद्वान् माने जाते हैं; पाखण्ड बुद्धि-कौशल समझा जाता है। सब लोग धन-संचय से प्रेम करते हैं। धर्म-प्रिय लोग धर्म करते हैं, परन्तु जब मोक्षद्वार माँगते हैं तब किये हुए धर्म को नष्ट कर बैठते हैं। लोग अपने आपको यति कहलाते हैं किन्तु यम-नियम नहीं जानते हैं। घर-द्वार छोड़कर बैठ जाते हैं। कई हिन्दू घर के अन्दर बैठकर पूजा करते हैं, परन्तु जनता के समक्ष कुरान पढ़ते हैं और उन नियमों पर चलते हैं जो मुसलमानों को अच्छे लगते हैं। अरे भाइयो! इन पाखण्डों को छोड़ो।

× × ×

मनुष्य-भक्षी लोग नमाज़ पढ़ते हैं। जिनके गले में यज्ञोपवीत है वे छूरी चलाते हैं। उनके घर में ब्राह्मण शंख-ध्वनि करते हैं।

× × ×

लोक-लज्जा और धर्म दूर भाग गए हैं। नानक! सर्वत्र मिथ्याचार व्याप्त है। जो मस्तक पर तिलक लगाते हैं और धोती टेढ़ी करके कक्ष में दबाते हैं वे ही हाथ में छुरी रखते हैं, वे जगत् भर के कसाई हैं, वे ही मुसलमान शासकों की दृष्टि में प्रामाणिक पुरुष बनने के लिये नीले वस्त्र धारण करते हैं।

जगत् में विषाद ही विषाद देखते हैं, और जो समाज पर भार बने रहते हैं। यद्यपि गुरु जी का स्वर प्रायः कुपित कम, विनोदी अधिक है तथापि उनका प्रयोजन सर्वदा स्पष्ट है। उनके मन में साधारण जनता के प्रति तीव्र समवेदना, और आत्मीयता की प्रबल अनुभूति थी।

उन्होंने कहा है—'मैं छोटे से छोटा हूँ, सबसे छोटा हूँ। मैं उनके साथ हूँ, और उनका हूँ। मैं बड़ों का स्पर्धी नहीं हूँ।'[1] इससे आगे उन्होंने घोषणा की—'जहाँ दीनों का मान होगा वहाँ परमात्मा की कृपा होगी।' लोगों पर लगाया गया किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध गुरु जी के लिए पीडाकारी था और उनकी समवेदना को उत्तेजित करता था। उन्होंने प्रत्येक प्रकार के दमन का प्रतिवाद किया। जैसा उद्वेगकारी काण्ड सैदपुर में हुआ वैसा कोई भी स्पष्ट काण्ड अवश्य ही उनके लिए महा-मर्मस्पृक् सिद्ध होता होगा। इतना होने पर भी, उनके मन में होनेवाली इसकी प्रतिक्रिया में कतिपय व्यक्तिगत तत्त्व थे। उन्होंने उस दुर्भागी नगर के निवासियों की विपत्तियाँ अपनी मान लीं और उस अशुभ क्षण के कष्ट तथा शोक को अपने हृदय में अनुभव किया। इसी गम्भीर समवेदना से वह काव्य निस्सृत हुआ जो प्रखरतया मानवीय है, विशद और साभिप्राय है, तथा जो दुर्भाग्य के कलाकारोचित अवबोध से पूर्ण है। किन्तु उस काव्य में जो समवेदनामयी अलंकार-योजना है वह वस्तुओं को प्रत्यक्षतया देखने वाली संवित् द्वारा बोधित की गई थी। सदाचारिक मान-दण्डों की अवनति अनिवार्यतया अव्यवस्था-विधायिनी होती है। सदाचारहीन राजनयिक संस्था में अपने विलयन के कीटाणु विद्यान रहते हैं। शक्ति का लोभ मनुष्यों को वियोजित कर देता है, और फलतः प्रचण्ड-काण्ड निर्बाध विस्तार प्राप्त करने लग जाते हैं। 'जादू-टोने का मन्त्र पढ़ कर इस अवस्था के नाश होने की इच्छा की, और यह नष्ट हो गई।' यह सम्भव नहीं। गुरु जी ने भगवान् में और उसके न्याय में विश्वास प्रतिपुनः प्रकट किया है। परन्तु उन्होंने लोगों के कष्टों को इतनी तीव्रता से अनुभव किया था कि वे उसका साक्रन्दन निवेदन किए बिना नहीं रह सके। उन्होंने कहा—'प्रभो! इतने कष्टों, इतनी हत्याओं, इतने पीडामय क्रन्दन को देखकर तुझे दया नहीं आई? जगत्-स्रष्टा! तू सबके लिए एक-समान है!' गुरु जी के लिए 'लोगों' का अभिप्राय 'भारतीय लोग' था। उन लोगों में हिन्दू और मुसलमान का, उच्चवर्ण और नीच वर्ण का, सैनिक और असैनिक का, पुरुष और स्त्री का विवेक नहीं था।

निस्सन्देह उस काल में हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्मिलन के लिए कुछ प्रयत्न किए गए, तथापि दोनों धर्मों के अनुयायियों में पार्थक्य की भावना दृढ

---

१. श्री गुरुग्रन्थ साहिब, सिरी रागु, पृष्ठ १५।

रही। श्री गुरु नानक की दृष्टि ने इससे भी दूर तक स्पष्टतया देखा, और अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग में ही घोषणा के शब्दों में कहा—'न कोई हिन्दू है, और न कोई मुसलमान है।' उनका समस्त उपदेश एवं कार्य इसी घोषणा को पुष्ट करता है। श्री गुरु नानक के समय में भारत में जो स्थिति थी उसको उन्होंने समष्टि-रूप में लेकर, सूक्ष्मेक्षिकापूर्वक, उसके गुणावगुण पर विचार किया; वे बद्ध-मूल समस्याओं में से कतिपय को सुलझाने के लिए तथा त्रुटियों में से कतिपय के निवारण के लिए, सामाजिक स्थूणाओं का आकृति-परिवर्तन करने के लिए और समाज-नव-निर्माण में नूतन तत्त्वों का समावेश करने के लिए, अर्थक्रियाकारिणी रीति से, कार्य-व्यस्त हो गए। और, इस कार्य में वे समाज-सुधारक हिन्दू-भक्तों और मुसलमान सूफ़ियों के संकीर्ण क्षेत्र की सीमाओं से बाहर निकल कर बहुत आगे बढ़ गए।

श्री गुरु नानक ने अपनी सुधार-परियोजना में समानता तथा सदाचार के महत्त्व को प्राथम्य प्रदान किया। जिस समाज में गुरु जी रहते थे वह नाना प्रकार के विभागों से खंड-खंड हो चुका था। परस्पर विरोधी धार्मिक जातियाँ थीं, जिनमें प्रत्येक के सम्प्रदाय तथा वर्ण थे। ऐसी श्रेणियाँ थीं जिनको सदा दास रहना पड़ता था। हिन्दू-मुसलमान आदि समस्त जनता की रुचि के अनुकूल, सर्व-साधारण, कोई तत्त्व नहीं था। श्री गुरु नानक ने सुधार कार्य इस उपदेश के साथ प्रारम्भ किया कि एक, नित्य, और अनन्त परमात्मा सब का स्रष्टा है। उस (परमात्मा) की दृष्टि में समस्त प्राणी समान हैं, और उनमें भेद करना पाप है। 'हिन्दू' और 'मुसलमान' नाम गुरु जी के लिए निरर्थक थे। उन्होंने लोगों को इन भेदों से ऊपर उठ कर संसार को देखने की रीति समझाई। उनहोंने कहा—'न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान है। समस्त मानव जाति परमात्मा की ही सृष्टि है।' उन्होंने फिर कहा—'दो मार्ग बने हैं। परन्तु क्या एक ही परमात्मा हिन्दू और मुसलमान दोनों का स्वामी नहीं है? जाति मिथ्या है, और मिथ्या है उपाधि-कीर्ति। सब एक परमात्मा के आश्रित हैं।'[१] 'मनुष्यों को उनके गुणों से पहचानो, उनकी जाति न पूछो। आगामी लोक में कोई जाति नहीं है।'[२] इस जीवन के पश्चात् न जाति स्वीकार की जाएगी, और न समाज-गत पद। केवल वे ही सत् पुरुष, घोषित किए जाएँगे, जिनका गुण आदर-मान के योग्य समझा जाएगा।'[३] 'न जाति पूछी जाएगी, न कुल—तू

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरी, पृष्ठ ८३।

२. वही; आसा, पृष्ठ ३४६।

३. वही, आसा, पृष्ठ ४६६।

जो कर्म करेगा उन्हीं के अनुसार तेरी जाति और तेरा पद होगा।"[1]

गुरु जी को नारी जाति की हीन अवस्था का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने नारी के लिए अनेक निर्भय और सहानुभूतिमय शब्द कहे हैं, और अपने शिष्य-समाज में नारी को पुरुष के आसन के साथ आसन दिया है। वे एक 'शबद' में कहते हैं :—

"भंडी जंमीऐ भंडी निमीए भंडी मंगणु वीआहु ॥
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु ॥
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु ॥
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान ॥
भंडहु ही भंडु ऊपजै भंडै बाझु न कोइ ॥
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ ॥"[2]

ऊपर के अवतरण में, अंतिम दो पंक्तियों में गुरु जी का यह विश्वास प्रकट किया गया है कि परमात्मा स्वयं-भूत है और जीवन-मरण के चक्र से बाहर है। गुरु जी ने अपने इस विश्वास को अपने 'शबदों' में पुनः-पुनः व्यक्त किया है।

गुरु जी ने गृह-त्याग की अवस्था की अवज्ञा की है, और इस तथ्य पर बल दिया है कि 'मुक्ति गृहस्थ जीवन में—गृहस्थ जीवन के हास्य-विनोद में, उत्तमोत्तम पदार्थों और खाद्य-पेय में—ही प्राप्त की जा सकती है।'[3] उन्होंने पारिवारिक और विवाहित जीवन का दृढ़ता से समर्थन किया है। उनका उपदेश है कि घर में ही मनुष्य अपने भाग्य का पूर्ण भोक्ता हो सकता है। गृहस्थ होकर मनुष्य कैसा आचरण करे? इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने पुनः-पुनः कमल के उदाहरण से दिया है : जैसे कमल-कुसुम जलाशय में रह कर भी उसकी मलिनता से मलिन नहीं होता है, वैसे ही 'पत्नी और संतान के मध्य रह कर मनुष्य मुक्ति

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, परभाती पृष्ठ १३३०।

२. वही, आसा पृष्ठ ४७३।

तात्पर्य—नारी से मनुष्य का जन्म होता है, उसी से उसकी सगाई होती है और वही विवाह के लिए माँगी जाती है। नारी ही मित्र है। नारी से ही सभ्यता का मार्ग चल रहा है। एक नारी की मृत्यु पर अन्य नारी का अन्वेषण किया जाता है। नारी से ही सब व्यवस्था स्वस्थ रहती है। जिससे राजाओं तक का जन्म होता है उसको अधम कैसे कहा जा सकता है! नारी से ही नारी का जन्म होता है। नारी के बिना कुछ नहीं। नानक! एक सत्य स्वरूप परमात्मा ही नारी के प्रभाव से बाहर है।

३. वही, ५, गूजरी, पृष्ठ ५२२।

प्राप्त कर सकता है।'[1] 'इस लोक में सेवामय जीवन व्यतीत करके ही मनुष्य परलोक में आसन का अधिकारी होगा।'[2] 'सेवा के बिना भगवान् का प्रेम असम्भव है।'[3]

वास्तविक महत्त्व की वस्तुएँ तीन हैं-- सेवा, भक्ति और प्रेम। गुरु जी ने कहा है—'जो भगवान् के द्वार के दर्शनों का अभिलाषी है वह न मुक्ति की चिन्ता करता है, और न स्वर्ग की।'[4] गुरु जी ने आचार में परिणत गुण को पवित्र जीवन का आवश्यक अंग कहा है। उन्होंने कहा है—'सत्य प्रत्येक वस्तु से उत्तम है, किन्तु सत्य से उत्तम सत्याचार है।'[5] सत्य, प्रेम और सेवा के जीवन का समकक्ष, इन का स्थानापन्न होने का अधिकारी, अन्य कुछ नहीं। बाह्याचार, मन्त्र-तन्त्र, मूर्ति-पूजा, गुह्य-धर्माचार, दान, तीर्थ-यात्राएँ सब निष्फल हैं। अधर्म से अर्जित धन में से दान देने की आलोचना इस प्रकार की गई है—'यदि कोई चोर किसी घर में चोरी करता है और चोरी के द्रव्य में से पितरों के नाम पर दान देता है........पितर भी चोर समझे जाएँगे और मध्यगामी पुरुष के हाथ काट दिए जाएँगे। कारण? यही न्याय है।'[6] इसी प्रकार संन्यास, व्रत-साधन, तपश्चर्या का भी निराकरण किया गया है। कहा गया है—'कुछ लोग पाषाण-पूजा करते हैं, कुछ तीर्थ यात्रा करते हैं, कुछ वन में जा कर रहते हैं। वे उदासीन हुए व्यर्थ भ्रम में पड़े घूमते हैं। जब तक मन का मल न छूट जाए तब तक कोई कैसे शुद्ध हो सकता है! जो सत्य की उपार्जना कर लेता है वह मान प्राप्त करता है।'[7] 'परन्तु केवल विहित कर्मों के करने से ही सत्य की प्राप्ति नहीं होती है।'[8] 'यदि मनुष्य अहंकार का नाश नहीं करेगा तो तीर्थ-स्नान से लाभ नहीं होगा।'[9] 'न ही मस्तक पर तिलक और कण्ठ में यज्ञोपवीत लाभदायक होगा।'[10] श्रद्धा के बिना पूजा, सत्य के बिना यम-

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, धनासरी, पृष्ठ ६६१।
२. वही, सिरी रागु, पृष्ठ २६।
३. वही, जपुजी, पृष्ठ ४।
४. वही, आसा, पृष्ठ ३६०।
५. वही, सिरी, पृष्ठ ६२।
६. वही, आसा, पृष्ठ ४७२।
७. "पूजि सिला, तीरथ, बनवासा॥ भरमत डोलत भए उदासा॥
मन मैलै, सूचा किउ होइ॥ साचि मिलै, पावै पति सोइ॥"
—वही, धनासरी, पृष्ठ ६८६।
८. वही, आसा, पृष्ठ ३५५।
९. वही, सिरी, पृष्ठ ६१।
१०. वही, आसा, पृष्ठ ४६७।

नियम और आत्म-संयम के बिना यज्ञोपवीत व्यर्थ है। आप नहाएँ-धोएँ और अपनी जाति का टीका माथे पर लगाएँ, परन्तु सदाचार के बिना शुद्धि नहीं मिलेगी।"[1]

ये शब्द तो ब्राह्मणों को सम्बोधन करके कहे गए हैं। मुसलमानों को सम्बोधन करके गुरु जी ने कहा है—'मुसलमान कहलाना सरल नहीं है। यदि कोई है तो कहलाए। उसे पहले अपने धर्म के सिद्धान्तों को अपने मन में बसाना चाहिए, और अभिमान से पूर्णतया मुक्त होना चाहिए। मुसलमान वह होगा जो इस्लाम के प्रवर्तक के पथ का पथिक होगा, जो जीवन-मरण की चिन्ता मिटा देगा, जो परमात्मा की इच्छा को सर्वोपरि स्वीकार करेगा, जो जगत्-स्रष्टा में विश्वास रखेगा, और जो अपने आपको भगवान् के अर्पण कर देगा। जब उसके मन में सबके लिए सद् भावना होगी, नानक! तब वह मुसलमान कह लाएगा।'[2] योगियों को सम्बोधन करके गुरु जी ने कहा—'धर्म न कन्था धारण करने में है, न दंड धारण करने में, और न शरीर पर भस्म का लेप करने में। धर्म कान छिदवा कर बाले पहिनने में नहीं है, न सिर मुंडवाने में, और न सिंगी बजाने में। धर्म का रहस्य है संसार के मोहक पदार्थों के मध्य निर्लेप होकर रहना। धर्म कोरे शब्दों में नहीं है। जो समस्त मनुष्यों को समान समझता है वह धर्मात्मा है। धर्म क़ब्रों और श्मशानों की ओर फिरते रहने में नहीं है, और न ध्यानासन मार कर बैठने में है। धर्म घर से बाहर घूमने में नहीं है, और न तीर्थों में स्नान करने में है। धर्म का रहस्य है संसार के मोहक पदार्थों के मध्य निर्लेप हो कर रहना।'[3] इस प्रकार श्री गुरु नानक ने वैष्णवों, शैवों, तान्त्रिकों, तपस्वियों, संन्यासियों, दर्वेशों, भक्तों, सूफ़ियों, पण्डितों, मुल्लाओं, जैनों तथा सिद्धों को सम्बोधन करके कहा। उन्हें सम्बोधित करके गुरु जी केवल अपने काल की स्थिति से बातें नहीं कर रहे थे; वे प्रत्येक युग के मनुष्यों से बातें कर रहे थे। उनका उद्देश्य किसी सम्प्रदाय अथवा मत की आलोचना नहीं था; वे लोगों का ध्यान उन भ्रान्तियों की ओर आकृष्ट करना चाहते थे जो मानवता की मौलिक अखंडता को विरूप कर रहीं थीं। आलोचनाभास इस प्रेरणा के आदि क्षण से चरम क्षण तक वे लोगों से यही कहते रहे कि कर्म-काण्ड से आगे पैर बढ़ाओ, जिससे आप सत्यतापूर्ण अर्थात् सदाचारिक आचरण के आधार और प्रयोजन का पता लगा सकें। गुरु जी का विश्वास था कि 'केवल औपचारिक कर्मों के अनुष्ठान से कोई स्वर्ग

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, रामकली, पृष्ठ ९०३।
२. वही, माझ, पृष्ठ १४१।
३. वही, सूही, पृष्ठ ७३०।

नहीं प्राप्त कर सका। मनुष्य सत्याचरण से ही मोक्ष प्राप्त करता है।"

गुरु जी के समय में जादू-टोने तथा अन्धविश्वास के कार्य दूर-दूर तक लोक-प्रचलित थे। उन्होंने उन सबकी व्यर्थता पर बल दिया। गुरु जी का ध्यान धर्म के सत्य स्वरूप, तथा शुद्ध धर्माचरण, को लोगों के मनों में प्रतिष्ठित करने की ओर था; अतएव उन्होंने उनको उस काल में प्रचलित भय के भाव से मुक्त करने का यत्न किया। वे राजनयिक तथा पुरोहितवर्गीय अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले दमन और सामाजिक विषमता के विषय में कह ही चुके थे। उन्होंने मानसिक दासता के हानिकारक प्रभावों को भी प्रत्यक्षतया देखा, और चाहा कि लोग बौद्धिक जाड्य और दुर्बल विश्वासों के जाल से बाहर निकल आएँ। उन्होंने उनको साधुओं तथा फ़कीरों के प्रभाव से मुक्त होने की प्रेरणा की। गुरु जी ने लोगों से कहा—'जो लोग अपने आपको गुरु और पीर कहते हैं परन्तु भीख माँगते फिरते हैं उनका आदर न करो। जो लोग अपने परिश्रम से अर्जित धन से निर्वाह करते हैं और अपने परिश्रम के फल को दूसरों में भी बाँटते हैं उन्होंने सत्य मार्ग पा लिया है।'[1] लोग जादू और मन्त्रों में विश्वास रखते थे, उनके मन में यह भी तर्कहीन विचार था कि वर्ग विशेष के मनुष्य के स्पर्श से वर्गान्तर का मनुष्य अशुद्ध हो जाता है, और वे यह भी मानते थे कि प्रसव इत्यादि से अशुचिता उत्पन्न हो जाती है। गुरु जी ने इन सब बातों को हेय कहा। उन्होंने कहा कि सब मनुष्य समान हैं, अतएव किसी जाति विशेष में उत्पन्न मनुष्य के स्पर्श से अन्य जाति-विशेष के मनुष्य के अशुद्ध हो जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है। उनका कथन है :—

"जेकरि सूतकु मंनीऐ सभतै सूतकु होइ॥
गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ॥
जेते दाणे अंन के, जीआ बाझु न कोइ॥
पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभ कोइ॥
सूतकु किउ करि रखीऐ सूतकु पवै रसोइ॥
नानक सूतकु एव न उतरै, गिआनु उतारे धोइ॥
मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु॥
अंखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ पर धन रूपु॥
कंनि सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि॥
× × × ×
सभो सूतकु भरमु है × ×

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, माझ, पृष्ठ १४१।
२. वही, सारंग, पृष्ठ १२४५।

जंमणु मरणा हुकमु है, भाणै आवै जाइ ॥
खाणा पीणा पवित्र है, दितोनु रिजकु संबाहि ॥
नानक जिनी गुरमुखि बुझिआ तिन्हा सूतकु नाहि ॥"[1]

जन्म के समान मृत्यु भी ईश्वरेच्छा से होती है। अतएव वह भय की वस्तु नहीं है। गुरु जी ने कहा 'मृत्यु वीर पुरुष के विशेषाधिकार की वस्तु है।'[2] कातरता तथा चिन्ताकुलता के उस युग में ऐसी भाषा का प्रयोग अद्वितीय है। गुरु जी का तात्पर्य यह है कि मृत्यु को वह अवर्णनीय भयंकर वस्तु नहीं समझना चाहिए जो जीवन के प्रत्येक क्षण को पंगु बनाती है, प्रत्युत उसको वह प्रवेश-द्वार मानना चाहिए जिससे मनुष्य परमात्मा की बुद्धिमत्ता और प्रेम के नवीन राज्य में प्रवेश करते हैं। गुरु जी की रचनाओं में से ऐसे अनेक 'शबद' यहाँ दिए जा सकते हैं जो भावार्थ की दृष्टि से रहस्य-मार्गी कविता की कई श्रेणियों में आते हैं, यद्यपि उन 'शबदों' में भी गुरु जी की प्रातिभिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय अद्वितीय विशिष्टता पर अनायास ही अङ्गुली रखी जासकती है। परन्तु, उनके अतिरिक्त, ऐसे 'शबद' भी बहुत हैं, जो शैली एवं स्वरूप की दृष्टि से अनुपम हैं। गुरु जी हमारे लिए जो विचार-दाय छोड़ गए हैं उसके वास्तविक स्वरूप के अवबोध एवं विश्लेषण के लिए उनकी रजनाओं के उन स्थलों पर विशेष रूप से दृष्टिपात करना होगा जिनमें सामान्य सरणि का त्याग किया गया है। उनकी उक्तियों में प्रतिवाद का जो गुंजन-स्वर है, और उनके 'शबदों' में उनके मन का सामाजिक समस्याओं का जो संवेदन प्रतिबिम्बित है उन दोनों का उल्लेख अभी ऊपर हो चुका है। ये दोनों ऐसी विशेषताएँ हैं जो सिद्ध करती हैं कि गुरु जी अपने समय से बहुत आगे बढ़े हुए थे। वे एक अवनतिशील-युग के दोषों की निन्दा करके ही चुप नहीं हो गए। उन्होंने उस समय में प्रचलित भ्रान्तियों तथा त्रुटियों को

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा, पृष्ठ ४७२-७३।

तात्पर्य—यदि सूतक माना जाए तो सर्वत्र सूतक होगा। गोमय के उपलों में और लकड़ी में कीड़ा होता है। अन्न के जितने दाने हैं, कीड़े से शून्य कोई नहीं है। मनुष्य के जीवन का प्रथम आधार जल है, जिससे सब कोई हार गए हैं। फिर सूतक कैसे माना जा सकता है! इस प्रकार तो सूतक रसोई में भी जा पड़ेगा। नानक! सूतक यूँ नहीं उतरता है। सूतक को तो ज्ञान ही धोकर उतारता है। मन का सूतक लोभ है, जिह्वा का मिथ्याभाषण, आँख का परनारी तथा परधन के रूप को देखना, कान का सूतक अविश्वास से अन्य की बात सुनना।.........वास्तव में भ्रम ही सब सूतक है। उत्पत्ति और मृत्यु तो भगवान् के आदेश से होते हैं। भगवान् की इच्छा से प्राणी इस लोक में आते हैं और यहाँ से जाते हैं। परमात्मा ने जो दिया है वह सब खाना-पीना पवित्र है। नानक! जो भगवान् की भक्ति में डूबे रहते हैं उनको सूतक नहीं लगता है।

२. वही, वडहंस, पृष्ठ ५७९।

केवल अनुभव ही नहीं किया, प्रत्युत समाज-संशोधन के कार्यों का प्रारम्भ भी कर दिया। यदि उन्होंने कहा कि सब मनुष्य समान हैं तो 'गुरु का लंगर' (सर्व-जातीय भोजन-गृह) भी स्थापित किया, जहाँ जाति-भेद भूलकर एक साथ बैठ कर भोजन करने की प्रथा द्वारा बन्धु-भाव और समानता-भाव पर बल दिया जाता था। उनके उपदेशों के प्रभाव से स्थापित होने वाली 'संगतों' (धर्मसभाओं) की सदस्यता के लिए न पुरुष और स्त्री का भेद माना जाता था, तथा न जाति और धर्म का। लोगों में मानसिक आलस्य, 'जो होना है वह तो होगा ही, अतः सब ठीक है।' यह विचार, तथा कष्ट-सहन में सन्तोष की भावना से उत्थित आत्म-गर्हा का भाव घर कर गया था। इन सबसे ऊपर उठने के लिए गुरु जी ने उन्हें उपदेश दिया कि एक निराकार परमात्मा में विश्वास रखो, और इस विश्वास को पवित्र एवं साहसी जीवन का आधार बनाओ। साथ ही गुरु जी ने यह भी कहा कि 'सेवा' अर्थात् सक्रिय प्रेम और परिचर्या को उच्चतम आदर्श समझो। ब्रह्म-जिज्ञासु को विरक्त नहीं होना चाहिए, साधारण जीवन के दैनिक कार्य करने चाहिएँ, अपने सम्बन्धियों तथा समाज के प्रति उसके जो कर्तव्य हैं कभी उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, और अपने समाज के हितों की साधना में उसे उत्साही सहकारी होना चाहिए। श्री गुरु नानक के उपदेश का सार इस सूत्र वाक्य में निहित है— किरत करनी, वंड छकणा ते नाम जपणा' अर्थात् परिश्रम के द्वारा धर्म-वृत्ति से जीविकोपार्जन, उपार्जित द्रव्य में अन्यों को भाग-हारी बनाना, भगवन्नाम का जप और ध्यान। गुरु जी के जीवनकाल में ही उनके जिस भक्त-समाज का संघटन हो गया था उसके जीवन का कर्म-परक सिद्धान्त इसी सूत्र-वाक्य से परिकल्पित हुआ था।

श्री गुरु नानक का समस्त उपदेश छन्दोमयी वाणी में है। उनकी प्रतिभा ने नितरां अभिराम अभिव्यक्ति काव्योचित मानसिक दशा में प्राप्त की। उनकी मनो-दशा के घटकथे—'अनन्त' के प्रति उत्कट अभिलाष का उबाल, परमात्मा की सृष्टि की सुन्दरता तथा विशालता पर हर्ष एवं विस्मय, अपने संगियों के लिए मृदु स्नेह, और उनके समय में प्रजा पर होने वाले अत्याचारों के सम्बन्ध में सदा-शयताप्रेरित विमर्श और चिन्तन। इस मनोदशा की धारा एवं गम्भीरता की यथावत् अभिव्यक्ति अन्य शैली में हो ही नहीं सकती थी। उनकी रचनाएँ दूराव-गाहिनी कल्पना-शक्ति तथा सूक्ष्म सौन्दर्य-संवेदन-शीलता की व्यंजिका हैं। उनके 'शबदों' की भाषा पंजाबी है— वह पंजाबी भाषा जिसे वे सब हिन्दू मुसलमान बोलते थे, जिनके मध्य गुरु जी का जन्म हुआ था। पंजाबी भाषा के प्रयोग का भी एक विशेष महत्त्व है। इतनी उत्तम कोटि के काव्य के लिए इतने विस्तार और आनुरूप्य से पंजाबी भाषा का प्रयोग इससे पूर्व कभी नहीं हुआ था। वस्तुतः उस समय भारत की प्रादेशिक भाषाओं का उत्थान हो रहा था और गुरु जी

द्वारा अपने 'शबदों' के लिए पंजाबी भाषा का अंगीकरण उसी स्थिति का एक निदर्शन है। गुरु जी के हाथों पंजाबी भाषा का समादर इस भाषा की उन्नति के लिए आश्चर्यजनक सिद्ध हुआ। गुरु जी के हाथों में पहुँचकर यह भाषा भाषित भाषा की स्थिति से ऊपर उठकर अनुभूतियों एवं विचारों के प्रकाशन का तीक्ष्ण-सूक्ष्म माध्यम बन गई। इस भाषा ने गुरु जी से जो सर्जन-शक्ति प्राप्त की वह इसकी भावी अभिवृद्धि की सूचना देती है, और वही शक्ति इसकी उन्नति के लिए आज तक प्राणभूत प्रभाव का स्रोत है।

श्री गुरु नानक ने इस भाषा में मृदुलता एवं नूतनता आपादित की। उनके समय में पंजाब में साधारण जनता इस भाषा को जिस रूप में बोलती थी वह गुरु जी की शब्दावली का मूल-बीज है। काव्यीय विशद-चित्रों के निर्माण की अपनी शक्ति से, अपने प्रबल लोकावेक्षण से, यात्राओं के तथा विविध प्रकार के लोगों के साथ सम्पर्क के अपने विस्तृत अनुभव से उन्होंने इस बीज-स्थानी भाषा में नवीन तत्वों की वृद्धि की। उन्होंने सन्तों से प्राप्त औपनिषदिक शब्दावली का, तथा योगियों, सिद्धों और सूफ़ियों की भाषा का स्वतन्त्रता से प्रयोग किया। जब उनके ध्यान में मुसलमान श्रोता था तब उनकी प्रवृत्ति फ़ारसी तथा अरबी की पदावली के प्रयोग की ओर अधिक रही। उनके कतिपय 'शबद' अपभ्रंश 'हिन्दी' में हैं, और न्यूनातिन्यून दो 'शबदों' में संस्कृत पदों का प्राधान्य है। तथापि, उनकी छन्दोमयी वाणी के शरीर के अंगों का निर्माण सामान्यतः विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध तत्त्वों के सम्मिश्रण से हुआ है, और यह निर्माण समष्टितया अभिरूप एवं समञ्जस है। उनके काव्य का महत्तम अनन्य-साधारण वैशिष्ट्य है प्रतीकों की पेशल परिक्लृप्ति तथा पंजाबी भाषा की पूर्णतया सुसंघटित शब्दावली। गुरु जी ने काव्यालंकारों की सामग्री का संचय पंजाबी जनता के जीवन के नाना पार्श्वों से किया, जिनमें कृषि, वाणिज्य और शिल्प, गार्हस्थ्य, मृगया, तौर्यत्रिक, तथा शतरंज, चौपड़, नट-कला, भाँड-कला इत्यादि क्रियाएँ भी हैं। उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि उनको कृषकों, शिल्पियों, पुरोहितादिकों, पौराणिक कथाओं के नर-नारियों, पक्षियों, पशुओं, पुष्पों, पादपों, राज-परिचारकों, शासनिक पद-श्रेणियों, वैवाहिक शृंगार-सज्जाओं, वैभव-पदार्थों तथा अन्य बहुविध वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान था। सत्य के फल की प्राप्ति की रीति का प्रतिपादन करते हुए गुरु जी कृषक-जीवन से प्रगुणित सामग्री से निर्मित अलंकार में कहते हैं—'शरीर को क्षेत्र, मन को हालिक, धर्म-पूर्वक किए हुए श्रम को क्षेत्र-सेचक जल बनाओ। भगवन्नाम के बीज का वपन करो। सन्तोष को मैड़ा (पंजाबी, सुहागा) और नम्रता को वृति। प्रेम के कर्मों से बीज अंकुरित होगा।'' पुनः—

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सोरठ, पृष्ठ ५६५।

'यदि सत्कर्म तुम्हाराक्षेत्र हो और यदि तुम इसमें ईश्वरीय शब्द के बीज का वपन करो, और प्रतिदिन इसमें प्रेम का जल दो तो तुम अच्छे कृषक हो जाओगे और धर्म का शस्य काटोगे। तब तुम्हें स्वर्ग और नरक की वास्तविकता का ज्ञान हो जाएगा।'[१] गुरु जी ने परमात्मा को श्रेष्ठ कृषक कहा है।'[२] उन्होंने अपने आप को परमात्मा का कर्मकार माना है।[३] जैसे कुम्भकार के लिए मृद्-घट हैं वैसे ही जगत्-स्रष्टा के लिए संसार है।[४] चारों युग चौपड़ के चार पट, और नर-नारी चौपड़ की गोट कहे गए हैं। 'अक्ष जगत्-स्रष्टा स्वयं फेंकता है।'[५] जो मनुष्य भगवान् की राज-सभा में भगवान् को अनुग्रह-भाजन नहीं हो सकता है, उसकी गोट पिट जाती है। वह कभी खेल में विजयी नहीं होता है।'[६] भगवन्नाम के स्मरण से हीन मनुष्य को बालू की भित्ति कहा है,'[७] और शान्ति-हीन मन को वन्य मृग, जो इधर-उधर उछलता है और नई-नई घास पत्ती इत्यादि में मुंह मारता है।[८] चुपके से मछली को पकड़ लेने वाला धीवर का जाल मृत्यु का लक्षक है।[९] अपराधी व्यक्ति, जो छल करता है और दीनता प्रकट करने के लिए झुकता है, व्याध के तुल्य कहा गया है जो लक्ष्य-सिद्धि के लिए झुक जाता है।[१०]

विदेशियों के आक्रमणों के किए हुए विध्वंस श्री गुरु नानक के मस्तिष्क में पीडाकर मूर्त्तियाँ बनकर बैठ गए। उन्हीं से गुरु जी ने अपने काव्य के लिए कतिपय प्रतीक ग्रहण किए। 'काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पाँच शत्रु मनुष्य को किस प्रकार अपने वश में कर लेते हैं।' इस का वर्णन करते हुए गुरु जी लिखते हैं—'वे पाँच हैं, मैं अकेला हूँ। मैं उनसे अपने घर और धन की रक्षा कैसे करूँगा?......दुर्ग (शरीर) तो भग्न कर दिया गया, उसके अभ्यन्तर जो मन्दिर था वह लूट लिया गया और उसमें जो अकेली नारी (आत्मा) थी वह बंदी बना ली गई।'[११] इस रूपक में वे ध्वंस-घटनाएँ प्रतिबिम्बित हैं जो

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरी, पृष्ठ २३-२४।
२. वही, सिरी, पृष्ठ १९।
३. वही, वडहंस, पृष्ठ ५५७।
४. वही, आसा, पृष्ठ ४३२।
५. वही, आसा, पृष्ठ ४३४।
६. वही, आसा, पृष्ठ ३५९।
७. वही, रामकली, पृष्ठ ९३४।
८. वही, रामकली, पृष्ठ ९३२।
९. वही, सिरी, पृष्ठ ५५।
१०. वही, आसा, पृष्ठ ४७०।
११. वही गौडी, पृष्ठ १५५।

देश में पुनः-पुनः होती रही थीं। विनोदी सूक्ति भी उनकी प्रकृति के विपरीत नहीं है। वास्तव में हास्य-विनोद उनके स्वस्थ-सबल स्वभाव के अधिक अनुकूल है। एक पद्य में कहा गया है—'दुग्ध विना गौ, पक्ष विना पक्षी, जल विना तृण-द्रुम, एवं लोकादर बिना नृपति व्यर्थ है।'[1] पुनः—'जो भगवन्नाम का ध्यान नहीं करेगा वह इस लोक में आकर उसी प्रकार पश्चात्ताप करेगा जिस प्रकार निर्जनीभूत गृह में आकर काक।'[2] तथा, जो मनुष्य जीवन को सद्‌गुणों से युक्त नहीं बनाता है वह जीवन को व्यर्थ गँवाता है। बुद्धि-हत होकर वह इसी प्रकार चारों दिशाओं में देखता है जिस प्रकार पण्य के बिना आपणिक।'[3] अथवा, एक अन्य पद्य में कहा गया है—'पाषाण के लिए शैत्य क्या है, अथवा क्लीब के लिए विवाहित जीवन!'[4]

गुरु जी के काव्य का प्रेरक एक ही निगूढ भाव है। अतः उनके काव्य में पुनरुक्ति का हो जाना अपरिहार्य था। किन्तु भाषा ने, अलंकार ने एवं छन्द के वैविध्य ने सरल एक-रूपता से इसकी रक्षा कर ली है। उनकी सर्जनकारिणी भाव-तरंग ने रचना के विभिन्न दीर्घ खंडों में सतत एक ही उदात्त स्वर को स्थिर रखा है। कला से अप्रमार्जित सरल गद्य में दिए जाने वाले उपदेश की प्रवृत्ति को उभरने का अवसर नहीं दिया गया, अन्यथा दैवी प्रेरणा का बल क्षीण हो जाता। इसके अतिरिक्त, मनोदशा भी परिवर्तनशील रही है। यह एकत्र रहस्य-मार्गी और गीति-मार्गी है तो अन्यत्र दार्शनिक और आलोचनिक, एक स्थल में भक्ति-सूचक और मनन-सूचक है तो अन्य में सौन्दर्य-परक एवं ऐन्द्रियिक। काव्यार्थों की अभिव्यक्ति में कवि का जो कर्तव्य है उसकी अभिज्ञता की सूचना भी साथ ही साथ दे दी गई है। गुरु जी ने अपनी रचनाओं में अनेकत्र अपने आपको कवि कहा है। काव्य-प्रणयन में उनको विनोद का अनुभव होता था। परमात्मा की अनन्तता एवं परमात्मा की सृष्टि के गीत गाते हुए वे परम प्रसन्न होते थे। उन्होंने ईश्वर के निराकार एवं साकार दोनों रूपों के गीत गाए हैं—उनका निराकार ईश्वर निर्गुण, नीरूप, अनिर्वचनीय और समस्त सत्ताओं से ऊपर है, जबकि साकार ईश्वर सृष्टि-कर्ता है, और अपनी 'वाणी' द्वारा जगत् को अपना ज्ञान कराता है, तथा अपनी दयालुता के कारण मानव-शरीरों में कार्य करता है। उनकी रचना के वे अंश, जिनमें उन्होंने दाम्पत्य प्रेम के रूपक का आश्रय लेकर भगवान् के प्रति अपनी तीव्र आसक्ति की अभिव्यक्ति की है, तथा वे जिनमें प्रकृति-वर्णन दिए हैं, पंजाबी-भाषा साहित्य के सिद्धहस्त-

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, आसा, पृष्ठ ३५४।
२. वही, सिरी, पृष्ठ ५८।
३. वही, सिरी, पृष्ठ ५६।
४. वही, माझ, पृष्ठ १४३।

प्रस्तुत काव्य-खंडों में है। इन्द्रियातीत भगवान्में मनुष्य के विश्वास ने जिन कवि-कृतियों में अत्यन्त संनिकृष्टता एवं भव्यता से अभिव्यक्ति प्राप्त की है, गुरु जी की कविता उनमें अन्यतम है। उन का काव्य ईश्वर की सत्ता के संबंध में निश्छल साक्ष्य, और अत्यन्त गहराई के साथ किए हुए उसके प्रत्यक्ष-दर्शनों का प्रामाणिक लेखा है। तथापि, इसके तल में परम शालीनता की भावना, तथा यह चेतना कि ईश्वर-सत्ता अन्ततोगत्वा अनन्त एवं अविज्ञेय है, निगूढ है। 'जपुजि' में श्री गुरु नानक ने कहा है :—

"अंतु न सिफती कहणि न अंतु ।।
अंतु न करणै देणि न अंतु ।।
अंतु न वेखणि सुणनि न अंतु ।।
अंतु न जापै किआ मनु मंतु ।।
अंतु न जापै कीता आकारु ।।
अंतु न जापै पारवारु ।।
अंतु काहणि केते बिललाहि ।।
ताके अंतु न पाए जाहि ।।
एहु अंतु न जाणै कोइ ।।
बहुता कहीऐ बहुता होइ ।।
वडा साहिबु ऊचा थाउ ।।
ऊचे उपरि ऊचा नाउ ।।
ए वडु ऊचा होवै कोइ ।।
तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ।।
जेवडु आपि जाणै आपि आपि ।।
नानक नदरी करमी दाति ।।"[1]

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, जपुजी, पृष्ठ ५।

—न परमात्मा के गुणों की चरम सीमा है, और न उन रीतियों की, जिनसे उसके गुणों का वर्णन किया जाता है। न उसके कार्यों का अवसान है, न दानों का। न जो कुछ वह देखता है उसका अन्त है, न जो कुछ वह सुनता है। 'उसका मनोऽभिमत क्या है' इसका अवसान मानव-दृष्टि की सीमा से परे है। उसने जो कुछ रचना की है उसका अवसान ज्ञानातीत है। उसकी रचना के पार और अवार का अवसान अज्ञेय है। अवसान के कथन के लिए कितने ही मनुष्य रोते हैं उसकी सीमा का अन्त नहीं पाया जाता है। इसकी सीमा का अन्त कोई नहीं जानता है। उसके सम्बन्ध में हम जितना अधिक कहते हैं वह उतना ही और बड़ा होता जाता है। भगवान् महान् है, उसका आसन उच्च है। उसका नाम उच्चतम नाम से उच्चतर है। यदि कोई इतना महोच्च हो तो वही उस उच्च को जान सकता है। वह आप जितना महान् है उसे वह आप स्वयं जानता है। नानक ! उसने हमें जो कुछ दिया है वह सब उस दाता की कृपा-दृष्टि का फल है।

श्री गुरु नानक के सहज सुन्दर अकृत्रिम काव्य की शक्ति पाठक और स्रोता के मन में सन्देह का अवकाश नहीं रहने देती है। इस श्रेणी का काव्य उनके उपदेश-प्रकार का एक अंग हो गया था। अन्य महत्त्वपूर्ण अंग था संगीत, जिसका उन्होंने विस्तार से प्रयोग किया है। इन सब तत्त्वों के ऊपर उन ा व्यक्तित्व था। वे लोगों में दयालुता एवं निरभिमानता के भाव के साथ रहते थे। उनके प्रेम और सहानुभूति के साथ किये उपदेश का प्रभाव प्रायः सब पर पड़ता था। उनका पवित्र जीवन दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया था और उसके कारण समस्त सम्प्रदायों तथा स्तरों के लोग उनकी ओर आकृष्ट होते थे। जन-समुदाय के प्रति उनका व्यवहार असामान्यरूप से मुग्धकारी तथा सरस-स्वाभाविक था। वे स्व-पद-गौरव को विस्मृत करके लोगों से मिलते थे और साहस तथा महत चित्त-स्थैर्य से उनके साथ व्यवहार करते थे। वस्तु-विशेष अथवा कार्य-विशेष के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट करने और उसमें उनकी अभिरुचि उत्पन्न करने के निमित्त वे कभी-कभी सहसा विनोदी और कुतूहल-जनक आंगिक चेष्टा कर देते थे। इस प्रकार वे एक क्षण में श्रोताओं का मन मुट्ठी में कर लेते थे। वे सदा पर्यायोक्ति और प्रसंगागत अर्थ की रीति से शिक्षा देते थे, स्पष्ट उपदेश-व्याख्यान की शैली से नहीं। उनकी प्रायः अनुसृत सामान्य शिक्षापद्धति यह थी कि वे स्वरचित 'शबद' गाने लगते थे और मर्दाना रबाब बजाने लगता था। उनके शब्दों में, तथा उनके अहंत्वहीन भगवान् में गूढ-निमज्जित व्यक्तित्व में अद्भुत् शक्ति थी जो लोगों को आकृष्ट कर लेती थी। उनका अपना परिपूत उदाहरण तथा निश्छल सदाचारिक उपदेश लोगों की विवेक चेतना को जगा देता था। इससे बहुत लोगों का तो जीवन पूर्णतया परिवर्तित हो जाता था। श्री गुरु नानक को धर्मप्रचारार्थ ऐन्द्रजालिक-शक्ति प्रदर्शन अभिमत नहीं था। वे कहा करते थे कि मानवीय साधारण प्रकृति से परे की, अथवा मायोद्भावनी, ये शक्तियाँ आध्यात्मिक जीवन से सम्बद्ध नहीं हैं। ये सर्वथा बहिरंगीय वस्तु हैं।[1]

उनके उपदेश समस्त मानवता के लिये हैं। इस अथवा किसी अन्य प्रयोजन के लिये उन्होंने वर्ण, जाति अथवा धर्म को कभी अंगीकृत नहीं किया। समस्त सम्प्रदायों तथा मानव-वर्गों के प्रति उनका व्यवहार समान था। हिन्दुओं, मुसलमानों, सिद्धों तथा सूफ़ियों, सब के साथ संलाप में उनका स्वर समान रहता था। उन्होंने मोघ कर्म-कांड पर प्रहार किया, किन्तु कभी किसी धर्म पर नहीं। अन्य लोगों के धर्मों के प्रति उनकी सहिष्णुता एवं सहानुभूति की भावना सर्वथा आधुनिक थी। धर्म-सुधार-सम्बन्धी उनके विचार भक्ति-मार्गी

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, जपुजी, पृष्ठ ६।

आचार्यों और सम्प्रदायोद्धारकों के विचारों से भी अधिक उदार थे। उन्होंने कतिपय निरर्थक रीतियों के निवारण पर ध्यान देने के विषय में ही नवीनता नहीं दिखलाई, प्रत्युत अन्ततोगत्वा धर्मैक्य के चिन्तन के विषय में भी। हिन्दुओं को अच्छे हिन्दू तथा मुसलमानों को अच्छे मुसलमान बनने की प्रेरणा करके वे एक नवीन धर्म-संस्कृति की ओर संकेत कर रहे थे।

परन्तु यह विचार भ्रान्त होगा कि श्री गुरु नानक हिन्दू-मुसलमान धर्मों की संयोगिक एकता आपादित करने का यत्न कर रहे थे। वे उक्त धर्मों में से प्रत्येक से कतिपय सिद्धान्त लेकर तथा विवेकपूर्वक उन्हें गुम्फित करके एक ऐसे नवीन धर्म की रचना करना नहीं चाहते थे जो सभी को स्वीकार्य हो सके। उनका संकल्प इससे अधिक तलस्पर्शी था। वे हिन्दुओ और मुसलमानों के रूढि-ग्रस्त धर्मों में प्राप्य तत्त्वों से परे एक नवीन विकल्प निष्पादित करने का प्रयास कर रहे थे। उस काल में प्रचलित समग्र प्रमुख धर्म-पद्धतियों के सदाचार-विषयक और आध्यात्मिक तत्त्वों के मूल बीज में गहरा प्रवेश करके ही यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता था। धर्म का बाह्य, परम्परीण चोलक मनुष्यों को विभक्त करता है, धर्म का सारभूत अंश तो उन्हें समवेत करता है। श्री गुरु नानक ने ऐसे मानव-समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसके सदाचार विषयक सिद्धान्त इतने उदार हैं कि उन्हें सब स्वीकार कर सकते हैं और जिस समाज में धार्मिक अन्योन्य-विरोध का अभाव है। कारण, उस समाज में मनुष्यों के मन और हृदय परम सत्य परमात्मा के ऊपर टिकाए गए हैं। श्री गुरु नानक के उपदेश आन्तरिक सुसंघटन से सम्पन्न एवं निरुपम हैं। वे अन्य धर्म-पद्धतियों तथा अन्य धर्म-गुरुओं के उपदेशों की जितनी पूर्ति करते हैं उतनी निराकृति नहीं।

श्री गुरु नानक का संदेश छन्दोमयी वाणी में दिया गया है। अतः इसमें वह सुश्लिष्टता नहीं है जो दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक ग्रन्थों में होती है। गुरु जी की प्रतिभा कला-प्रवण अधिक थी, दर्शन-प्रवण न्यून, आचार-प्रिय अधिक थी, कठोर-बुद्धि-वाद-प्रिय न्यून। तथापि, उनके काव्य में एक ध्यानाकर्षक बौद्धिक संव्यवस्था है। उनके उपदेश उनके 'शबदों' में से निस्सृत होते हैं और प्रत्येक 'शबद' एक सुघटितांगपूर्ण देह है तथा जब उनके 'शबदों' को एक महावाक्य मान कर पढ़ा जाता है तब आभासिक अन्तर्विरोध तिरोहित हो जाता है। इन 'शबदों' के प्रणिधानपूर्वक पारायण से उन प्राचीन धर्म-पद्धतियों के प्रभाव भी प्रस्फुटित हो जाते हैं जो गुरु जी के काल में लोक-प्रचलित थीं। जगती के समस्त महान् धर्मों में उनके अग्रज धर्मों के सांस्पर्शिक चिन्ह विद्यमान रहे हैं। गौतमबुद्ध और प्रारम्भिक बुद्ध-धर्म से पूर्व सनातन-धर्म के बुद्धिवादी आलोचक तथा योगमार्गी कठोर सन्त-सम्प्रदाय के व्याख्याकार हो चुके थे। यसुमसीह

और प्रारम्भिक ईसाई-धर्म में यहूदी ईश्वर-दूतों तथा ऐसनी[1]-सम्प्रदायानुयायियों एवं यहूदी धर्म-शास्त्र-विशारदों की शिक्षाओं के प्रभाव-चिन्ह सुलक्ष्य हैं। उसी प्रकार श्री गुरु नानक को उनके काल की धार्मिक प्रवृत्तियों तथा प्राचीन धर्म-पद्धतियों ने प्रभावित किया था। किन्तु अन्य महान् धर्म-गुरुओं के तुल्य उनकी कुछ मौलिकता भी है और वह मौलिकता-त्र्यंशी है—(क) नित्य सत्यों की पुनः घोषणा, (ख) अपनी विशिष्ट रीति से प्राचीन पद्धतियों का उपयोग, और (ग) अपने व्यक्तित्व के गर्भ में से उत्पादित पदार्थ।

'मेरे शिष्य-समाज को मेरी शिक्षाएँ मूर्त होकर निश्चित रूप से प्रत्यक्ष होती रहें।' इस विचार से श्री गुरु नानक ने अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति की। 'धर्म-गुरुओं एवं धर्म-नेताओं का दाय-भागी क्रम वंश-परम्परा ऽऽश्रित न हो जाए।' इस दृष्टि से उन्होंने अपने पीठ का उत्तराधिकार अपने पुत्रों में से किसी को नहीं दिया। इसके लिये उन्होंने अपने शिष्यों की पात्रता के तारतम्य से अन्यतम का निर्धारण कर लिया और उसे अपने तुल्य बना दिया। उन्होंने अपने कार्यों का भार ही उसके स्कन्धों पर नहीं रख दिया, जैसा कवि कहते हैं, अपनी ज्योति भी उसमें प्रविष्ट कर दी। श्री गुरु नानक ने स्व-नियुक्त उत्तराधिकारी को अपनी प्रतिमूर्त्ति के रूप में देखा, और उत्तराधिकार की घोषणा के क्षण उन्होंने उसे वही श्रद्धांजलि अर्पित की जो 'गुरु' को अर्पित की जानी चाहिए। आठ पीढ़ियों तक इसी प्रथा का पालन होता रहा। इस प्रकार सिख सम्प्रदाय में क्रमशः दस धर्म-गुरु हुए हैं और सिखों में उन सब के प्रति समान आदर-पूजा का भाव रहता है। ये श्री गुरु नानक की विद्यमानता के साधक सजीव प्रत्यक्ष प्रमाण रहे और आद्य गुरु ने जिस शिष्य-बन्धु-समाज की स्थापना की थी उसके पथ-प्रदर्शक बने रहे। श्री गुरु नानक का जो व्यापक प्रभाव, उनके उत्तरवर्ती गुरुओं के माध्यम से, उनके अनुयायियों के ऊपर विद्यमान रहा, उसका एक रोचक प्रमाण उपलब्ध है। सत्ता और बलवंड दो भाट द्वितीय गुरु श्री गुरु अर्जुन के आश्रय में रहते थे और उनको 'शबद' सुनाया करते थे। उनका एक सम्बोधन गीत ग्रन्थ साहिब में सुरक्षित है। वे उसमें कहते हैं :—"गुरु नानक ने लहिणा के गुरु-तिलक कर दिया······उनमें अर्थात् गुरु अंगद में गुरु नानक की ही ज्योति थी और उनकी वही कार्यपद्धति थी; गुरु अंगद शरीर-परिवर्तित साक्षात् गुरु नानक ही हैं।[2] तृतीय गुरु श्री आर्थात् श्री गुरु अमरदास और चतुर्थ गुरु अर्थात् श्री गुरु रामदास

---

१. प्राचीन यहूदी धर्म की रहस्य-मार्गी शाखा का नाम।

२. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, रामकली, पृष्ठ ९६६।

SIKHBOOKCLUB.COM

सम्बन्ध में वे कहते हैं—'वह विद्वान् जीव, गुरु नानक अमरदास के रूप में अवतीर्ण हो गया''' सिख-समाज अमरदास के सिर के ऊपर नानक के चन्द्रातप को देख कर विस्मित हो गया। गुरु अमरदास ने वही सिंहासन और वही सभा प्राप्त की। गुरु रामदास तुझे हमारा प्रणाम है, प्रणाम है! तू नानक है; तू लहिणा है; तू अमरदास है।"[1]

अपने एक सम्बोधन गीत में भाई गुरदास ने कहा है—"अपने जीवनकाल में नानक ने लहिणा को गुरु पीठासीन कर दिया और उसे गुरु-पद का वैभव दे दिया। गुरु नानक ने अपनी ज्योति अंगद में प्रविष्ट करके अपने आपको अंगद रूप में परिवर्तित कर लिया—अंगद में वही चिन्ह था, उसके सिर के ऊपर वही छत्र था और वह उसी सिंहासन पर बैठा करता था जिस पर गुरु नानक। गुरु नानक की मुहर गुरु अंगद के हाथ में चली गई और इस प्रकार वह राजा घोषित कर दिया गया'''लहिणा ने दाय नानक से प्राप्त किया और यह अमरदास के घर में आना चाहिए"[2] और तदनन्तर रामदास के, अर्जुन के और हरगोबिन्द के। भाई गुरदास का कथन है—'अर्जुन ने अपने आपको हरगोबिन्द के रूप में परिवर्तित कर लिया और उसे अपना ही रूप दे दिया।'[3] सिख जानते थे कि श्री गुरु नानक, उत्तराधिकारी गुरुओं के माध्यम से, हमारे मध्य में कार्य कर रहे हैं और आद्य गुरु की विद्यमानता की उनकी अनुभूति इतनी व्यापक थी कि आद्य गुरु के सौ वर्ष पश्चात मोबिद जुलफिक़ार अर्दस्तानी ने अपनी फ़ारसी कृति 'दबिस्तान-ए मजाहिब' में कहा—"सिख कहते हैं कि जब गुरु नानक ने शरीर-त्याग किया तब उन्होंने अपने आपको अपने परम भक्त शिष्य गुरु अंगद में समाविष्ट कर दिया और इस प्रकार गुरु अंगद गुरु नानक ही था। उनके पश्चात् निधन के समय गुरु अंगद गुरु अमरदास के शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसी रीति से वह रामदास के शरीर में और उसी रीति से रामदास अर्जुन के शरीर में '''''''''सिख कहते हैं कि जो गुरु अर्जुन को बाबा नानक का ही रूप और आत्मा नहीं मानता है वह सिखधर्मी नहीं है।'[4]

दशम गुरु श्री गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी जीवनी 'बचित्तर नाटक' नामक छन्दो-बद्ध रचना में लिखी है। वे उसमें कहते हैं—"नानक ने अंगद का शरीर ग्रहण कर लिया'''''तत्पश्चात् नानक अमरदास कहलाया, जैसे एक दीपक से

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, रामकली, पृष्ठ ९६८।

२. वार, १/४५।

३. वार, १/४६।

४. 'Punjab Past and Present' April, 1967 में Nanak Panthis, पृष्ठ ५५।

अन्य दीपक प्रज्वलित कर लिया जाता है······महात्मा नानक की पूजा अंगद के रूप में होने लगी। अंगद ही अमरदास माने गए और अमरदास रामदास बन गए। जब रामदास ईश्वर में मिल गए तब वे गुरु-पद अर्जुन को दे गया। अर्जुन ने अपने पद पर हरगोबिन्द को नियुक्त कर दिया और हरगोबिन्द ने अपना स्थान हरराय को दे दिया। तब उनके पुत्र हरकिशन गुरु हो गए। तदनन्तर तेगबहादुर आए।'[१]

सिखों का विश्वास है कि श्री गुरु नानक हमारे मध्य विद्यमान हैं। इस आस्था ने गुरुओं का अद्वैत, एकत्व, उनके मन में दृढता से बैठा दिया है। स्वयं गुरु भी इस विद्यमानता को अविच्छिन्नतया वर्तमान वस्तु-तत्त्व मानते थे। वे आध्यात्मिक कार्यों के करने में इस वस्तु-सत्ता से उत्साह प्राप्त करते रहे और इसे प्रमाण-दण्ड मानते रहे। उन्होंने आद्य गुरु के नाम से धार्मिक कविता लिखी। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में उनके समग्र 'शबदों' में 'कवि-नाम' नानक ही है। इस प्रकार श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रथम नानक, द्वितीय नानक, तृतीय नानक इत्यादि रूप से, गुरुओं की कविताओं का संकलन और उन कविताओं में स्वर और विचारों का विस्मयावह साम्य है। सिखों का विश्वास है कि आद्य गुरु के अनन्तर सभी गुरु, वाचा और कर्मणा, उस एक ही ईश्वरीय प्रेरणा को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे जो उन्हें श्री गुरु नानक के माध्यम से प्राप्त हुई थी। सिखों के आचार-विचारों का विकास दो वस्तुओं की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का परिणाम है—(१) श्री गुरु नानक सम्प्रदत्त आद्य विचार-वीचि और (२) सामयिक सामाजिक स्थितियों की आवश्यकताएँ। विश्वास और धैर्य की परीक्षा के आह्वान आए : नवीन स्थितियों में नवीन प्रकार की प्रतिक्रिया की आवश्यकता हुई और नवीन प्रतिक्रिया का जन्म हुआ। आकार-प्रकार में कुछ परिवर्तन करने के क्षण आए और उनके अनुरूप कार्य किया गया। तथापि, इस प्रगति-क्रिया में एक ऐसी मूलानपेत समन्विति एवं सातत्य-गति दुर्लक्ष्य नहीं है, जिसका प्रधान कारण श्री गुरु नानक की अविच्छिन्न-विद्यमानता की कथा है।

श्री गुरु नानक के अनन्तर प्रत्येक गुरु ने सिख-धर्म के विकास और सिख-समाज के संघटन में, आद्य गुरु से पैतृकदाय के रूप में प्राप्त शिक्षाओं की भावना के तथा उस काल की ऐतिहासिक स्थिति के अनुसार, योग-दान दिया। उदाहरणार्थ, पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन ने, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब तथा अमृतसर में स्थित हरमन्दिर साहिब दिया। हरमन्दिर साहिब अब प्रायः सुवर्ण मन्दिर के नाम से विख्यात है और सिखों में इसका वही आदर है जो मुसलमानों में

१. 'बचित्तर नाटक', शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ५६-५७।

मक्के का। श्री गुरु अर्जुन ने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का संकलन किया और उसमें पूर्वगामी गुरुओं की, अपनी तथा कतिपय हिन्दू एवं मुसलमान सन्तों की रचनाओं का समावेश किया। इन सन्तों में प्रमुख नाम हैं—रामानन्द, कबीर, नामदेव तथा रहस्यमार्गी सूफ़ी फ़क़ीर शेख़ फ़रीद। अमृतसर के हरमन्दिर साहिब का शिलान्यास श्री गुरु अर्जुन की अभ्यर्थना पर प्रसिद्ध मुसलमान सन्त मियाँमीर ने किया था। मुसलमान शासकों में धार्मिक असहिष्णुता निरन्तर बढ़ती जा रही थी और जब पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन भी मुसलमान शासकों के कोप-भाजन हो गए, तब उन्होंने शासकों की दी सीमातीत असह्य पीडा को शान्ति से सहन करके आत्म-बलिदान कर दिया। किन्तु श्री गुरु अर्जुन के उत्तरवर्ती, षष्ठ, गुरु ने शासकों के कोप का उत्तर अपने अनुयायियों को खड्ग-प्रयोग की अनुमति देकर दिया। वास्तव में जब षष्ठ गुरु ने देखा कि वर्तमान सिख-समाज को शान्तिमय उपायों के द्वारा शासकीय दमन से नहीं बचाया जा सकता है तब उन्होंने खड्ग-प्रयोग को आत्म-रक्षा के लिये वैध उपाय के रूप में स्वीकृत कर लिया। अपने उत्तराधिकार-तिलक के समारोह के अवसर के लिये उन्होंने सैनिक-सज्जा का वरण किया और गुरु-पीठ पर आसीन होने के समय दो कृपाण धारण किये और घोषणा की कि एक कृपाण आध्यात्मिक अभिषेक का उपलक्षण है एवं अन्य भौतिक अभिषेक का। पंचम गुरु श्री गुरु अर्जुन के पश्चात्, नवम गुरु श्री गुरु तेग़बहादुर ने मुसलमान शासकों के हाथों धर्म-वीर-गति प्राप्त की।

श्री गुरु तेग़बहादुर के पश्चात् सिख-इतिहास ने एक सुनिश्चित दिशा ग्रहण कर ली और उसकी घटनाएँ अब सुविदित हैं। साङ्ग्रामिक स्थिति और महाकष्ट सहन के काल में भी उस लक्ष्य-ध्रुव पर दृढ दृष्टि स्थिर रखी गई जो श्री गुरु नानक के समय से सिखों का मार्ग-दर्शक सिद्धान्त था। श्री गुरु गोबिन्द सिंह को जिस संघर्ष में से निकलना पड़ा वह श्री गुरु नानक के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वरीय कार्य समझा गया। श्री गुरु गोबिन्द सिंह की ही कविता, जो अलोकसामान्य गुण की दृष्टि से श्री गुरु नानक की कविता से भिन्न नहीं है, इस असन्दिग्ध विश्वास की साक्षी है। क्रियात्मक जीवन के लिये एक कठोर आचार-विचार-विषयक अनुशासनिक व्यवस्था का विकास ही नहीं, उसका पालन भी किया गया। हिन्दू और मुसलमान में भेद नहीं माना गया। वास्तव में कई मुसलमान जिनकी अपने धर्म में दृढ आस्था थी, मुसलमान शासकों के साथ होने वाले युद्धों में श्री गुरु गोबिन्द सिंह के पक्ष में लड़े। उदाहरणार्थ, पीर बुद्धू शाह, जो अपने धर्म के क्षेत्र में एक महान् प्रभावशाली नेता था, अपने पुत्रों एवं शिष्यों को साथ लेकर गुरु जी के पक्ष में रणारूढ हुआ था। श्री गुरु नानक के समान श्री गुरु गोबिन्द सिंह की दृष्टि में भी

हिन्दू-मुस्लिम समाज कोई काल्पनिक पदार्थ नहीं, प्रत्युत एक संयुक्त, समञ्जस वास्तविक सत् पदार्थ है। श्री गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने एक 'शबद' में कहा है :—

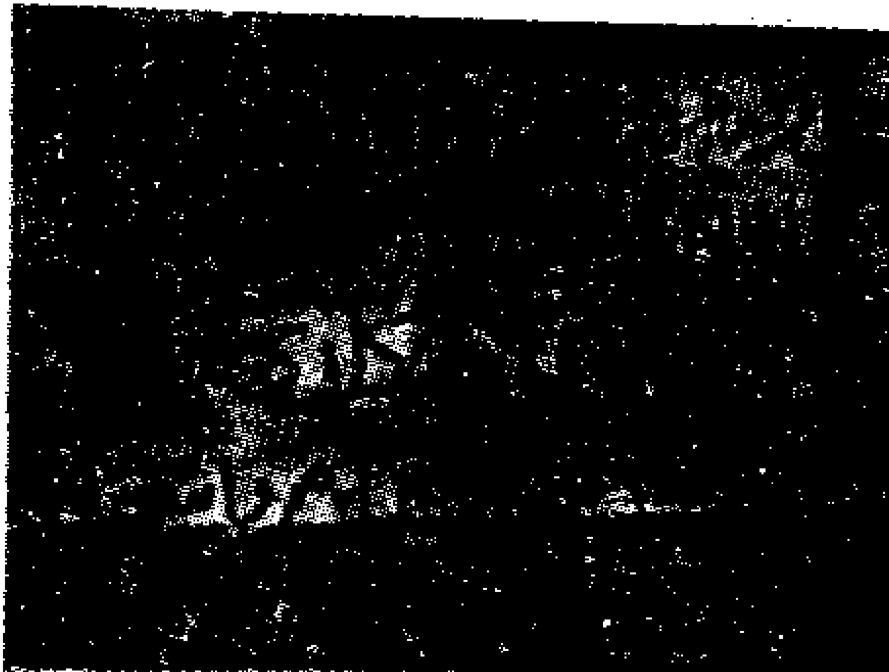
"हिन्दू और मुसलमान में भेद नहीं है। एक ही परमात्मा सब का स्रष्टा और पालयिता है; उनके मध्य भेद स्वीकार न करो।
मन्दिर और मस्जिद में भेद नहीं है; उसी प्रकार पूजा और नमाज में भेद नहीं है। सब मनुष्य समान हैं।"

यही अवतरण श्री गुरु नानक की रचना में से भी हो सकता है।

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

परिशिष्ट



SIKHBOOKCLUB.COM

वर्तमान लेखक अगस्त १९६९ में बगदाद नगर गया था। उस समय उसने जिस अभिलेख का छाया-चित्र लिया था उसकी प्रतिमुद्रा ऊपर दी गई है। इस अभिलेख की भाषा उस्मान प्रथम के काल की तुर्की भाषा है। लेखक की प्रार्थना स्वीकार करके हार्वर्ड विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज, संयुक्त राज्य अमरीका, में तुर्की भाषा के लैक्चरर Dr Jhinasi Tekin ने इसे पढ़ने की कृपा की थी। उसके अनुसार इसका पाठ है :—

> "गोर ने मुराद एलेदि हज़रते रब्बे मजीद,
> बाबा नानक फ़क़ीर औला त की' इमारते जदीद,
> यिदिलेर इम्दाद् इदुप् गेल्दी की तरिहिने,
> यपदी सेवब् एज्र इदे अनी मुरीदे सईद।"[1]

---

१. रोमन लिपि में यह पाठ इस प्रकार लिखा गया है :

> "Gor ne murad eyledi hazret-i rabb-i mejid,
> Baba Nanak faqir ola ta ki' imaret jedid,
> yidiler imdad idup geldi ki tarihine,
> yapadi sevab ejr ide ani muridi said."

उक्त महाशय ने इसका जो अंग्रेज़ी भाषान्तर किया उसका हिन्दी रूपान्तर है—

महिमशाली भगवान् के मन में जो इच्छा उत्पन्न हुई उसकी ओर ध्यान दीजिए।

[वह इच्छा] यह कि सन्त बाबा नानक के लिए एक नवीन भवन का निर्माण किया जाए।

सात ने सहायता की और इस अभिलेख[1] ने अस्तित्व प्राप्त किया।

अनुगृहीत शिष्य ने एक पुण्य कार्य किया।

परमात्मा उसे उस कार्य का सुफल दे।[2]

उक्त महाशय ने ही इस अभिलेख में प्रयुक्त वर्णिक सम छन्द की वर्ण-योजना इस प्रकार दी है—

IS, SIIS, SIS, SIIS

अर्थात् एक चरण में तेरह वर्ण हैं।

द्वितीय पंक्ति के प्रथम दो शब्दों को उक्त महाशय ने 'बाबा नानक' पढ़ा है, और उसका कथन है कि मैंने इस अभिलेख में जिस छन्द का विश्लेषण करके देखा है उसमें ये शब्द यथावत् स्थित रहते हैं। उसका यह भी कथन है कि 'नानक' शब्द सम्बन्ध कारकीय विभक्ति नहीं हो सकता है।

Dr Tekin का यह भी विचार है कि यह अभिलेख ईसवीय १७०० से, अथवा, उसके समीप के किसी वर्ष से, प्राचीनतर नहीं हो सकता है। कारण, इस अभिलेख की चतुर्थ पंक्ति में 'प' अक्षर का प्रयोग है, और तुर्की भाषा में उक्त काल से पूर्व 'प' का प्रयोग प्रचलित नहीं था। सम्भव है, यह अभिलेख जिस भवन में है उस भवन के जीर्णोद्धार के समय वहाँ लगाया गया हो।

इस अभिलेख में दिया जो सम्वत्सर अब ९१७ हिज्री पढ़ा जाता है, वही इसके पूर्वतन छाया-चित्रों में ९२७ पढ़ा जाता था। प्रतीत होता है कि इस अभि-लेख में दिए सम्वत्सर का '२' अंक अब स्पष्ट नहीं है। अतएव वह अब '२' की अपेक्षा '१' अधिक सुगमता से पढ़ा जाता है।

श्री गुरु नानक की जीवनी से सम्बद्ध वाङ्मय में यह प्रसिद्धि प्रबल तथा दृढ-पद है कि गुरु जी बग़दाद गए थे। इसका प्राचीनतम साक्ष्य भाई गुरदास

---

१. अंग्रेज़ी में chronogram शब्द है। उसका अर्थ है वह लेख जिसके वर्णों का मूल्य संकलित करके लेख के निर्माण के काल का निश्चय किया जाता है।

२. मूल अभिलेख की चार पंक्तियों का अंग्रेजी भाषान्तर पाँच पंक्तियों में दिया गया है।

की रचना में उपलब्ध होता है, और भाई गुरदास का जन्म श्री गुरु नानक के शरीर-त्याग के केवल बारह वर्ष पश्चात् हुआ था, तथा उसने आद्य गुरु के पाँच उत्तरवर्ती गुरुओं के काल देखे थे। इतना ही नहीं, भाई गुरदास उक्त पाँचों गुरुओं के, तथा कतिपय उन शिष्यों के निकट सम्पर्क में रहा था जो आद्य गुरु के काल में ही गुरु जी की भक्त मण्डली में प्रविष्ट हो चुके थे। अपनी एक 'बार' में उसने आद्य गुरु के बग़दाद जाने का उल्लेख किया है। वह कहता है—

'फिरि बाबा गिआ बग़दाद नो,
बाहर जाइ कीआ असथाना।''

इसका हिन्दी रूपान्तर है—तदनन्तर बाबा बग़दाद को गया, और वहाँ पहुँच कर उसने नगर से बाहर निवास किया। भाई गुरदास की इन पंक्तियों की रचना का काल आद्य गुरु के निधन के प्रायः साठ वर्ष पश्चात् है। इन पंक्तियों के लेखक भाई गुरदास का आद्य गुरु के समय के सिखों के साथ साक्षात् सम्पर्क था, और उसने गुरु जी के काल में ही उद्भूत अनुश्रुतियों को प्रामाणिक पुरुषों से सुना था। भाई गुरदास की उक्ति स्पष्ट एवं संदेह के लेश से हीन है, और ये शब्द कि 'गुरु जी नगर से बाहर टिक गए' इस प्रकरण में विशेष रूप से अभिप्रायविशेष के व्यंजक हैं। जनमसाखियों में भी वर्णित है कि श्री गुरु नानक बग़दाद गए थे। हस्त-धृत ग्रन्थ में, एक पूर्व स्थल में, कहा जा चुका है कि श्री गुरु नानक अब्दुल क़ादिर गिलानी एवं बहलूल शाह से मिले थे। ये उल्लेख स्पष्ट ही इतिहास-विरुद्ध प्रतीत होते हैं। सम्भव है कि गुरु जी इन सूफ़ी सन्तों के शिष्यों अथवा वंशजों से मिले हों। परन्तु यह तथ्य ही कि बग़दाद का नाम और सूफ़ी सन्तों के नाम गुरु जी की जीवनी की अनुश्रुतियों में सुने जाते हैं सूचित करता है कि यदि गुरु जी की बग़दाद-यात्रा की कथा उनके शरीर-त्याग के शीघ्र पश्चात् इतनी प्रसिद्ध हो गई तो इसका कोई सुदृढ आधार रहा होगा।

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

सहायक ग्रन्थ-सूची

Abbott, Justin E., N.R. Godbole and J.F. Edwards, *Nectar from Indian Saints*, (translation of Mahipati's *Bhaktalilamrit* in Marathi), Poona, 1935.

Abid Husain, S., *Indian Culture*, Asia Publishing House, New York, 1963.

Amrik Singh, *Sat Guru Nanak Dev*, 1949.

Ananda Acharya, Sri, *Snow-birds*, Macmillan & Co., London, 1919.

Arberry, A.J., *Sufism*, London, 1950.

Archer, John Clark, *The Sikhs, in Relation to Hindus, Moslems, Christians and Ahmadiyas: A Study in Comparative Religion*, Princeton University Press, Princeton, 1946.

Archer, W.H., *Paintings of the Sikhs*, Her Majesty's Stationery Office, London, 1966.

Ardaman Singh Bhayee, *One Guru, One Movement*, Guru Nanak Mission, Patiala.

Ashraf, K.M., *Life and Conditions of the People of Hindustan (A.D. 1200—1550)*, Jiwan Prakashan, Delhi.

Aziz Ahmad, *Studies in Islamic Culture in the Indian Environment*, Oxford, 1964.

Banerjee, Indubhusan, *Evolution of the Khalsa*, Vol. I, Calcutta, 1936.

Bankey Behari, *Sufis, Mystics and Yogis of India*, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1962.

Beale, T.W., *An Oriental Biographical Dictionary*, London, 1894.

Bedi, B.P.L., *Guru Baba Nanak*, New Light Publishers, New Delhi, 1966.

Beveridge, A.S., *The Babar-nama in English*, London, 1921.

Bingley, A.H., *Sikhs*, Simla, 1899.

Blochman, H., *Ain-i-Akbari* (translation of *Ain-i-Akbari* by Abul Fazl), Asiatic Society, Calcutta, 1938.

Briggs, G.W., *Gorakhnath and the Kanphata Yogis*, Calcutta, 1938.

Briggs, John, *History of the Rise of the Mahomedan Power in India till the year A.D. 1612* (translation of *Tarikh-i-Firishta* by Firishta), London, 1829.

Candler, Edmund, *The Mantle of the East*, Edinburgh and London, 1910.

Chhajjoo Singh, Bawa, *The Ten Gurus and Their Teachings*, Lahore, 1903.

Codrington, H.W., *A Short History of Ceylon*, Macmillan & Co., London, 1926.

Court, Major Henry, *History of the Sikhs*, (translation of *Sikhan de Raj di Vithya*), Lahore, 1888.

Cunningham, A., *The Ancient Geography of India*, Trubner & Co., London, 1871.

Cunningham, J.D., *A History of the Sikhs from the Origin of the Nation to the Battle of the Sutlej*, John Murray, London, 1849.

Cust, R.N., *Linguistic & Oriental Essays*, Trubner & Co., London, 1880.

Daljit Singh, Raja Sir, *Guru Nanak*, University Publishers, Lahore, 1943.

Elliot, H.M., and J. Dowson, *The History of India as told by its own Historians*, London, 1871-73.

Field, Dorothy, *The Religion of the Sikhs*, John Murray, London, 1914.

Forster, George, *A Journey from Bengal to England*, London, 1798.

Ganda Singh, (a) *Guru Nanak, His Life and Teachings*, Sikh Missionary Tract Society, Singapore, 1940.

—(b) *Nanak Panthis : The Sikhs and Sikhism of the Seventeenth Century*, Journal of the Indian History, Vol. XIX, Part 2, Serial No. 56, August, 1940. (translation from *Dabistan-i-Mazahib* by Mobid Zulfiqar Ardastani).

—(c) *Early European Accounts of the Sikhs*, Calcutta, 1962.

—(d) *The Teachings of Guru Nanak*, in *The Durbar*, Amritsar, November 1937.

SIKHBOOKCLUB.COM

Gobind Singh Mansukhani, *Guru Nanak: World Teacher*, India Book House, New Delhi, 1968.

Gopal Singh, (a) *Sri Guru Granth Sahib* (English translation), Gurdas Kapur & Sons, Delhi, 1960—62.

—(b) *Guru Nanak*, National Book Trust of India, New Delhi, 1967.

Gordon, John J.H., *The Sikhs*, London, 1904.

Greenlees, Duncan, *The Gospel of the Guru-Granth Sahib*, Adyar, Madras, 1952.

Griffin, Lepel, *Great Religions of the World*, New York, 1901.

Gurbakhsh Singh, "Sikh Relics in Eastern Bengal," in *Dacca Review*, 1915—16.

Harnam Singh, *The Japji*, New Delhi, 1957.

Hevklots, G.A., *Shureef's Customs of the Moosulmans of India*, J.L. Cox & Son, London.

Ikram, S.M., *Muslim Civilization in India*, New York, 1964.

Imperial Gazetteer of India, Oxford, 1908.

Issar, Major N.S., "Guru Nanak in Tibet," in *Sikh Review*, January 1965.

Jodh Singh, (a) *Religion and Religious Life as conceived by Guru Nanak*, The Sikh Tract Society, Lahore, April 1925.

—(b) *Some Studies in Sikhism*, Ludhiana, 1953.

—(c) *The Japji*, Amritsar, 1956.

Jogendra Singh, Sir, *Thus Spoke Guru Nanak*, Oxford University Press, 1934.

Johar, S.S., *Guru Nanak*, New Book Co., Jullundur, 1969.

Kapur, B.L., *The Message of Sri Guru Nanak Dev in the context of Ancient Sanatanist Tradition*, Guru Nanak Memorial Lectures delivered at the Punjabi University, Patiala, 1967.

Kapur Singh, *Parasharprasana or the Baisakhi of Guru Gobind Singh*, Jullundur, 1959.

Kartar Singh, *Life of Guru Nanak Dev*, Ludhiana, 1958.

Khaliq Ahmad Nizami, *Some Aspects of Religion and Politics in India during the Thirteenth Century*, Asia Publishing House, Bombay, 1961

Khazan Singh, *History and Philosophy of the Sikh Religion*, 2 Vols., Nawal Kishore Press, Lahore, 1914.

Khuswant Singh, (a) *A History of the Sikhs*, Vol. 1, Princeton University Press, Princeton, 1964.

—(b) *Japji : the Sikh Prayer*, London.
—(c) *The Sikhs*, London, 1953.

Kirpal Singh, Lt., "Guru Nanak in Ladakh" in *Sikh Review*, August 1966.

Lakshman Singh, Bhagat, *Baba Nanak*, Coronation Printing Works, Amritsar.

Lal, K.S., *Twilight of the Sultanate*, Asia Publishing House, Bombay, 1963.

Lane-Poole, S., *Babar*, Oxford, 1899.

Latif, Syed Muhammad, *History of the Punjab from the Remotest Antiquity to the Present Time*, Calcutta Central Press Company, Calcutta, 1891.

Loehlin, C.H., *The Sikhs and Their Scripture*, Lucknow, 1958.

Macauliffe, M., *The Sikh Religion*, 6 Vols., Oxford, 1909.

Macauliffe, M., H.H. Wilson, Frederic Princott, John Malcolm and Kahan Singh, *The Sikh Religion : A Symposium*, Susil Gupta, Calcutta, 1958.

Majumdar, R.C. (a) *An Advanced History of India*, New York 1967.
—(b) *The History and Culture of the Indian People*, Volume entitled "The Delhi Sultanate."

Malcolm, Lt.-Col. John, *Sketch of the Sikhs, A Singular Nation Who Inhabit the Provinces of the Punjab*, John Murray, London, 1812.

McLeod, W.H., *Guru Nanak and the Sikh Religion*, Oxford, 1968.

M'Gregor, W.L., *The History of the Sikhs*, (2 Vols.), London, 1846.

Modiliar, Simon Casie Chitty, *Ceylon Gazetteer*, 1834, Cotta Church Mission Press, Ceylon.

Mohammed Wahid Mirza, *The Nuh Sipihr*.

Mohan Singh Oberoi, (a) *A History of Punjabi Literature*, Amritsar, 1956.
—(b) *Kabir*, Lahore, 1934.
—(c) *Guru Nanak Dev and Nation Building*, 1934.

Moorcroft, William, *Travels in the Himalayan Provinces of the Hindustan and the Punjab; in Ladak and Kashmir*, etc., etc., John Murray, London, 1837.

Mujeeb, M., *The Indian Muslims*, George Allen & Unwin, London, 1967.

Narain Singh, (a) *Guru Nanak Re-interpreted*, Amritsar, 1965.
—(b) *Our Heritage*, Amritsar.

Narang, Gokul Chand, *Transformation of the Sikhs or How the Sikhs became a Political Power*, Tribune Press, Lahore, 1912.

Narendrapal Singh, *Gleanings from the Masters*, The Sikh Cultural Centre, Calcutta, 1965.

Panikkar, K.M., *A Survey of Indian History*, Asia Publishing House, Bombay, 1966.

Parkash Singh, *The Sikh Gurus and the Temple of Bread*, Shiromani Gurdwara Parbandhak Committee, Amritsar, 1964.

Payne, C.H., *A Short History of the Sikhs*, London, 1915.

Perera, S.G., *History of Ceylon*, Colombo, 1951.

Prinsep, H.T., (a) *Origin of the Sikh Power in the Punjab and the Political Life of Maharaja Ranjeet Singh*, Calcutta, 1934.
—(b) *Punjab District Gazetteers.*

Puran Singh, (a) *The Book of the Ten Masters*, Selwyn and Blount, London, 1926.
—(b) *Sisters of the Spinning Wheel and other Sikh Poems*, New York, 1921.

Ranbir Singh, *Glimpses of the Divine Masters*, International Traders Corporation, New Delhi, 1965.

Rose, H.A., *A Glossary of Tribes and Castes of the Punjab and North West Frontier Province of India*, (3 Vols.), Punjab Government Printing Press, Lahore, 1919.

Sachau, Edwards C., *Alberuni's India*, Routledge and Kegan Paul, London.

Sardul Singh Caveeshar, (a) *The Sikh Studies*, National Publications, Lahore, 1937.
—(b) *Guru Nanak and World Peace*, Lahore.

Scott, G.B., *Religion and Short History of the Sikhs*, London, 1930.

Sewaram Singh, *The Divine Master*, Gulab Singh & Sons, Lahore, 1930.

Sher Singh, *Guru Nanak, the Saviour of the World*, 1935.

Sher Singh, Dr, *Philosophy of Sikhism*, Lahore, 1934.

Sikhism and Christianity in the Punjab, special issue of *Religion and Society*, Vol. XI, No. 1, March 1964.

SIKHBOOKCLUB.COM

Sivaratnam, C., *The Tamils in Early Ceylon*, Colombo, 1968.

Smith, V.A., *The Oxford History of India*, Oxford, 1923.

Sohan Singh, The *Seeker's Path*, Orient Longmans, Calcutta. 1959.

Steinbach, H., *The Punjab*, Smith, Elder & Co., London, 1846.

Strange, G. Le, *Baghdad during the Abbasid Caliphate*.

Surinder Singh Kohli, (a) *A Critical Study of the Adi Granth*, New Delhi, 1961.

—(b) *Outlines of Sikh Thought*. New Delhi, 1966.

Syed Mahmud, *Hindu-Muslim Cultural Accord*, Vora & Co., Bombay. 1949.

Tara Chand, *Influence of Islam on Indian Culture*, Allahabad, 1963.

Taran Singh, *Guru Nanak as a Poet*, thesis presented at the Panjab University, Chandigarh, for the degree of Ph.D., 1959.

Teja Singh, (a) *Essays in Sikhism*, Lahore, 1941.

—(b) *Guru Nanak and His Mission*, Lahore, 1918.

—(c) *Japji or Guru Nanak's Meditation*, Sikh Tract Society, Amritsar, 1924.

—(d) *Asa di Var or Guru Nanak's Morning Hymn*, Sikh Tract Society, Amritsar.

—(e) *Growth of Responsibility in Sikhism*, Bombay, 1948.

—(f) *Sikhism : Its Ideals and Institutions*, Bombay, 1951.

—(g) and Ganda Singh, *A Short History of the Sikhs*, Vol. I, Orient Longmans, Bombay, 1950.

Trilochan Singh, *The Humanism of Guru Nanak*, Gurdwara Parbandhak Committee, Sisganj, Delhi.

Trilochan Singh, Jodh Singh, Kapur Singh, Harkishan Singh and Khushwant Singh, *Selections from the Sacred Writings of the Sikhs*, George Allen & Unwin, London, 1960.

Trumpp, Ernest, *The Adi Granth*, London, 1877.

Vaswani, T.L., *Guru Nanak's Call to Modern India*, Coronation Printing Works, Amritsar.

Wessels, C., *Early Jesuit Travellers in Central Asia*.

Wylam, P.M., *Guru Nanak the Reformer*, Shiromani Gurdwara Parbandhak Committee, Amritsar, 1969.

Yusuf Husain, *Glimpses of Medieval Indian Culture*, Asia Publishing House, Bombay, 1962.

SIKHBOOKCLUB.COM

(ख) पंजाबी ग्रन्थ

करम सिंह, 'कतिक के बैसाख', चीफ़ खालसा दीवान, अमृतसर, १९१२ ।
काला सिंह बेदी, 'गुरु नानक दर्शन', नई दिल्ली, १९६५ ।
काहन सिंह भाई, 'गुर शब्द रत कर महान् कोष', पटिआला स्टेट गवर्नमेन्ट, पटिआला, १९३१ ।
किरपालदास बाबा, 'महिमा प्रकाश' (गद्य) ।
गन्डा सिंह, (i) 'कुझ कु पुरातन सिख इतिहासक पत्रे', १९३७ ।
(ii) 'अफ़ग़ानिस्तान विच इक्क महीना', सिख हिस्ट्री सोसायटी, अमृतसर, पटिआला, १९५४ ।
गुरदास भाई, (i) 'कबित्त सवय्ये' ।
(ii) 'वार' ।
'गुरु नानक महाकवि', भाषा विभाग, पटिआला, १९५५ ।
गोबिन्द सिंह, श्री गुरु, 'बचित्तर नाटक' ।
ग्यान सिंह गिआनी, 'तवारीख गुरु खालसा', अमृतसर, १९१४ ।
रायसाहिब मुन्शी गुलाब सिंह, 'जनमसाखी भाई बाला' तथा अन्य संस्करण, लाहौर, १९२३ ।
जोधसिंह, डाक्टर भाई, 'गुरु नानक सिम्रती विख्यान', पंजाबी विश्वविद्यालय, गुरु नानक स्मारक लैकचर्ज़, १९६६-६७, पटिआला, १९६७ ।
तारन सिंह, 'गुरु नानक, चिन्तन ते कला', कस्तूरीलाल एण्ड सन्ज़, अमृतसर ।
तारा सिंह नरोतम, 'गुर तीरथ संग्रह' ।
तेजा सिंह, 'सिक्ख धरम', पटिआला, १९६२ ।
दित सिंह (i) 'गुरु नानक प्रबोध', हरि बुक डिपो, अमृतसर, १९३२ ।
(ii) 'जनमसाखी श्री गुरु नानक साहिब', खालसा कालेज कौन्सिल, अमृतसर ।
भाई वीरसिंह सम्पादित, 'पुरातन जनमसाखी', अमृतसर ।
बन्नो, भाई, 'हक़ीक़त राह, मुक़ाम शिवनाभ राजे की' (उसकी लिखित गुरु ग्रन्थ साहिब की प्रति का परिशिष्ट) ।
बहिलो, भाई, 'सूचक प्रसंग गुरु का', हस्तलिखित ।

SIKHBOOKCLUB.COM

मनी सिंह, भाई, 'जनमसाखी गुरु नानक जी दी', अन्य नाम ज्ञान-रतनावली'।
मेहरबान सोढी, 'जनमसाखी श्री गुरु नानक', किरपाल सिंह सम्पादित, खालसा कालेज, अमृतसर, १९६३।
रतन सिंह भंगु, 'प्राचीन पंथ प्रकाश', वज़ीर हिन्द प्रैस, अमृतसर।
वीर सिंह, भाई (i) 'श्री गुरु नानक चमत्कार', खालसा समाचार, अमृतसर।
(ii) 'संथिआ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब', डा० वलबीर सिंह सम्पादित, खालसा समाचार, १९५८-६२।
'शबदारथ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी', १९३६-४१।
शेर सिंह ग्यानी, 'गुरमत दरशन', अमृतसर, १९६२।
सतवीर सिंह, 'पुरातन ऐतिहासिक जीवनियाँ', न्यू बुक कम्पनी, जालन्धर १९६९।
संतोख सिंह (i) 'श्री गुर प्रताप सूरज ग्रन्थ'।
(ii) 'नानक प्रकाश', उक्त ग्रन्थ का एक खण्ड, पृथक् मुद्रित।
सरधाराम, 'सिखां दे राज दी विथ्या', प्रेसबिटैरिअन प्रैस, लुधियाना, १८८४
सरूपदास भल्ला, 'महिमा प्रकाश' (पद्य), हस्तलिखित।
साहिब सिंह, 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब दरपण' (दस खण्ड), राज आदर्ज, जालन्धर १९६२-६४।

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat

नाम-सूची

SIKHBOOKCLUB.COM

SIKHBOOKCLUB.COM

SIKHBOOKCLUB.COM

SIKHBOOKCLUB.COM

PDF created by Rajesh Arya - Gujarat